

ATISHAY KALIT

A Referred International Bilingual Research Journal of
Humanities, Social Science & Fine-Arts

LOTUS (July-December) Vol. 4, Pt. B Sr. 8 Year 2015

ISSN 2277-419X

RNI-RAJBIL01578/2011-TC

Chief Editor :

Dr. Rita Pratap (M.A. Ph.D.)

Co-Editor :

Dr. Shashi Goel (M.A. Ph.D.)

Mailing Address :

Dr. Rita Pratap

ATISHAY KALIT

C-24, Hari Marg, Malviya Nagar, Jaipur-302017

INDIA

Editor Writes

Dear Friends,

I wish you all a "**Very Happy and Prosperous New Year 2016**".

This "**Lotus**" issue is in front of you and as usual carries some important and informative articles relating to various subjects.

Suggestions are also welcome by our readers.

Dr. Rita Pratap

Book for sale : ISBN No. 978-93-5087-519-3 (English)
978-93-5087-520-9 (Hindi)

Title : **Folk Art of India** (Pages 481) Illustration (Color) 151 Pages
(भारत की लोक कला)

Editor & Publisher : **Dr. Rita Pratap**

Price : **Rs. 1500/-**

Contact : C-24, Hari Marg
Malviya Nagar, Jaipur-302017
ritapratap52@gmail.com

CONTENTS

1. Editor Writes	<i>Dr. Rita Pratap</i>	2
2. भारतीय शिक्षा में विरासत का समावेश क्यों नहीं? अमिता सिंह (एक विवेचनात्मक अध्ययन)		5
3. भारतीय संस्कृति के प्रतीक	डॉ. कुसुम बिंडवार	11
4. पुष्टिमार्गीय-सेवा-पद्धति में हवेली संगीत : वर्तमान स्थिति	डॉ. रश्मि जोशी	15
5. आमेर दुर्ग में जल संग्रहण व वितरण व्यवस्था : ऐतिहासिक अध्ययन	अनुराग विजय डॉ० एच०सी० जैन	20
6. पाश्चात्य कला में चित्रकार पियट मोद्रियान की कला शैली:- एक कलात्मक अध्ययन	राजकुमार मीणा	25
7. नवतांत्रिक कलाकार पी.टी. रेड्डी एवं उनका दर्शन	डॉ. अंजू चौधरी	35
8. भारतीय चित्रकला में ताड़पत्र का योगदान	प्रेरणा चौधरी	43
9. समसामयिक कला जगत में जयपुर की महिला कलाकारों के चित्रों एवं शिल्पों के माध्यम	अमनदीप कौर	50
10. असामान्यता को चुनौती देता "संगीत"	डॉ. मधु भट्ट तैलंग	55
11. हिन्दी नाट्य काव्यों एवं नाटकों में पात्रों की उपयोगिता	डॉ. सरला चौधरी	65
12. "तंत्र कला का स्वरूप"	डॉ० शताक्षी चौधरी	79
13. मिथिला की लोक चित्र शैली – एक विश्लेषण	सविता शर्मा	84
14. हिन्दी नाट्य काव्यों में पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. सरला चौधरी	93
15. "सामाजिक परिस्थितियों पर व्यंग्य करती भूपेन खक्खर की कला का एक विवेचन"	दिपिका मोहर	105
16. नाथद्वारा पिछवाई पेंन्टिंग्स : वर्तमान संदर्भ में...	डॉ. ज्योति शर्मा	111
17. बाघ गुहा चित्रों का कलात्मक अध्ययन (416 से 466 ई.)	अजय घांसिया	117
18. कलासमूह – 1890, नई दिल्ली की समसामयिक दिनेश मीणा पृष्ठभूमि : एक अध्ययन		123
19. उदयपुर क्षेत्र के तीर्थ स्थल : एक अध्ययन	राजेन्द्र गाँधी	127
20. छायावाद काल में पर्यावरण चेतना	डॉ. सरला चौधरी	132

21. भारतीय इतिहास के संरक्षण में महती भूमिका निभाते राजस्थान की मस्जिदों से प्राप्त फारसी भाषा के लेख	डॉ. रीता प्रताप	148
22. आत्मविश्वास बढ़ाने में प्रेक्षाध्यान की भूमिका	सुश्री मनजीत कौर	154
23. मुगल लघुचित्र – विशेष संदर्भ कलाकार	सुमन पाण्डेय	163
24. राठौड़ों की ऐतिहासिक धरोहर : नागौर दुर्ग	चन्द्रकला स्वामी	174
25. जहांगीर कालीन लघु चित्रों में प्राकृतिक अंकन	रितेश कुमार	179
26. समकालीन मूर्तिकला में प्रयुक्त पदार्थ एवं माध्यम गिरिराज शर्मा		187
27. शेखावाटी अंचल में स्थित झुन्झुनू के प्रमुख मंदिर ‘व परमधाम’	डॉ. श्रीकृष्ण यादव	193
28. राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा में धर्म : एक विवेचन	ज्योति	203
29. The Poetry of Critical Intelligence : A Study in the Light of Rasa theory	<i>Monika</i>	211
30. ग्रामीण महिलाओं के विकास का माध्यम “हस्तशिल्प”	प्रो. किरन सरना पंकज रानी	217
31. कुमाऊँ का सांस्कृतिक परिचय	प्रो. किरन सरना आरती आर्या	225
32. बालक के सर्वांगीण विकास में कला शिक्षा की भूमिका	प्रो. किरन सरना कु० संध्या	230
33. राजस्थानी महिला कलाकार : 1500ई.–2000ई.	प्रो. किरन सरना कु० दीप्ति जैन	239
34. मूर्तिकार मुकुल पँवार के का काँस्य माध्यम में बने मूर्तिशिल्पों में देवी-देवताओं का अंकन	प्रो. किरन सरना नेहा बसेड़ा	250
35. Revolution in Drawing	<i>Prof. Kiran Sarna Pradnya S.Bhatkar</i>	255
36. Interrelationship Between Idea and Image in Indian Art	<i>Dr. Ritu Johri</i>	264
37. Satish Chandra's (A Magician of light and Shades & Dignified persona)	<i>Abdul Salam Khan</i>	273
38. Jaina Contribution to Art and Architecture	<i>Dr. Aruna Gogania</i>	278
39. LokShabha Elections 2014 And Changing Trends of Indian Politics	<i>Dr. Shashi Goel</i>	291
39. भारतीय कला को अमृता की देन	विनिता कु. छीपा	293
40. आहार और व्यायाम से स्वस्थ जीवन	अनामिका यादव	302
41. भारतीय संस्थापन कला : एक विहंगावलोकन	डॉ. सुदीप्ता बी. भूषण	309

भारतीय शिक्षा में विरासत का समावेश क्यों नहीं? (एक विवेचनात्मक अध्ययन)

भारतीय संस्कृति समय की कसौटी पर खरी उतरी है जो दुनिया की प्राचीन सभ्यताओं में से एक है। वास्तव में अन्य प्राचीन सभ्यताओं के बीच भारतीय संस्कृति ने अपना अद्वितीय स्थान बनाया है यही नहीं इसने बाहरी प्रभावों को भी अपने अन्दर समाहित कर उन्हें भी आत्मसात् कर लिए है जो केवल भारत के सांस्कृतिक परिवेश में ही हो सकता था।

भारत का धर्म, दर्शन, वास्तुकला, संगीत, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, कला से सभी भारतीय संस्कृति की विविधता को बड़ी खूबसूरती के साथ पेश करती है।¹ कुछ देशों के पास तो अपनी सांस्कृतिक विरासत का दावा करने के लिए भी कुछ नहीं है वही औसतन भारतीय छात्र अपनी ही विरासत से दूर है जो आधुनिक भारतीय शिक्षा की दर्दनाक स्थिति को दर्शाते हैं। भारत की शिक्षा प्रणाली युवा भारतीयों में एक नवीन गतिशील जागरूकता विभिन्न क्षेत्रों सहित देश व युगों की विभिन्न उपलब्धियों, सभ्यताओं का प्रभाव विफल रहता है, इस तरह विविधता में "एकता" के प्रभाव को नकारा जाता है। आज की शिक्षा नौकरियों की भाग दौड़ में शामिल होने के लिए दी जाती है यह रवैया अंतर्निहित सोच भारत की सांस्कृतिक विरासत छात्रों के लिए मूल्यहीन बनती जा रही है। मात्र सांस्कृतिक विरासत को राजनीतिक भाषण, संग्रहालयों और विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए नहीं बल्कि शिक्षण के लिए उपयुक्त है। इस तरह के दृष्टिकोण छात्रों में आत्मविश्वास को बढ़ावा कभी नहीं दे सकते।

सांस्कृतिक विरासत और उद्देश्य :

● भारतीय संस्कृतिक विरासत के विभिन्न पहलुओं के साथ शिक्षार्थियों को परिचित कराने में पूरी तरह से सक्षम है।

- धर्म के क्षेत्र में अपने पूर्वजों के योगदान से शिक्षार्थियों को परिचित कराता है।
- दर्शन, विज्ञान, कला शिक्षा, भाषा और साहित्य शिक्षार्थियों के सभी पहलुओं में विविधता के बीच एकता को बनाये रखने में सक्षम है।
- भारत की संस्कृति दुनिया के विभिन्न देशों में अपने प्रभाव के साथ शिक्षार्थियों को परिचित कराने में सक्षम है।
- शिक्षार्थियों को भारतीय संस्कृति की समग्र प्रकृति से परिचित कराने में सक्षम है।
- शिक्षार्थियों के बीच प्यार की भावना और दंजपवद चंचतवंबी के प्रति अपनेपन की भावना को विकसित करने के लिए भारतीय संस्कृति का शिक्षा में समावेश लाभदायक है।²

भारतीय शिक्षा पर महान् भारतीय विचारकों ने ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के खिलाफ चेतावनी दी है स्वामी विवेकानन्द अग्रेंजी को निषेध, बेजान और कमजोर कर दिया है, श्री अरविन्द स्वामी ने बीसवीं सदी के पहले दशक में लिखा था 'भारत की संस्कृति और परम्परा में सभी प्राचीन जड़ों ने वर्तमान स्कूल और विश्वविद्यालय को प्रभावित किया है।

अतीत से आध्यात्मिक और बौद्धिकता को आत्मसात् कर शिक्षा से जोड़ते हैं, एक राष्ट्र को महान् बनाते हैं।

“रविन्द्रनाथ टैगोर ने भी इस मक्तव्य पर सहमति व्यक्त करते हुए कहा है कि हमारी प्रचलित शिक्षा प्रणाली में असंतोष, अधूरापन, अस्पष्टता साफ—साफ दिखाई दे रही है।³ जो हमारी संस्कृति और हमारे लिए खतरा बन गया है इसमें शीघ्र बदलाव की आवश्यकता है। समय व परिस्थितियां चाहे कैसी भी रही हो भूत में या वर्तमान में सांस्कृतिक विरासत, शिक्षा में भूमिका को समझना होगा इस अमूल्य निधि को बचाने के लिए ठोस कदम उठाने ही होंगे।

माध्यमिक शिक्षा व संग्रहालय :

यूनेस्को, नवम्बर 1999 के अनुसार इसी तरह के विषय को उठाते हुए बैठक की जिसमें माध्यमिक शिक्षा में संग्रहालय कैसे अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट कर सकते हैं उस पर विचार—विमर्श किया गया था।

किशोर बालक अपने बड़े बुजुर्गों व गुरुजनों से ही बहुत कुछ सीखता व करता है और वे ही अनुभव उनके शिक्षा काल में सहयोग, विकास करते हैं।

“कलिगवुड जिन्होंने कला को एक जादू का रूप देकर उसकी क्षमताओं को भावनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है और अपने उद्देश्यों की व्याख्या की है।”

दार्शनिकों के विचार किशोर बालकों के लिए एक कुंजी के समान है जो उनकी सोच को मानवीय ढंग से व्यक्त करने में सहायता करती है। क्योंकि एक किशोर बालक जब कला-कार्य में भाग लेता है तो वह परस्पर जुड़ाव महसूस करता है यह एक ऐसा विषय है जिसमें उसकी व्यक्तिगत संस्कारों के प्रति पहचान मिलती है। कला के माध्यम से ही बालक आंतरिक बाह्य भावनाओं से जुड़ कर ही विकास करता है।⁴

विद्यालयों के माध्यम से संग्रहालय ज्ञान प्राप्त करने का सुअवसर दिया जा सकता है जिसे वर्तमान शिक्षा की गुणवत्ता और भी पुष्ट होगी। प्राचीन संस्कृति, धार्मिकता, कलात्मक ऐतिहासिकता व अन्य संस्कृतियों के बारे में खेल-खेल में जानकारी प्राप्त करने में सहयोग दे सकता है। माध्यमिक शिक्षा कला आधारित हो, नई-नई तकनीकों द्वारा नई-नई खोजकर नव युवकों प्राचीन संस्कृतियों के प्रति जुड़ाव उत्पन्न करता है।

संग्रहालयों से उत्पन्न ज्ञान उपयोगी तो होता ही है साथ ही राष्ट्रीय रूप में संगठित कर मानव जाति के लिए उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त कराने में भी सहयोग करता है। कुछ विचारकों का मानना है संग्रहालयों व विरासतों से प्राप्त ज्ञान पूर्ण शिक्षित करने में असफल है उनका फायदा उठाया जा सकता है, वह किसी विषय पर ज्ञान अर्जित कर वाद-विवाद, विचार-विमर्श में सहयोग कर सकता है। क्योंकि यह सोच को चुनौती देता है दबाव डालता है। कला की शक्ति वातावरण व मूल्यों पर आधारित होती है।

हर्बल रीड के अनुसार संग्रहालय एक ऐसी शाला है यहां पर अपने वाला प्रत्येक व्यक्ति चाहे वो किसी भी उम्र का हो तल्लीनता से ज्ञान का संवर्धन कर सकता है।

विद्यालयों में छात्रों द्वारा गतिविधि – जिसमें छात्रों को अपने परिवार और

अपने आसपास की जानकारियों को संकलित करनी होगी। स्क्रैप बुक जिसमें अपने स्वभाव के अनुरूप ही वह अपने कार्य को अंजाम देगा। चित्रों को संकलित कर फाईल बनवाई जाए वह जिसे पसन्द करता है उससे सम्बन्धित जानकारी को लिखेगा और चित्र चिपकएगा। इस प्रकार के कार्य (कला से सम्बन्धित) उसको दूसरे विषय समझने में सहायता करेंगे। यह परिवर्तनशील शिक्षा को सांस्कृतिक संग्रहालयों द्वारा जोड़ने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है नवयुवकों को उनके जीवन से जोड़ते हुए शिक्षा देना इसको स्पष्ट करती है। किशोर बालकों में एक नया बदलाव आएगा वे अपनी सांस्कृतिक विरासत को पहचानेंगे और उसके सुरक्षित रखने के हर संभव प्रयास करेंगे, कुछ नया सीखने के लिए उत्सुक रहेंगे। तब वह छात्र बार-बार संग्रहालय जाकर सम्बन्धित जानकारियों को संकलित करना चाहेगा। क्योंकि कला प्रत्येक व्यक्ति सभ्यता के लिए आवश्यक है। साथ ही सभ्यता को नया रूप देती है। यूनेस्को उनके लिए चुनौती देता है व उनको आगे बढ़ाने में मदद भी करता है व नये-नये तरीकों द्वारा कैसे शिक्षा में इसका समावेश किया जा सकता है।

स्कूलों में हेरिटेज शिक्षा कार्यक्रमों को बढ़ावा :

हाल ही में विश्व विरासत समारोह मनाया गया जिसमें स्कूलों ने हेरिटेज क्लब व कई कार्यक्रमों को उसमें समाहित किया है यह कार्यक्रम सीबीएसई विद्यालयों में शुरू हुआ है जो अच्छे प्रारम्भ का संकेत है। विरासत शिक्षा के क्या फायदे हो सकते हैं व इसे जुड़ना क्यों आवश्यक है।

- ☛ सक्रिय रूप से करके सीखना के माध्यम से इतिहास और सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम को समीप लाना है।
- ☛ विविधता, सहिष्णुता, आपसी समझ, धैर्य, जागरूकता और विरासत में भ. गीदारी को बढ़ाना देने में स्कूली बच्चों का सहयोग।
- ☛ छोटे बच्चों को प्रेरित करने अतीत और वर्तमान की समझ के माध्यम से एक नये भविष्य का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित करना।
- ☛ स्थानीय विरासत, खोज व उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न करने में सहयोग देना।
- ☛ बच्चों को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय विरासतों की जानकारियां व उसके लाभ के बारे में समझना कि किसी समुदाय में निहित विशिष्ट कार्य संस्कृतियों

की एक वैचारिक पहचान बनते हैं।

विरासत शिक्षा छात्रों के लिए केवल मनोरंजन का साधन नहीं है बल्कि उनके सीखने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण साधन है। समाज और इतिहास की विविधता को समझने, सहिष्णुता के लिए सम्मान के संस्कार पैदा करने की आवश्यकता के लिए है साथ ही राष्ट्रीय विरासत को उजागर करने में महत्वपूर्ण है। यह विरासत कार्यक्रम शिक्षा में स्थानीय धरोहरों को लाने के लिए महत्वपूर्ण है। संस्कृति व विरासत की मदद से बच्चों के अनुभवों द्वारा एक लम्बा रास्ता तय करना है जो पाठ्यपुस्तकों की सामग्री को जिन्दा कर देगा। इसके लिए कई कार्यक्रम आयोजित किए जाए जैसे— स्थानीय विरासतों कस्बों, शहरों की विरासतों की ऐतिहासिकता का पता चल सके, संग्रहालयों आदि का भ्रमण करवाया जाए। निबन्ध व साहित्य प्रतियोगिताएं शामिल की जाए (स्थानीय भाषा में), बच्चों व सभी स्तरों पर रचनात्मक लेखन के लिए प्रोत्साहित किया जाए। विद्यालयों में बोर्ड लगाए जा सकते हैं। त्यौहार आदि के समय पर स्थानीय समारोह में शामिल किया जाए। विरासत सम्बन्धित प्रश्नोत्तरी, वाद-विवाद, चर्चा, यात्रा आदि गतिविधियों का आयोजन किया जाए विरासत निर्मिल स्थलों की ड्राइंग व चित्रकारी प्रतियोगिता रखी जाए। बुनियादी समझ को बढ़ाने के लिए वर्तमान व समकालीन लोगों से बातचीत उनकी तकनीकों को समझने व समझाने के लिए समय-समय पर आमंत्रित किया जाए। छात्रों को लोक संगीत आदि को देखने, समझने के लिए कार्यक्रमों का आयोजन हो। इन गतिविधियों के बाद छात्र अपनी की गई यात्राओं का आकलन लिखित रूप में दिखाये कि उसने इसके माध्यम से क्या सीखा, उसे क्या लाभ हुआ है। छात्र स्वयं के परिवार के इतिहास व परम्पराओं का पता लगाए, बातचीत करे व लिखें। कला शिक्षा के समय मूर्ति, मेहराव, छतरियां, पेड़-पौधों का अंकन करवाया जा सकता है।⁵

विश्वविरासत का युवा हाथों में होना यह अच्छा संकेत है। अतः आजादी के बाद से हम अपनी राष्ट्रीय एकता की बात करते हैं लेकिन औसतन छात्र अपने व अपने राज्य के बाहर के साहित्य से अपरिचित है समस्या पाठ्यक्रम में निहित अस्पष्टता, निर्जीवता, भारत की सांस्कृतिक निरन्तरता एकीकरण और विकास संबंधी जानकारी एकत्र करने में विफल रहा है इन सब खामियों को भुलाकर भारतीय आध्यत्मिकता सांस्कृतिक, नैतिक धारणा, धर्म परिवार, समाज

और देश के लिए कत्वर्य है कि हम इसे समझे और अपने इतिहास विरासत व कला को सजो कर रखे।

मेरा इस लेख के माध्यम से केवल इतना बताना है कि इस प्रकार के अध्ययन से अगर शिक्षा की गुणवत्ता उसकी कार्यक्षमता में प्रगति होती है तो इतिहास को अपने मन मस्तिष्क में संजोकर रखने और संग्रहालयों, विरासतों से नये-नये ज्ञान को अपनाना चाहिये। कला द्वारा शिक्षा ग्रहण करना जैसे पृथ्वी की नैसर्गिक सुन्दरता को जानना है इसी के द्वारा एक खुशनुमा संसार बनाया जा सकता है जिसमें कला, परम्परा, इतिहास, विरासत का समावेश हो।

आज का कलाकार भी यही चाहता है कि वर्तमान शिक्षा कला व विरासत से जुड़ी हुई हो जिसे आने वाली पीढ़ियों के लिए इसे संजोना मुश्किल नहीं होगा।

संदर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय शिक्षा में भारत की विरासत का घालमेल (मिशेल डेनिनो)
2. भारतीय संस्कृति और विरासत
3. भारतीय शिक्षा में भारत की विरासत का घालमेल

डॉ. कुसुम बिंडवार
सहायक व्याख्याता
शासकीय संगीत एवं ललितकला
महाविद्यालय, खण्डवा

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

भारतीय संस्कृति के प्रतीक

संस्कृति किसी देश और जाति की धरोहर नहीं है वो मानवीय और सार्वभौम है। दूसरे शब्दों में उसे मानवीय गरिमा के अनुरूप उच्चस्तरीय श्रद्धा सद्भावना कह सकते हैं। यद्यपि प्रत्येक जाति एक दूसरे के समान है। इनके प्रकाश में मनुष्य परस्पर प्रेम के बंधनों में बंधते हैं। सहिष्णु बनते हैं। निकट आते हैं और एक दूसरे को समझने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार भारतीय संस्कृति एक ऐसी विश्व संस्कृति है जो सम्पूर्ण विश्व को अपने दिव्य प्रकाश से प्रकाशित करती रही है।

मानवीय संस्कृति – मनुष्य सृष्टि के स्थूल पदार्थों जैसे पंचतत्व, सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि के विषय में विचार करता हुआ पाप-पुण्य, धर्म-कर्म, जीव-आत्मा-परमात्मा आदि तक पहुँच जाता है। इन्हीं अधिभौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों को सामाजिक जीवन के लिए उपयुक्त बनाने की कला को विद्वानों ने संस्कृति का नाम दिया। यँ तो प्रत्येक जाति की अपनी पृथक संस्कृति होती है और संसार में यूरोपियन, अमेरिकन, रूसी, चायनीज़ अरबी आदि अनेक संस्कृतियाँ हैं, परंतु संसार के सभी विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि इनमें सबसे पुरानी संस्कृति भारत वर्ष की है। “ सा संस्कृति प्रथमा विश्ववारा ” साथ ही हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति सबसे प्राचीन ही नहीं, सबसे श्रेष्ठ भी है, क्योंकि संसार की अन्य संस्कृतियों में आध्यात्मिकता का बहुत ही कम अंश पाया जाता है। अधिकांश केवल अधिभौतिक विषयों तक ही सीमित है, जबकि भारतीय संस्कृति का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक उन्नति भी है।

भारत का इतिहास प्रारम्भ हुए हजारों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस देश की सभ्यता संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं में गिनी जाती है। वेद दुनिया के सबसे प्राचीनतम ग्रंथ हैं। प्राचीन ग्रंथ संसार की अनेक सभ्यताएँ नष्ट हो चुकी हैं। मिस्त्र सीरिया, बेबीलोनिया आदि के तो अब केवल नाम ही बचे हैं। मिस्त्र

के वर्तमान निवासियों का संस्कृति की दृष्टि से उन प्राचीन लोगो के साथ कोई संबंध नहीं है, जिन्होंने नील नदी की घाटी में गगनचुंबी विशाल पिरामिडों का निर्माण किया था और जिन्होंने पितरों की ममी बनाकर उन्हें अमर जीवन प्रदान करने का प्रयत्न किया था। मिस्त्र और सीरिया की सभ्यता भी काल की दृष्टि से भारतीय सभ्यता के समान ही प्राचीन थी और उनके भी बहुत समय बाद यूनान और रोम की सभ्यताएं विकसित हुई, लेकिन वे भी अब नष्ट हो चुकी हैं। आज प्राचीन यूनानी और रोमन सभ्यता का कोई अनुयायी नहीं है, परन्तु भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति हजारों साल बीत जाने के बाद भी कायम है, क्योंकि यह अक्षुण्ण है और अक्षुण्ण रहेगी। भारत का धर्म अब भी वैदिक है। इस देश के पुरोहित व ब्राह्मण आज भी वेदों मंत्रों द्वारा यज्ञ कुण्ड में आहुति देकर देवताओं व प्राकृतिक शक्तियों को तृप्त करते हैं। उपनिषदों व गीता ने ज्ञान की जो धारा प्रवाहित की थी, वह आज भी अबाधित रूप से इस देश में बह रही है।

यहाँ की स्त्रियों का आदर्श इस 21वीं सदी में भी सीता, सावित्री और पार्वती जैसा है। भारत की संस्कृति की वे क्या विशेषताएं हैं, जिनके कारण हजारों साल बीत जाने पर भी वह अब तक जीवित है ? यवन, शक, यूनानी, कुषाण, हूण, तुर्क, अफगान, मंगोल और अंग्रेज, फ्रेंच डच आदि इन सब विदेशियों के आक्रमण व शासन भी इस संस्कृति को नष्ट नहीं कर सके।

जीवन में विघ्नों का विनाश और मंगल की कामना, मानव मात्र की कामना है। मानव की इस कामना पूर्ति के लिए हिन्दू संस्कृति में दो प्रतीक हैं – विघ्न विनाशक श्री गणेश जी तथा मंगलकारक चिन्ह स्वास्तिक, गणेशजी तथा स्वास्तिक के अंतर को मिटाते हुए कुछ धर्मग्रंथों में स्वास्तिक को ही गणेशजी का स्वरूप माना गया है।

स्वास्तिक शब्द “ सु+अस्+क ” से बना है। सु का अर्थ है – अच्छा अस का अर्थ है – सत्ता या अस्तित्व और क का अर्थ है कर्ता अर्थात् करने वाला। इस प्रकार स्वास्तिक शब्द का अर्थ हुआ अच्छा या मंगल करने वाला। गणेशजी साकार देवता है, किन्तु स्वास्तिक उन्हीं का निराकार प्रतीक है, दोनो का लक्ष्य एक ही है।

“सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्य भवेत् ॥”

सभी सुखी हो, सभी निरोगी हो, सब मंगलों का दर्शन करे कोई भी दुःखी न हो।

इस मांगलिक चिन्ह स्वास्तिक के साथ विघ्ननाशक गणेशजी साकार रूप में उपस्थित न होकर प्रतीक रूप में विराजमान होते हैं, इनके प्रतीक रूप में मौली चढ़ी सुपारी या गाव्यरस के गोमय से निर्मित तथा द्रवों से सज्जित गणेश। हिन्दू संस्कृति में सोलह संस्कार माने गये हैं, इनमें से मंगल संस्कारों में गणेश पूजन के लिए स्वास्तिक चिन्ह बनाकर किये जाने वाले कलशों पर स्वास्तिक बनाकर पूजने की प्रथा है। गृह प्रवेश के अवसर पर भवन पर, व्यापारी अपने बहीखातों के प्रथम पृष्ठ पर स्वास्तिक चिन्ह अंकित कर शुभ मंगल कार्यों की शुरुआत करते हैं। नए वाहनों पर स्वास्तिक चिन्ह अंकित कर सुरक्षा की कामना की जाती है। महिलायें मेहंदी से अपने हाथों पर स्वास्तिक चिन्ह बनाती हैं इसे दैविक आपत्ति या दुष्टात्माओं से मुक्ति दिलाने वाला माना जाता है। स्वास्तिक की दो मुख्य रेखाएँ पुरुष और प्रकृति का प्रतीक हैं, तो खड़ी रेखा को स्वयंभू ज्योर्तिलिंग का तथा आड़ी रेखा को विश्व विस्तार का संकेत माना जाता है। सूर्य घाटी के लोग सूर्य-पूजक थे और स्वास्तिक को सूर्य का प्रतीक माना जाता है। इसी परिप्रेक्ष्य में स्वास्तिक की चारों भुजाएँ चारों दिशाओं के कल्याण के प्रतीक के रूप में मानी जाती हैं। पुराणों में स्वास्तिक को सुदर्शन चक्र का प्रतीक माना गया है, जो कि जगत के सृजन और संचालन के लिए स्तुत्य है। कुछ विद्वान इसकी चार भुजाओं को हिन्दुओं के चार वर्णों की एकता का प्रतीक मानते हैं तो कुछ चारों वेदों के प्रतीक रूप में स्वीकार करते हैं।

जैन मत में मांगलिक प्रतीक के रूप में स्वीकृत ऊपर मंगल देवता का प्रतीक माना जाता है। महात्मा बुद्ध की मूर्तियों पर और अनेक चिन्हों पर भी प्रायः स्वास्तिक चिन्ह मिलते हैं। जापान, चीन, श्रीलंका आदि देशों में इसे मंगल प्रतीक के प्रचार प्रसार में बौद्ध मत के प्रचारकों का काफी योगदान रहा है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार किसी धार्मिक पूजा पाठ के समय किसी भी शुभ कार्य के लिये हमारे जो सोलह संस्कार हैं, हिन्दू धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को देना आवश्यक माना जाता है। जैसे ॐ, स्वास्तिक, कमल पुष्प, शंख तथा कलश आदि।

1 ॐ — ॐ को ब्रह्म माना गया है। जो सब कुछ है। ओंकार पवित्र

ध्वनि पवित्र उद्गार ओम का द्योतक है। भारतीय पद्धति में किसी भी शुभ कार्य का प्रारंभ ओम के उच्चारण से करना आवश्यक होता है। संभवतः सभी मंत्रों की शुरुआत ओम शब्द से ही होता है।

2 स्वास्तिक — हमारा दूसरा प्रतीक है स्वास्तिक। संस्कृति के अनुसार स्वास्तिक सुमंगलकारी भावों का प्रतीक है। प्राचीन काल से हमारी भारतीय संस्कृति के अनुसार कोई भी मांगलिक कार्य प्रारंभ करने से पूर्व स्वास्तिक बनाया जाता है। 'स्वास्तिक' शब्द की व्युत्पत्ति की ओर देखे तो यह संस्कृत शब्द 'स्वस्ति' से निकला है। स्वस्ति का अर्थ है मंगलमय।

3 शंख — 'शंख' नाद का प्रतीक है। नाद विश्व में आदि से अंत तक व्याप्त है। सृष्टि का आरंभ नाद से ही हुआ है तथा विलय भी उसी में होता है। 'शंख' को ऊँ का प्रतीक भी माना गया है, इसलिए सभी मांगलिक अवसरों पर शंख ध्वनि का विशेष महत्व है। कहा जाता है कि इसकी ध्वनि से बुरा समय टल जाता है। जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव सभी संप्रदाय में शंख की ध्वनि शुभ मानी गई है। इसकी पूजा की जाती है।

4 कलश — भारतीय संस्कृति में धार्मिक पद्धति के अनुसार पूजा से पूर्व कलश स्थापित किया जाता है। कलश में जल भरकर आम के पत्रों से सज। कर नारियल से ढंककर रखा जाता है उसके कंठ में बंधा कलावा शुभ तथा कल्याणकारी होता है। इसके साथ वह एक ऐसा पाश है जो इस प्रकार के सार्वजनिक आयोजनों में समाज को एक सूत्र में बांधने का द्योतक है।

5 कमलपुष्प — कमलपुष्प पवित्रता का प्रतीक है। कमल का आध्यात्मिक महत्व संसार स्वीकार करता है। कमल कीचड़ में खिलकर भी कीचड़ से ऊपर रहता है। पानी में कमल होता है, लेकिन कमल के पुष्प और पत्तों पर पानी नहीं ठहरता यह उसकी निर्लिप्तता का प्रतीक है। वह मानव को प्रेरणा देते हैं कि संसार में कमल के समान पवित्र रहना चाहिए। कमल तथा महालक्ष्मी में गहरा आध्यात्मिक समन्वय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ चिन्ह हमारी भारतीय संस्कृति के परिचायक तथा प्रतीकात्मकता है। अतः हमें इनका महत्व समझकर पूरी श्रद्धा से इनको प्राथमिकता देना चाहिए।

AKZYhg

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
गवर्नमेंट गर्ल्स कॉलेज, सेक्टर-14,
गुडगाँव, दिल्ली

ATISHAY KALIT

Vol. 4, Pt. B

Sr. 8, 2015

ISSN : 2277-419X

i f VekxhZ & l ok&i) fr eagosyh l xhr %orZku fLFk

वल्लभाचार्य ने श्रीमद्भावत को उपादेय मानकर भक्तिपक्ष में 'पुष्टिमार्गीय-सेवा पद्धति' को प्रसारित किया। यह पुष्टिमार्ग 'पोषणं तदानुग्रह' वाले भागवत्-तत्व पर आधारित था। इनका मूल मंतव्य पुष्टि (अनुग्रह) मार्गीय आत्मनिवेदन द्वारा प्रेम स्वरूपा सगुण-भक्ति पर प्रकाश डालना हैं।

वल्लभाचार्य जी ने जगत के त्रिविध दुःखों से पीड़ित-प्राणी की निवर्षति का यह सरल-उपाय बताया। इसमें जीवन अब पूर्णतया भगवान पर आश्रित हो जाता हैं। (मार्जार-शावक-सम्बन्ध) वह अपनी समस्त भावनाएँ तथा सर्वस्व भगवान को अर्पित कर देता है, तब भगवान उस पर परम-अनुग्रह करते हैं और उसके साथ नित्य-लीला करते हैं। यह नित्य-लीला-स्वरूप की प्राप्ति पुष्टि मार्ग का महत्त्वपूर्ण ध्येय है। इस लक्ष्य की प्राप्ति तभी संभव है, जबकि भक्त ईश्वर के पूर्ण-रूपेण समर्पित हो जाये। यह सर्वभावेन समर्पण ही 'पुष्टिमार्गीय' भक्ति की चरमावस्था है। इसी समर्पण से इस मार्ग का आरम्भ और भगवान के स्वरूप का अनुभव होता है। तथा लीला-सृष्टि में प्रवेश हो जाने पर अन्त। बीच का मार्ग सेवा द्वारा प्राप्त होता है। भक्ति में कुछ सेवा विधियाँ भी स्वीकृत हैं। उन्होंने कृष्ण-सेवा के दो भेद किए- (1) क्रियात्मक सेवा, और (2) भावात्मक सेवा। क्रियात्मक सेवा विधि; वित्तजा अर्थात् धन से सेवा तथा तनुजा अर्थात् शरीर से सेवा यथा- ठाकुर जी को स्नान करना, श्रृंगार करवाना, वस्त्र सीना, गहने बनाना, मंदिर इत्यादि की सफाई करना आदि। भावात्मक सेवा में मन, कर्म और वचन से कृष्ण में लीन हो जाना ही 'पुष्टि-पुष्ट-मानसी-सेवा' हैं।

कृष्ण की पूर्वोक्त सेवा-विधियाँ 'नित्य' और 'वर्षोत्सव' दो प्रकार की हैं-

fuR l ok fof/k k& इसमें प्रातःकाल से शयन तक ठाकुर जी की नित्य-सेवाएँ चलती है, जो अगों में इस प्रकार विभाजित हैं- (1) मंगला, (2) श्रृंगार, (3) ग्वाल, (4) राजभोग, (5) उत्थापना, (6) भोग, (7) संध्या-आरती,

और (8) शयन।

ok' kiki o lok fof/k k % इसमें षट्-ऋतुओं के उत्सव, रास, होली, हिंडोला, संस्कृति आदि तथा अनक त्यौहार एवं पर्व आते हैं।

इन समस्त सेवा-विधियों का सम्पादन सांगीतिक वातावरण में होता है। प्रहरानुसार एवं ऋतु के अनुसार रागों को पदों में निबद्ध करके संकीर्तनियों द्वारा कृष्ण को रिझाने एवं रंजन करने के उद्देश्य से तन्मयता के साथ गायन प्रस्तुत किया जाता है। यही संगीत 'हवेली-संगीत' के नाम से विख्यात है। इसमें विशेष रूप से ध्रुवपद एवं धमार गाने का प्रचलन है, किन्तु कभी-कभी भजन, ठुमरी, ख्याल भी सुनाई पड़ जाते हैं।

अधावधि स्थापित पुष्टिमार्गीय मंदिरों की यह कीर्तन-सेवा-पद्धति सभी जगह समान है। वल्लभाचार्य जी ने व्यवस्था के रूप में श्रीनाथ जी को प्रधानता दी और फिर अपने सात पुत्रों में श्री कृष्ण सात स्वरूप बाँटकर सात पीठ या सात घरों की स्थापना वि.स. 1640 में ही कर दी थी, जो वर्तमान में इस प्रकार व्यवस्थित हैं—

कोटा— मथुराधीश जी, नाथद्वारा — विड्डलनाथजी, कांकरोली — द्वारकाधीशजी, गोकुल — गोकुलनाथ जी, कामाँ (भरतपुर) — चन्द्रमा जी, सूरत (गुजरात) — बालकृष्ण जी, करौली — मदन मोहन जी,

हवेली-संगीत पूर्णतः भक्ति पर आधारित संगीत है। नवधा-भक्ति द्वारा आराध्य की आराधना के साथ अपने 'स्व' को समर्पित करके आत्म-विस्तृत होकर आराध्य से तादात्म्य स्थापित करना और उसे रिझाना भक्त गायकों के जीवन का परम ध्येय रहा है।

'हवेली'-शब्द हवेली से सम्बद्धता रखने के कारण इसके आध्यात्मिक एवं पवित्रता के पक्ष का कम आभास हो पाता है और सामान्य-जन के मन-मानस में इसके प्रति एकाएक आध्यात्मिक छवि नहीं बन पाती, परिणामतः प्रचलन में पुष्टिमार्गीय संगीत, वल्लभ संप्रदायिक संगीत, राग-संगीत, संकीर्तन अधिक उचित प्रतीत हुए।

हवेली-संगीत के नामकरण की पृष्ठभूमि में उल्लेखनीय है कि — जब मुगल काल में मंदिर एवं मुर्तियाँ तहस-नहस की जा रही थी, तब गोस्वामी लोग मुगलों से बचाकर अपनी आराध्य मूर्तियों को छिपाकर ले गए एवं अपनी

हवेलियों में उन्हें स्थापित किया और उसी प्रकार उनकी सेवा की। इसी सेवा-पद्धति के दौरान गाये जाने वाले सांगीतिक पदों को हवेली-संगीत कहा जाने लगा। वल्लभ-सम्प्रदाय के भक्त-गायकों ने यह नामकरण नहीं किया। उनके लिए राग-सेवा 'संकीर्तन' मात्र है। इस 'संकीर्तन' का तात्पर्य है- ईश्वर का नामोल्लेख करना, पुकारना, गायन करना, गुणगान करना, प्रशंसा करना, संदेश पहुँचाना आदि है।

पूर्वोक्त हवेलीनुमा सात पीठों में सेव्य ठाकुर जी बाल-भाव में स्थापित होते हैं और उनकी बाल-भाव में ही अष्टयाम की झाँकियाँ - मंगला, ग्वाल, श्रृंगार, राजभोग, उत्थापन, भोग, सांध्य-आरती एवं शयन के समय ऋतु एवं त्यौहारानुसार राग में निबद्ध कर, तत्काल पद रचकर गाया जाता है। सभी भक्त गायक आशु कवि होते थे, जो प्रायः मंदिर के ऊपरी हिस्से में रहा करते हैं। यही 'गायन-परम्परा', 'हवेली-संगीत' के नाम से विख्यात हुई।

यह संगीत वल्लभाचार्य द्वारा पुष्टिमार्गीय ठाकुर सेवा की भोग एवं रोग सेवा के लिए अष्ट-सखाओं की मण्डली (अष्टाछाप के कवि) जिनमें वल्लभाचार्य के चार शिष्य - गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास एवं नन्ददास संस्थापित थे।

यह संगीत नित्य दैनिक एवं वार्षिक ठाकुर-सेवा के अवसर पर तदनुसार समय और ऋतु की रागों निबद्ध होता है। जैसे फाल्गुन में होलिकोत्सव पर सारंग एवं काफी रागों में रसिया ढफ के गाये जाते हैं। जयदेव की अष्टपदी का एक पद बसंत पर आसावरी एवं धनाश्री गाने का प्रचलन है। दीपावली पर 'हटरी' के समय कान्हड़ा गाने का प्रचलन है।

यद्यपि यह पूर्णतः ध्रुवपद एवं धमार शैली में आबद्ध है, तथापि इसमें सहज, शांत-भाव, ऋजुजा एवं प्रसाद गुण द्वारा ईश्वर के साथ तादात्म्य पर ध्यान दिया जाता है। राग में शास्त्रीयतावादी-संवादी, न्याय, बढ़त इत्यादि के कठोर बंधन की अपेक्षा भक्ति-भावना की और अधिक ध्यान दिया जाता है।

हवेली-संगीत में रागे अपने पूर्ण प्राचीन रूप में ही प्रचलित है। यहाँ विशुद्ध हिन्दुस्तानी-रागों का ही प्रचलन है। जैसे - बिलावल, ललित, सोरठ, पूर्वी, धनाश्री।

तालों में - आडा, चौताल, चौताल, सूलताल, त्रिताल, झूमरा, चर्चरी, दीपचंदी, रूपक आदि।

इस एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिस प्रकार मंदिरों या घरों में शुद्धता के साथ भोग बनाकर भगवान को लगाया जाता है, उसी प्रकार पदों को भी पूर्णतः प्राचीन विशुद्ध रागों में गाने का विधान है। विशुद्धता से हटकर गाने पर रागों को 'छुआ' माना जाता है। अतएव पूर्णतः मार्गी-संगीत हैं।

इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य है कि भक्त का समय ईश्वर-भक्ति से ओत-प्रोत है।

देन - मध्यकाल में प्रचलित 'राग-संगीत' की महत्त्वपूर्ण 'गायकी-ध्रुवपद' के उन्नयन का श्रेय इन्हीं कीर्तनकारों को है। आज भी डागर-घराने में नन्ददास का पद 'वेद रटत-ब्रह्मा- रटत' ध्रुवपद के रूप में गाया जाता है। मंदिरों से चली यह परंपरा आज तक विद्यमान है। इससे संगीत-परम्परा घराना पद्धति अथवा गुरुकुल परम्परा को बहुत बल मिला। इसके अतिरिक्त वृन्द रूप से होने वाले 'संकीर्तन' से वृन्द-गायन-परम्परा के लिए महत्त्वपूर्ण देन सिद्ध हुई हैं।

तत्कालीन विपुल ब्रज साहित्य आज जिस रूप में विद्यमान है, वह इन मंदिरों की परम्परागत चली आ रही राग-सेवा परम्परा के नियम से ही संरक्षित है। इस महत्त्वपूर्ण विपुल-साहित्य का कारण कृष्ण संबंधी विषय - वैविध्य-वर्णन ही हैं। यथा- कृष्ण का बाल सौन्दर्य, राधकृष्ण की सर्वांग रूप माधुरी, श्रृंगार, यशोदा-वात्सल्य, ब्यालू, सखा-क्रिड़ा, निकुंज लीला, गोचारण, वेणुवादन, नृत्य, वन-विहार, माखन-चारी, प्रणय-महात्म्य, दान-लीला, उमंग, उलाहना, विरह, कृष्ण-लीलाएँ, वामनअवतार, इंद्रदमन, गोवर्धन-पूजा, अश्वारोहण, रक्षाबन्धन, हिण्डोला, गुरु-महिमा, फाग, भक्त-प्रार्थना, आत्म-विवेदन, शरणागति आदि।

orZku ea yqr gkrk vflrRo %

वर्तमान में अत्यन्त विषाद का विषय है कि इन पीठों में निरन्तर 'हवेली संगीत की परम्परा' कम से कमतर होती जा रही है। कोटा में कीर्तनकारों की संख्या केवल '3' रह गई है। नाथद्वारा में इससे अधिक '6' (किन्तु पूर्ण नहीं) है। इसी प्रकार अन्य पीठों में भी यह 'हवेली-संगीत' उस रूप में नहीं रह गया, जिस रूप में इस परम्परा का उद्भव हुआ था।

यद्यपि कारण पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो पाये, तथापि इन पीठों के पीठाधीक्षकों एवं अन्य सदस्यों से वार्तालाप करने के पश्चात्, जो कुछ कारण प्रतीत हुए, उनमें सर्वप्रमुख कारण इन संकीर्तनियों को प्रोत्साहन न मिलना है।

इसके अतिरिक्त आर्थिक-अभाव भी है। वर्तमान युग की भागदौड़ वाली जिन्दगी रोजी-रोटी के प्रश्न के कारण इस संगीत की ओर से पीढ़ी-दर-पीढ़ी रुझान कम होता जा रहा है। अन्यान्य कारण में यह भी स्पष्ट हुआ कि वर्तमान में बढ़ती हुई 'प्रदर्शन की प्रवृत्ति' ने जहाँ रंगमंच को विकास की चरमास्था पर पहुँचा दिया, वहीं 'हवेली-संगीत' जैसी संकीर्तन-परम्परा को लुप्त होने के कगार पर ला दिया; चूँकि इस संकीर्तन-परम्परा में सांगीतिक-प्रदर्शन केवल अपने आराध्य को रिझाने के लिए आराध्य की मूर्ति के पार्श्व में या निकट होता है, लेकिन ऐसा स्थान जहाँ केवल आराध्य की ही दृष्टि पड़े, ऐसे में जन-सामान्य के समक्ष अपनी प्रतिभा-प्रदर्शन के अवसर नहीं रह जाते। अतः आजकल नव-संगीत-प्रतिभाओं का ध्यान आकृष्ट ही नहीं हो पा रहा। इनके अलावा आराध्य की प्रतिदिन की सेवा-विधियों की पालना जिस प्रकार ध्यानपूर्वक एवं नियम का निर्वाह भली-भाँति होता, उस प्रकार 'हवेली-संगीत' की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जा पाना है, इसकी विवशता संगीतकारों की अनुपलब्धता है।

अस्तु, हवेली-संगीत की लुप्त होती हुई परम्परा को बचाया जा सकता है, क्योंकि वैष्णव-धर्म में प्रचलित होने के कारण यह जातिगत-संकीर्णता से ऊपर है। "वैष्णव-वैष्णव भाई-भाई के सिद्धान्त के कारण इसमें किसी भी जाति एवं वर्ग का सेवक पूर्ण समर्पणभाव से ईश्वर की इस सांगीतिक-साधना में लीन हो सकता है। (श्री मोहता जी (सदस्य) व श्री रघुनाथ प्रसाद कटारा - (प्रमुख), मथुराधीश मंदिर - कोटा से वार्ता के कुछ अंशों का विश्लेषण)

अनुराग विजय, शोधार्थी
राजकीय महाविद्यालय, कोटा
डॉ० एच०सी० जैन शोध निर्देशक,
सेवानिवृत्त विभागाध्यक्ष,

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

आमेर दुर्ग में जल संग्रहण व वितरण व्यवस्था : ऐतिहासिक अध्ययन

प्राचीन दूँढाड़ प्रदेश में कछवाहा राजपूतों की राजधानी आमेर वर्तमान राजस्थान की राजधानी जयपुर शहर से 9 किमी दूर उत्तर में कालीखोह पहाड़ियों के मध्य समुद्र तल से 1500 फीट ऊँचाई पर अवस्थित है।¹ आमेर शहर 25041' एवं 28024' उत्तरी तथा 74071' एवं 77013' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है।² आमेर का किला पहाड़ी के शिखर पर बनाया गया है। इस किले के नीचे आमेर नगर तथा आमेर के महलों से 500 फीट ऊपर पहाड़ी शृंखला की सर्वोच्च ऊँचाई पर जयगढ़ किला निर्मित किया गया है।

यहाँ वर्षा का औसत 56.38 से.मी. वार्षिक है।³ मैदानी प्रदेश में पहाड़ियों के मध्य स्थित होने के कारण आमेर में भूमिगत तथा वर्षा जल की सदैव निर्बाध उपलब्धता रही है। जल की कमी के कोई साक्ष्य नहीं मिलते।

राजस्थान के अन्य बड़े किलों की ही भाँति आमेर दुर्ग में भी जल प्रबन्धन की विशेष व्यवस्था की गयी थी। दुर्ग में जल संग्रहण एवं आपूर्ति हेतु एक झील व चार टांके बनाये गये हैं।⁴ प्रथम टांका जलेब चौक में दूसरा दीवाने आम के पास तीसरा मानसिंह महल में तथा चौथा टांका मानसिंह महल के पूर्व में बाह्य भाग में बना है। दुर्ग के सभी टांके भूमिगत होने से पानी शुद्ध रहता था तथा वाष्पीकरण के अभाव में इनकी मात्रा भी कम नहीं होती थी।⁵

आमेर किले की मुख्य पहाड़ी की तलहटी में एक झील अवस्थित है। जिसे स्थानीय भाषा में मावठा कहा जाता है। मावठा महावटा शब्द का अपभ्रंश है, पूर्व में इस सरोवर के तट पर विशाल वट वृक्ष हुआ करते थे, जिसके कारण इसका नाम महावटा पड़ा बाद में इसे मावठा कहा जाने लगा।⁶ यह आमेर की बड़ी बस्ती तथा आमेर किले का जलापूर्ति का एक बड़ा स्रोत था। मावठा आस पास की पहाड़ियों से आने वाले वर्षा जल को संग्रहित करके भरता था

तथा वर्ष पर्यन्त भरा रहता था चाहे राजस्थान में कितना ही अकाल पड़े। यह आज भी वर्षा जल पुनर्भरण (रेनवाटर हार्वेस्टिंग) का जीता जागता ऐतिहासिक उदाहरण है। इस झील का पानी किले में पहुँचाने के लिए रहट सिस्टम द्वारा एक जलोत्थान प्रणाली विकसित की गयी थी, जो आज भी पर्यटकों एवं शोधार्थियों के लिए कोतुहल का विषय है।

यह एक विशाल झील है जो असीम जलराशि को अपने भीतर समेटे हुए है। इस झील में दिखाई देने वाला किले का प्रतिबिम्ब आकर्षक है। इसके किनारे व बीच में बाग लगाए गए हैं, जिनमें जलापूर्ति इसी से होती है। झील में पर्यटकों के लिए नौकायन की भी व्यवस्था है।



झील के तटबन्ध पर दोनों ओर अष्टकोणीय मेहराबदार छतरियाँ बनी हुई हैं जिन पर गोल गुम्बद लगे हैं। मेहराबों में बाहर की ओर अलंकरण हैं। इन दानों छतरियों के मध्य एक आयताकार छतरी भी बनी है जिसकी छत ढलवाँ है तथा खम्बे पत्थर को तराशकर बनाए गए हैं। इन्हें बनाने में लाल बलुआ पत्थर का प्रयोग किया गया है। इनमें तीन द्वार हैं तथा दोनों पार्श्व में भी एक-एक द्वार और हैं। ये सभी द्वार मेहराबयुक्त हैं। इनके छज्जे ढलावदार एवं बंगलेदार हैं।

किले में सूरज पोल से घुसते ही जलेब चौक में बायें हाथ पर एक भूमिगत टांका है, जिसे जलेब चौक का टांका कहते हैं। यह काफी बड़ा टांका है जो आधुनिक वाटर स्टोरेज एवं हार्वेस्ट टैंक के समान है। जलेब चौक के फर्श पर इसका केवल ढक्कन ही दिखाई देता है। यह पक्का टांका है

तथा वर्षा जल से पुनर्भरित होता है। वर्तमान में इससे जल प्राप्ति हेतु पाईप लाईन लगाई गयी है, परन्तु पहले सेवकों द्वारा ढक्कन हटा कर जल निकाला जाता था। आज भी यह नीचे के पूरे परिसर में जल प्राप्ति का प्रमुख साधन है। सम्पूर्ण भराव क्षमता से भरने पर इससे वर्ष भर जल प्राप्त किया जा सकता है।

जलेब चौक से आगे बढ़ने पर महल के प्रवेश द्वार के दायें हाथ पर भोजनशाला के समीप स्थित टांका, दीवाने आम का टांका कहलाता है।⁷ यह बहुत बड़ा एवं भूमिगत टांका है, इसका एक हिस्सा नीचे की ओर भी खुलता है। इस टांके के समीप भोजनशाला तथा शिला माता का मन्दिर भी है। इसका जल पवित्र मान कर भोजनशाला में भोजन बनाने, हवन, पाठ-पूजा आदि के काम आता था। इसमें जल के शुद्धिकरण की भी व्यवस्था थी तथा जल प्राप्ति महल के सेवकों की सहायता से की जाती थी।

मानसिंह महल के भीतर एक अन्य भूमिगत टांका स्थित है, जिसे मानसिंह महल का टांका कहते हैं। इसमें अन्दर जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। यह छत से ढँका हुआ है। इसका पानी पेय जल हेतु उपयोग लाया जाता था। यह टांका वर्षा जल पुनर्भरण (रेन वाटर हारवेस्टिंग सिस्टम) तथा जल उत्थान प्रणाली (वाटर लिट तकनीक) से पुनर्भरित होता था। यह टांका भी पवित्र माना जाता था तथा इसकी साफ-सफाई की भी विशेष व्यवस्था की गयी थी। इसमें आज भी पानी है।

यह टांका इस किले का चौथा टांका है। यह मावठा सागर के जल रहट प्रणाली के द्वारा जल को लिट करके भरा जाता था। तत्पश्चात् इस टांके का पानी सकोरों की बनी पाईप लाईन के माध्यम से महल के विभिन्न हिस्सों में वितरित किया जाता था।

महल के दीवान-ए-आम के नीचे तलघर में एक विशिष्ट कक्ष बना है। जिसे राजपरिवार द्वारा अपने आराम एवं गुप्त मंत्रणा हेतु प्रयोग में लाया जाता था। अतः इसे आरामगाह कहा जाता है। इस कक्ष में दीवानेआम के भूमिगत टांके का एक हिस्सा खुलता है। कक्ष की दीवारें पत्थर के ब्लॉक्स से बनी थी, इन ब्लॉक्स को इस तरह से डिजायन किया गया था कि कक्ष हवादार एवं सर्दी के मौसम में गरम तथा गर्मी के मौसम में ठण्डा बना रहे। साथ

ही इसकी छत जिसे “लड़ाओं की छत” कहा जाता है की भी विशेषता है कि वह इस कक्ष को सर्दी में गरम व गर्मी में ठण्डा बनाए रखती है। इसकी सभी दीवारें व छत अलंकृत है। कक्ष के फर्श पर ठीक बीच में एक चोकोर पानी का टेंक बना है, इसमें फव्वारा भी लगाया गया था। फव्वारों से निकलने वाली पानी की फुहारें कक्ष को ठण्डा बनाए रखती थी, कक्ष में बैठने वाले को गर्मी में शीतलता का अनुभव कराती थी। इस कक्ष की अन्य विशेषता इसके पश्चिमी भाग में रंगीन पत्थर की बनी जालियाँ हैं। जालियाँ अपने अलंकरण एवं ज्यामितिय बनावट के कारण विशिष्ट है। ये जालियाँ लकड़ी के नक्काशीदार दरवाजों से ब



इस प्रकार कक्ष में बैठने वालों की निजता, सुख सुविधा तथा आराम का विशेष ध्यान रखा गया है। इस टांके के पानी का प्रयोग कक्ष को ठण्डा बनाने में भी किया गया है।

आमेर दुर्ग में विभिन्न स्थानों यथा शौचालयों, स्नानागारों, महलों, रनिवास आदि में धातु के बड़े पात्र रखे हुए हैं। ये पात्र अष्ट धातु, पकी मिट्टी, ताम्बा, काँसा से बने हुए हैं। इनमें किले के सेवकों द्वारा जल भरा जाता था। इनका उपयोग राजपरिवार, अतिथि तथा सैनिक अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करते थे।

आमेर महल के प्रत्येक कक्ष, शौचालय, स्नानागार, सुख निवास, समर पैलेस, गार्डन, जनाना हॉल आदि में पानी पहुँचाने हेतु पाईप लाईनों का जाल बिछाया गया था। इस हेतु मावठा सागर का लिट किया गया पानी मानसिंह महल के बाह्य टांके में एकत्र करने के बाद उसे सकोरों की पाईप लाईन द्वारा महल

के विभिन्न हिस्सों में पहुँचा दिया जाता था। यह पद्धति तत्कालीन अभियांत्रिकी, विज्ञान, स्थापत्य एवं वास्तु कला का मिला जुला अद्वितीय उदाहरण है। इसकी तुलना में अन्य किलों का वाटर सप्लाई सिस्टम छोटा प्रतीत होता है। वर्तमान में भी सकोरों की पाईप लाईन को आमेर महलों की दीवारों, अहातों, शौचालयों, सुख मन्दिर आदि स्थानों पर आसानी से देखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त किले के विभिन्न महलों, देवालयों, भवनों आदि में जल सेवकों, दास-दासियों, पणिहारिणों के माध्यम से पहुँचाया जाता था। इस कार्य में पशुबल की भी मदद ली जाती थी।

सन्दर्भ :

1. शर्मा गीता, आमेर स्थापत्य एवं चित्रकला, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2011, पृ 1
2. गुप्ता टी.एन एवं खंगारोत आर.एस., आम्बेर जयपुर: ए ड्रीम इन द डेजर्ट, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, 1994 पृ 1
3. कोठारी गुलाब सं., पत्रिका इयर बुक, राजस्थान पत्रिका प्रा. लि., 2014 पृ. 719
4. खान जफरुल्लाह, आमेर महल में रहट प्रणाली, पुरा सम्पदा, पृ. 59
5. अभिलेख, आमेर महल, दीवाने आम टांका के समीप
6. अभिलेख, आमेर महल, मावठा झील के समीप
7. खान जफरुल्लाह, द आम्बेर पैलेस, पृ. 24

पाश्यात्य कला में चित्रकार पियट मोद्रियान की कला शैली:— एक कलात्मक अध्ययन

परिचय — पियट मोद्रियान का जन्म 7 मार्च 1872 ई. को नीदरलैण्ड (हॉलेण्ड) के आमर्सफॉर्ट में हुआ। मोद्रियान की मृत्यु 1 फरवरी 1944 को यूनाईटेड स्टेट, न्यूयार्क शहर में हुई। आप डच चित्रकार के रूप में पहचाने जाते हैं। आपकी कला शिक्षा Rijksakademic में हुई तथा मोद्रियान ने अमूर्त चित्रण में डिग्री की। आपके पिता चित्रकला विषय में दक्ष थे तथा स्कूल में कला के अध्यापक थे। आप अपने पिता के दूसरे नम्बर की सन्तान थे। 1911 ई. तक आप नीदरलैण्ड में रहे उसके बाद 1911—14 ई. तक पैरिस में कला सृजन किया। कुछ समय के लिये आप वापस नीदरलैण्ड चले तथा 1919—38 तक पैरिस में निवास व कला सृजन किया। मोद्रियान ने अपने जीवन में 1938—44 ई. तक लन्दन व न्यूयार्क में रहे। बाद में आपके जन्म स्थान (घर) को संग्रहालय के रूप में स्थापित कर दिया। आपने 1880—92 तक Winterswisk में रहे।

पियट मोद्रियान की कला शैली को (Neoplasticism) नव पशुत्ववाद कहा गया। आपने प्राथमिक रंगों के द्वारा अधिकतर चित्र बनाये जिनकी बाह्य रेखा काले रंग से बनायी। मोद्रियान की कला शैली का प्रभाव आज भी कलाकारों की कला शैली पर देखने को मिलता है। आप अमूर्त कला के विकास में मील का पत्थर साबित होते हैं। आपने मानव दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तु पर अमूर्त चित्रण करके प्रभावशाली व आकृषक रूप प्रदान किया। मोद्रियान ने अपनी कला शैली मूल रंगों का प्रयोग ज्यामितीय आकारों के साथ किया। ये ज्यामितीय आकार एक—दूसरे से 90 डिग्री के कोण पर मिलते हैं जो मोद्रियान की कला शैली की विशेषता बन गयी है। आपने दृश्य चित्रों का भी निर्माण किया। पियट मोद्रियान अपनी कला का सृजन मनुष्य के रोजमर्रा के कपड़ों पर गाड़ी, वाहनों पर, जुतों पर, मकानों, नाखून पर नेलपॉलिस के

रूप में किया।

* नियमबद्ध कलाविधालयीन अध्ययन के बाद क्रमशः प्रभाववाद व फाववाद का अध्ययन करके 1910 में घनवादी पद्धति में चित्रण करने लगे। 1911 में पैरिस गये जहाँ वे 1914 तक रहे। इस काल में उन्होंने आधुनिक कला में हो रहे आन्दोलनों के परिशीलन से अपनी कला के सैद्धान्तिक विचार व अंकनपद्धति के आधार को मजबूत बनाया।

उनके घनवादी चित्र विश्लेषणात्मक है। संश्लेषणात्मक पद्धति की ओर वे कभी आकृष्ट नहीं हुए। घनवाद के आरम्भिक प्रभाव के बावजूद उनकी कला का विकास पूर्ण स्वतन्त्र रूप से हुआ और उसका मार्गदर्शन उनकी मौलिक प्रतिभा व निजी दार्शनिक विचारों ने किया। वे थिओसोफिकल सोसायटी के सदस्य थे व डच दार्शनिक शोनमाकर्स के विचारों का उन पर बहुत प्रभाव था। शोन माकर्स के विचारों से कलाकार के लिये रचना के "लचीले गणितशास्त्र" के अपरिवर्तनीय आन्तरिक नियमों का अनुशासन आवश्यक है। हमको निसर्ग की गहराई का अन्तभेद करना होगा। जिससे हमको यथार्थ की आन्तरिक रचना के सत्य का ज्ञान हो जाये। मोन्द्रियान ने भी नवलचीलवाद को निसर्ग की बहुरंगी जटिलता को लचीले तत्वों द्वारा सुनिश्चित रूप देने का साधन माना। उनके विचार से गणित के समान, कला भी विश्वमण्डलीय मूल तत्वों को प्रतिरूपित करने का निर्दोष व अचूक साधन है। मोन्द्रियान विश्वलक्षणैक घनवाद से प्रेरण पाकर पानी की लहरों, वृक्षों जैसी वस्तुओं को खड़ी व आड़ी रेखाओं से ज्यामितीय रूप देकर चित्रित करते। 1917 में उन्होंने मूल रंगों में त्रिभुज, आयत आदि ज्यामितिय आकारों में चित्र रचनाएँ की। 1920 के करीब मोन्द्रियान की कलाशैली को सुनिश्चित रूप प्राप्त हुआ अब मोन्द्रियान काले रंगों की संकरी पटियों से चित्र क्षेत्र को विभाजित करके चित्रण करने लगे।

इससे अधिक सरलीकृत आकार रचना की कल्पना करना कठिन है। अपनी नयी शैली को मोन्द्रियान ने नाम दिया 'नवलचीलवाद' जिसका प्रमुख रचना सिद्धान्त था विरोधों में सुसंवादित। इसका सबसे सरल उदाहरण है समकोण – जिसमें आड़ी व खड़ी रेखाओं के विरोध का सुसंगत दर्शन है। अतः मोन्द्रियान सदैव समकोण में मिलने वाली खड़ी व आड़ी रेखाओं का ही प्रयोग करते थे। उसी प्रकार वे रंगों को तेज व वर्णहीन वर्गों में विभाजित करके उनका विरोधी रूप में प्रयोग करते थे। कान्डिस्की व मोन्द्रियान

को वस्तुनिरपेक्ष कला के प्रणेता मानते हैं किन्तु दोनों के विचारों में मौलिक भिन्नता है। कान्डिस्की ने कलाकार की 'आन्तरिक आवश्यकता' को सर्जन का आदिम प्रेरणा-स्रोत माना है, जबकि मोन्द्रियान ने कलाकार के व्यक्तित्व को विशुद्ध निरपेक्ष गणितीय रचना-शास्त्र में बाधक तत्व माना है। अतः कान्डिस्की की वस्तुनिरपेक्ष कला का मूलाधार है आत्मिक अभिव्यक्ति तो मोन्द्रियान की वस्तुनिरपेक्ष कला का मूलाधार है विशुद्ध स्वयंपूर्ण रचना सौन्दर्य। मोन्द्रियान के 1906 में बनाये चित्र 'कुटिया का दृश्यचित्र', 1911 में बनाये चित्र 'आडा वृक्ष' की तुलना यदि उनके 1915 में बनाये "धन व ऋण चिन्हों की रचना" व 1912 में बनाये "सरल रेखाओं की लय" से करते हैं तो उनकी वस्तुनिरपेक्षता की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है।

मोन्द्रियान ने अपने कलाविषयक विचारों पर बहुत कुछ लिखा। उनके विचार से रेखा व रंग चित्रकला के मूल तत्व हैं और उनको वस्तुसादृश्य के बंधन से मुक्त करके स्वतंत्र रूप से विकसित होने देना चाहिये। चित्रक्षेत्र समतल होता है अतः चित्रकला में घनत्व, दूरदृश्यलघुता जैसे बाह्य तत्वों का समावेश नहीं होना चाहिये। सम्पूर्ण दृश्य-सत्य का आविष्कार सबसे सरल आकारों से ही होता है, अतः चित्रकला में आयत जैसे सरल आकारों की योजना अपरिहार्य है। मोन्द्रियान से पूर्व इस प्रकार का सम्पूर्ण शास्त्रीय दृष्टिकोण सोरा ने अपनाया था किन्तु हटाने के बजाय कठपुतली जैसे प्रतिकात्मक आकारों की योजना करके वस्तुनिरपेक्ष कलात्मक गुणों पर ध्यान केन्द्रित किया था। मोन्द्रियान का ध्येय केवल कलाक्षेत्र तक सीमित नहीं था, उसका क्षेत्र समूचा जीवन था। वे कला के स्वतन्त्र अस्तित्व को ही अनावश्यक मानकर उसको जीवन से एकरूप करना चाहते। इस सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है- "वस्तुसादृश्य सौन्दर्य भावना को हानि पहुंचाता है। अतः चित्रकला से वस्तु का उच्चाट करना चाहिये। कला के विचार से रचना एक सत्य है। नैसर्गिक रूप के समान, वैयक्तिक भावना भी विशुद्ध रचना निर्मित करे विघातक है। व्यक्तित्व के तत्व द्वारा कला में काव्यात्मकता का प्रवेश होता है जो सम्पूर्ण निरपेक्ष सौन्दर्य को हानिकारक है। वस्तु व मानवीय भावना विशुद्ध लचीली कला का निर्माण असम्भव कर देती है।

जीवन के अंग प्रत्यंग में विशुद्ध सौन्दर्य का अन्तर्भाव होने से भविष्य में कला का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहेगा और हम उसकी आवश्यकता को महसूस नहीं करेंगे क्योंकि हमारे आस-पास कलामय वातावरण होगा। जीवन में सुसंवा.

दत्व का निर्माण करके कला लुप्त होगी एवं कला के आन्तरिक सम्पूर्ण सत्य को साकार करना है।" विशिष्ट में जब तक सम्पूर्ण का दर्शन नहीं होता तब तक मोन्द्रियान संतुष्ट नहीं होते। मोन्द्रियान की उत्तरायु की कृतियों में कुछ सादृचर्य दर्शन के प्रयत्न हैं, जैसे कि उनके चित्र ब्राडबे बुगि-बुगी में अमेरिकन जज के संगीत पर दृश्य रचना करने के प्रयत्न हैं। मोन्द्रियान, फ्रान्चेस्का, पुरू व सोरा की परम्परा के चित्रकार थे व उन्होंने प्लेटो की विशुद्ध सौन्दर्य की कल्पना का अपनी कला में चरम सीमा तक विकास किया।

प्रमुख चित्रों का विश्लेषण –

चित्र संख्या-1 Pier and Oceans (See and Starry Sky) 1914 :

Medium - Charcoal and Water colour on Paper

Size (Dimensions) :- 34 x 44 (87.9 x 111.7 Cm)

Obect Number : 34.1942

इस चित्र का सृजन कागज पर चारकोल व जल रंग द्वारा किया गया है जिसमें +, - चिन्हों का संयोजन अण्डाकार रूप में किया गया है। यह एक प्रभावशाली चित्र माना जाता है।

चित्र संख्या-2 Broadway Boogie Woogie 1942-43 :-

Medium : - Oil on Canvas

Size : 50 x 50"

इस चित्र का निर्माण मोन्द्रियान ने अमेरिकन जज के संगीत को आधार बनाकर किया। सम्पूर्ण चित्र में वर्ग व आयत आकारों की प्रदानता रही है। इस चित्र में पीले, लाल, नीला, सफेद आदि रंगों का प्रयोग सबसे ज्यादा किया गया है।

अमूर्त कला का रूप समय के साथ-साथ परिवर्तित होता रहा है तथा अमूर्त कला की नयी-नयी परिभाषाओं का उदय होता रहा है। 21वीं सदी की अमूर्त कला पर चर्चा कर रहे हैं।

21वीं सदी में जिस तरह से चित्रकला का सृजन किया जा रहा है। उस प्रकार से तो यह प्रश्न उठता है कि चित्रकला- ललित कला या उपयोगी कला है? क्योंकि जिस प्रकार से कलाकारों तथा मानव द्वारा चित्रकला का

सृजन मानव के दैनिक जीवन में उपयोग आने वाली वस्तुओं पर किया जा रहा है जैसे हेलमेट पर टैटू आर्ट तथा विभिन्न प्रभावशाली चित्रण किया जाता है। इसी के साथ टी-शर्ट पेन्टिंग का भी गहरा प्रचलन चल रहा है। विभिन्न कला संस्थाओं व कला समूह द्वारा "टी-शर्ट पेन्टिंग" प्रतियोगिताओं का आयोजन करवाया जाता है।

टी-शर्ट पेन्टिंग में एक्रेलिक (Acrylic) रंगों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। एक्रेलिक रंग कम समय में जल्दी सूख जाता है। यह एक स्थायी माध्यम है। जिसके द्वारा तैल रंग तथा जलरंग का प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। एक्रेलिक रंगों का आविष्कार 1950 के बाद हुआ। टी-शर्ट पेन्टिंग में यथार्थवादी, अमूर्त तथा सांकेतिक चित्रण किया जाता है। यथार्थवादी टी-शर्ट पेन्टिंग चित्रण में धार्मिक व अन्य विषयों पर कला सृजन किया जाता है। इसी के साथ टी-शर्ट पर श्लोगन लिखे जाते हैं। जो प्रभावशाली होने के साथ किसी विशेष सन्देश को भी प्रकट करते हैं। यह प्रक्रिया विज्ञापन कला को भी दर्शाती है।

टी-शर्ट पेन्टिंग में धार्मिक विषयों के रूप में हिन्दू व बौद्ध पर अधिक सृजन किया जाता है। आजकल बड़े-बड़े मॉल, कॉम्प्लेक्स, होटल आदि को प्रभावशाली बनाने के लिये भी चित्रकला को विशेष तकनीक व माध्यम के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। जो आमजन में चर्चा व आकर्षण का विषय बन जाता है। इस प्रकार की कला का सृजन जयपुर शहर में भी करवाया जा रहा है। जो भित्ति चित्र तकनीक से अलग प्रभाव उत्पन्न करते हैं। जयपुर में राजस्थान ललित कला अकादमी द्वारा भी कुछ समय से गाड़ी, कार, बाइक, ग्लोब आदि उपयोगी साधनों पर कला का सृजन करवाया जा रहा है। जो 21वीं सदी में चित्रकला को एक नये रूप में प्रस्तुत कर रहा है। चित्रकला का विकास प्रागैतिहासिक गुफा चित्रों से माना जाता है। फिर चित्रकला ने शास्त्रीय कला का रूप लिया उसके बाद विभिन्न वादों से गुजरती हुई अमूर्त रूप में प्रकट हुई। यह अमूर्त रूप आज कला सृजन का मुख्य विषय बन कर उभर रहा है। कला इतिहास में कई कलाकार ऐसे हुये हैं। जिन्होंने भित्ति चित्रण में अपनी पहचान बनायी तथा सम्मानित भी हुये। इसी प्रकार कई कलाकार गाड़ी, मोटर, हेलमेट, ग्लोब, भवन, टी-शर्ट आदि पर कला सृजन करके अपनी अलग पहचान बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

कई गाड़ी, मोटरों पर अमूर्त कला में सृजन करके इन उपयोगी साधनों/ वस्तुओं को आकृषक रूप प्रदान कर रहे हैं। कई कलाकार तो इस काम में अपनी पहचान बनाने में काफी सफल भी हो रहे हैं। आज 21वीं सदी में इस पर कला का सृजन उपयोगी साधनों पर किया जा रहा है। इस प्रकार का प्रयोग पियट मोद्रियान ने 1910-1944 ई. समय में कर दिया था। मोद्रियान के चित्रों का अध्ययन करने पर यह जानकारी मिलती है 21वीं सदी में हो रहे कला सृजन पर मोद्रियान की कला शैली का प्रभाव है। इस अध्याय में जिस प्रकार के कला सृजन के छाया चित्रों का उल्लेख किया गया है उस प्रकार से यही प्रश्न उठता है कि जो चित्रकला, ललित कला मानी गयी है वह अब 21वीं सदी में ललितकला है या उपयोगी कला। किस नाम से अब चित्रकला को परिभाषित किया जाये।

लेख का महत्त्व:- मानव ने जब प्रकृति के आँचल में अपने पैर रखे तभी से उसकी एक प्रतिक्रिया रही है कि वह कुछ सृजन करे तथा करता रहे। क्योंकि मानव का विकास खोज करने या नयी-नयी विधाओं के द्वारा अपने जीवन को आनन्दमयी व रोचकपूर्ण, उत्साह से भरा बनाने की परिकल्पना सदा से रही है। कला का विकास मानव के विकास के साथ ही शुरू हुआ जो प्रागैतिहासिक कला से लेकर विभिन्न कलावादों से गुजरकर आज अमूर्त रूप में स्थायित्व के साथ दिखायी देता है। आधुनिक कला के अमूर्त प्रभाव से पूरा विश्व ऋणी रहा है। अमूर्त के विकास में पश्चिमी कलाकार पियट मोद्रियान की कला शैली मील का पत्थर साबित हुई जिसका ऋण सारे संसार पर। इस कलाकार ने जिस प्रकार से चित्रकला को अमूर्त रूप के द्वारा साधारण से साधारण रूप में प्रस्तुत किया, ये योगदान कला की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आज 21वीं सदी में पियट मोद्रियान की कला शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है, लेकिन मोद्रियान की कला शैली पर अधिक दृष्टिपात या ध्यान केन्द्रित नहीं किया है। अमूर्त शैली के इस महत्त्वपूर्ण पक्ष की ओर लोगो एवं कलाविदों की अनदेखी एवं ज्ञान के अभाव ने ही मुझे मेरे लेख हेतु इस विषय को अपनाने के लिये उत्प्रेरित किया।

पाश्चात्य चित्रकार पियट मोद्रियान की कला शैली : एक अध्ययन लेख द्वारा आधुनिक कला की विभिन्न अमूर्त शैलियों पर मालेविच व मोद्रियान की चित्रण शैली प्रभाव के कारण एवं तथ्यों की खोज द्वारा मोद्रियान की कला

शैली के महत्त्व पर प्रकाश पड़ सकेगा। अमूर्त कला की विशेषता, रूप, माध्यम, प्रभाव, लोकप्रियता, अमूर्त कला की बढ़ती मांग आदि के विषय में अनेक नवीन एवं प्रमाणिक सिद्धान्त तथा दृष्टिकोणों के विषय में ज्ञान संभव हो सकेगा। आधुनिक समय से लेकर वर्तमान समय तक की अमूर्त कला तथा अमूर्त कला में पियट मोद्रियान की कला का विश्लेषण तथा उनकी कला का विभिन्न वादों पर प्रभाव अमूर्त का बदलता रूप व परिभाषा आदि के विषय में अधिक विस्तृत और तलस्पर्शी अध्ययन इस शोध द्वारा संभव है। प्रभाववाद, नवप्रभाववाद, उत्तप. भाववाद, फाववाद, घनवाद, अभिव्यंजनावाद, भविष्यवाद, सुरीलावाद, सर्वोच्चवाद, नवलचीलवाद, वस्तुनिरपेक्ष, अभिव्यंजनावाद आदि में किस प्रकार अमूर्त का सृजन हुआ तथा किसी-किसी कला वादों पर मोद्रियान की कला शैली का प्रभाव दिखायी देता है। इसी के साथ ही इस लेख से प्राप्त ज्ञान प्रयोगात्मक अध्ययन में आने वाले समय में सम्पूर्ण विश्व के कला अध्ययनकर्त्ताओं एवं पाठकों हेतु उपयोगी सिद्ध होगा तथा प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में जो अब तक नहीं हो सकी ऐसी नवीन उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकेंगी। इसी के साथ ही व्यवहारिक रूप से महत्त्वपूर्ण भी होगा ऐसी मेरी आशा है।

लेख का उद्देश्य :- पाश्चात्य कला में चित्रकार पियट मोद्रियान की कला शैली :- एक कलात्मक अध्ययन लेख का उद्देश्य भारत में आधुनिक काल से चली आ रही अमूर्त कला में विभिन्न कलाकारों ने चित्रण किया और भारतीय अमूर्त में सृजन करके अन्तर्राष्ट्रीय स्तर में पहचान बनायी तथा भारतीय कला को गौरवान्वित किया। अमूर्त कला में समय-समय पर चित्रकारों ने नये माध्यम व तकनीक के द्वारा नवीन अमूर्त कला सृजन कर अमूर्त कला नयी-नयी शैलियों के रूप में जन्म दिया। भारतीय अमूर्त कला का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि भारतीय कलाकारों की कला शैलियों पर पश्चिमी कला व कलाकारों की कला शैलियों पर पश्चिमी कला व कलाकारों का अमिट प्रभाव स्पष्ट झलकता है। साथ ही इस लेख के द्वारा अमूर्त चित्रण को नये रूप में प्रस्तुत करने वाले कलाकार मोद्रियान की कला पर गहन एवं विस्तृत अध्ययन का अभाव रहा है जिससे अनेको महत्त्वपूर्ण तथ्यों एवं सिद्धांतों के प्रकाश में आने की संभावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

प्रस्तुत का मुख्य उद्देश्य इन्हीं अभावों की पूर्ति करते हुए अत्यन्त एवं अज्ञान में छूपे हुए ज्ञान को पाठकों के सम्मुख लाना है। भारत के विभिन्न

कलाकार पश्चिमी कला का अध्ययन करके अमूर्त प्रभाव में आकर अमूर्त चित्रण कर रहे हैं। जिन पर मोद्रियान की तकनीक, माध्यम, शैली, अमूर्त सृजन चित्रकला को अति साधारण रूप में प्रस्तुत करने की ओर मार्ग प्रदर्शित किया है। इस लेख के द्वारा मोद्रियान की कला शैली पर विश्लेषण को ही प्रमुख विषय रखा गया है। प्रस्तुत लेख के पश्चात् प्राप्त विभिन्न तथ्यों सिद्धान्तों, परिणामों एवं निष्कर्षों से इस क्षेत्र में अध्ययन लोग, कला अध्येताओं, शोधार्थियों, प्रबुद्धकला पारखी एवं सामान्य जन को पियट मोद्रियान की कला शैली व इन पश्चिमी कलाकारों का भारतीय कला व कलाकारों के प्रभाव को जानने समझने का अवसर प्राप्त हो सकेगा। मेरा लेख विषय “पाश्चात्य कला में चित्रकार पियट मोद्रियान की कला शैली : एक कलात्मक अध्ययन” सर्वथा अछूता एवं मौलिक विषय है। मेरे इस लेख का उद्देश्य अमूर्त कला में मोद्रियान का योगदान व प्रभाव को उनकी कला शैली पर विश्लेषण करके प्रकाशित करना है।

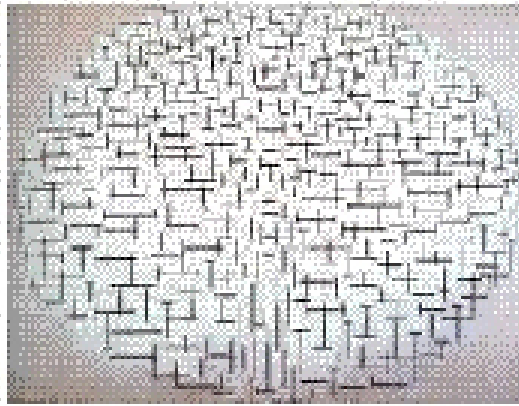
चित्रकार पियट मोद्रियान की कला शैली का सौन्दर्यात्मक एवं भावात्मक गुणों का अध्ययन करने के साथ ही अध्ययन को व्यवस्थित, वैज्ञानिक एवं तार्किक आधार प्रदान करते हुए अवलोकन एवं तार्किक आधार प्रदान करते हुए अवलोकन एवं वर्णनात्मक विश्लेषण व्यक्तिगत अनुसंधान, साक्षात्कार, चित्रकला का इतिहास में चित्रित चित्र के साथ ही नवीन व पूर्ववर्ती अमूर्त कला का अध्ययन, छाया चित्रों इत्यादि विधियों से किया जायेगा। मेरा संशोधन प्रारूप एक तार्किक व व्यवस्थित योजना पर आधारित होगा। अतः यह प्रारूप “ वर्णनात्मक” संशोधन प्रारूप है। इस लेख में साधनों के रूप में शोध पत्र पुस्तकें, इंटरनेट, चित्र, छाया चित्र, रेखा चित्र, जन सम्पर्क केन्द्र, पत्र-पत्रिकाएं व पूर्ववर्ती शोध कार्य का अध्ययन किया गया है।

पियट मोद्रियान की कला शैली का अमूर्त कला पर किस प्रकार प्रभाव दिखायी देता है। अमूर्त कला का सृजन आधुनिक कला की देन है। जिसकी सबसे पहले शुरुआत पश्चिमी कलाकारों द्वारा की गयी। मोद्रियान के जन्म से पहले भी अमूर्त कला का सृजन होता रहा है पर इन दोनों कलाकारों की कला शैली ने अमूर्त कला में नये अध्याय जोड़ दिये गये हैं। इनकी कला शैली ने अपनी निजीगत विशेषता को जन्म दिया है जो अमूर्त कला के विकास में मील का पत्थर साबित हुई है।

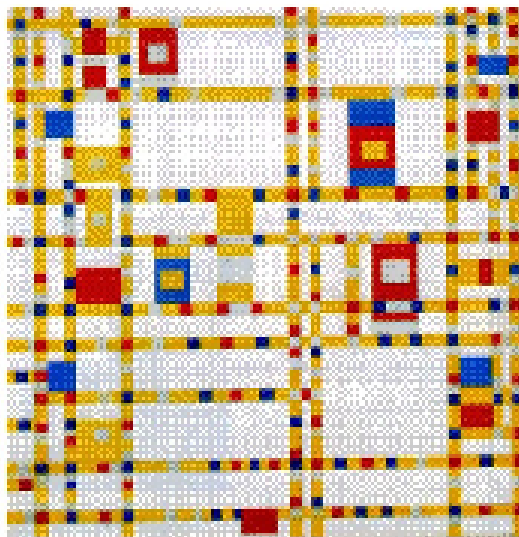
इन दोनों कलाकारों ने चित्रकला को अमूर्त कला में सृजन करके अति

साधारण रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जिसमें यह सफल भी होते प्रतीत होते हैं। मोद्रियान का प्राथमिक लक्ष्य चित्रकला को साधारण से साधारण रूप में प्रस्तुत करना रहा है। इन कलाकारों ने जिस कला शैली का विकास 20वीं सदी में किया, उसी को आधार बनाकर 21वीं सदी में कलाकारों द्वारा कला सृजन किया गया है।

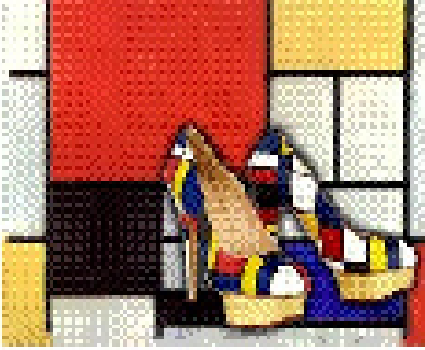
इस प्रकार अमूर्त कला सृजन जैसे उपयोगी वस्तुएँ— जूते, पौशाक, वाहनों, इमारतों आदि पर हो चुका तथा हो रहा है। तो यह कहना गलत नहीं



चित्र सं.1. Pier and Oceanis (पियट मोद्रियान)



चित्र सं.2. ब्रॉडवे बुगी बुगी (पियट मोद्रियान)



चित्र सं. 3



चित्र सं. 4



चित्र सं. 5



चित्र सं. 6



चित्र सं. 7



चित्र सं. 8

चित्र सं. 3-8 (पियट मॉद्रियान)

डॉ. अंजू चौधरी
एसोसियेट प्रोफेसर
चित्रकला विभाग
मेरठ कालिज, मेरठ

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

नवतांत्रिक कलाकार पी०टी० रेड्डी एवं उनका दर्शन

देश विदेश में नव तांत्रिक कला के क्षेत्र में जाने पहचाने कलाकार पी०टी० रेड्डी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 43 वर्षों के लम्बे कलात्मक सफर में वह अन्त तक उसी उद्विग्नता और साहस, उत्साह, रूचि, उष्ण उत्पादकता, दृढ़ संकल्प, फलदायक शक्ति, उत्सुकता भरी सृजनात्मक अभिव्यक्ति के साथ आन्ध्र प्रदेश का नाम चहुँ ओर प्रकाशित करते रहे। ऐसे प्रतिभा सम्पन्न पी०टी० रेड्डी का जन्म एक कृषक परिवार में 4 जनवरी, 1915 को गांव अन्नारम, जिला करीम नगर, हैदराबाद में हुआ था।

रेड्डी का आकारों के प्रति रूझान सहज ही था क्योंकि आकारों, वर्णों की तानों, गति के प्रति अपनी जिज्ञासा उन्होंने अपने बचपन से सिद्ध की थी। जब वह बहुत खुशी के साथ अपने स्कूल के साथियों, फूलों और पत्तियों की ड्राईंग किया करते थे, तभी उनके स्कूल के हेडमास्टर अब्दुल सत्तार सुभानी ने रेड्डी की आँखों में कलात्मक चमक देखी और उनका उत्साह बढ़ाया। जब सुभानी का स्थानान्तरण दार-उल-उलूम हैदराबाद में हो गया तो रेड्डी भी उन्हीं के पास हैदराबाद आ गये। उन्हें मिलने वाली छात्रवृत्ति से वे अध्ययन करने लगे। यही उन्होंने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण की। इनके पिता उनके कलाप्रेम से परेशान थे परन्तु रेड्डी अपनी धुन के पक्के थे।¹ बाडेन पॉबेल स्काउट्स वार्षिक समारोह के अवसर पर उन्होंने ब्वाय स्काउट्स के संस्थापक का ऐसा पेंसिल स्केच बनाया कि राजा वेकंटरमण, पुलिस कमिश्नर, जो समारोह के मुख्य अतिथि थे, का ध्यान बालक रेड्डी की प्रतिभा की ओर आकृष्ट हुआ। तब मात्र 17 वर्ष की अवस्था में उन्हें

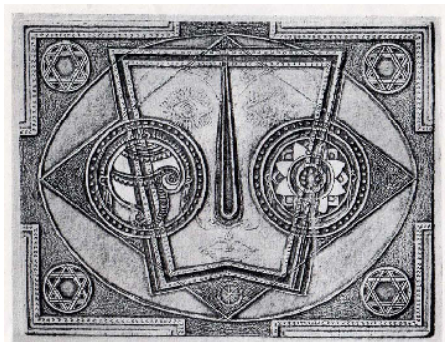
पी0जे0आर0 छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। जिससे उन्होने सन् 1935 में सर दे0जे0 स्कूल ऑफ आर्ट, बम्बई में प्रवेश ले लिया। इसी समय उन्हें व्यक्ति चित्रण में पारंगत चित्रकार 'निजाम' के सालारजंग संग्रहालय में रहने का अवसर प्राप्त हुआ।² रेड्डी ने सन् 1940 में अपने प्रशिक्षण की अन्तिम परीक्षा में न केवल सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। वरन इस उल्लेखनीय सफलता के आधार पर सन् 1942 में उन्हें सर जे0जे0 स्कूल ऑफ आर्ट का फैलो बनाया गया। सन् 1940 में ही उन्हें म्यूरल के लिये भी छात्रवृत्ति प्राप्त हुई थी। तब भित्ति चित्रण के लिये वर्ष 1940-41 में एक हजार रू0 का मिस डॉली करसेटजी पुरस्कार प्राप्त हुआ।

1943 में भी जब उन्होने बम्बई के आर्ट सोसायटी सैलून में अपनी एकल प्रदर्शनी की थी तब उनकी आंखों में एक अद्भुत कलात्मक चमक को देखकर तारा अलीबेग ने 'शेक्सपियर' के नाटक "ओथिलो" के एक वाक्यांश "रिल्यूम द टॉर्च ऑफ आर्ट इन इण्डिया" का प्रयोग उनके सम्मान में किया था।³ सन् 1944 तक वह चित्रकला में प्रवृत्त रहे परन्तु फिर वह कुछ अपरिहार्य कारणों से 1946 में लाहौर में फिल्म उद्योग से जुड़ गये। फिल्मों में भी वे कला निर्देशन का ही कार्य करते थे। किन्तु सन् 1947 में विभाजन के पश्चात हैदराबाद चले गये और घरेलू उपकरण सज्जा का कार्य आरम्भ किया। यह भी 1949 में बंद हो गया तभी उनके पुत्र की मृत्यु हो गयी। किन्तु अपूर्व साहस के साथ उन्होने व्यावसायिक औद्योगिक कला का कार्य किया और एक लम्बे अंतराल बाद 1965 में अपने चित्रों की प्रदर्शनी बम्बई में की और फिर तो मृत्यु पर्यन्त निरन्तर प्रदर्शनियां करते रहे।⁴ बम्बई आने के 4-5 वर्षों के अन्दर ही रेड्डी ने अपनी प्रतिभा सम्पन्नता और गूढ़ विषयों पर भी विचारने की शक्ति द्वारा विश्व स्तरीय कला सृजन में अपना नाम दर्ज करा दिया था। आरम्भ में उत्तर प्रभाववाद का उनके चित्रों पर बहुत प्रभाव है। जैसे उनके सैरे, निर्वसनाएँ तथा स्थिर जीवन के चित्रों में उत्तर प्रभाववाद की विशेषताओं को बहुत ही उत्कृष्ट ढंग से समाहित किया है।

रेड्डी की कला अपनी अंतर्निहित शक्ति, ऐंद्रिकता और वस्तुपरकता के कारण एकदम अलग से पहचानी जाती है रेड्डी ने अपनी कला के मुख्य तत्वों की व्याख्या देते हुए कहा था “अजन्ता, लघु चित्र शैली तथा लोक कला मुझे प्रभावित करते हैं। पश्चिम की अकादमिक कला मुझे रूचि प्रदान नहीं करती परन्तु आधुनिक धारा ने निसंदेह मुझ पर बहुत



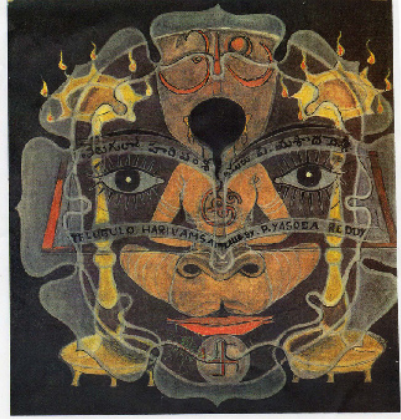
प्रभाव छोड़ा है विशेष रूप से पिकासो व अमूर्तवादी कैण्डन्सिकी।⁵ प्रकृति का सामान्यकरण कर उन्होंने उत्तर प्रभाववादियों के तर्कों का तार्किक निष्कर्ष निकाला”। भारतीय कलाकारों में वह रविन्द्रनाथ ठाकुर, शैलोज मुखर्जी तथा अमृता शेरगिल को महत्वपूर्ण मानते थे। वॉनगॉग के ओजपूर्ण तूलिकाघातो, बलो तथा रंगो की उन्होंने बहुत प्रशंसा की थी। उनकी कला में अतिथार्थवाद की ध्वनि होने से वे निरन्तर प्रयोगशील रहे। 1967 से रेड्डी का सारा ध्यान नव-तांत्रिक कला पर केन्द्रित हो गया। जिसके वह मुख्य कलाकार माने जाते हैं अपनी इस नवीन शैली में उन्होंने 200 से भी अधिक चित्र बनाये हैं



क्योंकि 1969 से नव तांत्रिक कला पर अपना ध्यान ऐसा केन्द्रित किया कि तदुपरान्त उनका प्रत्येक चित्र तांत्रिक कला की छाप लेकर नवतंत्र कला को प्रतिष्ठित करता है जिनमें उनकी गहन भावभिव्यक्ति छिपी रहती है। विषय और अभिव्यक्ति की विविधता होते हुए भी उनकी यह शैली तांत्रिक बिम्बों और प्रतीकों के सहारे विकसित हुई। जिसका श्रेष्ठ उदाहरण 1973 की चित्रित नेहरू श्रृंखला के चित्र है। उनके इस शैली की ओर प्रवृत्त होने का मुख्य कारण यह है कि उनकी पत्नी श्रीमती यशोदा रेड्डी की प्रार्थना पर तेलगू

के शास्त्रीय ग्रंथ 'हरिवंशम्' को तान्त्रिक पद्धति में सचित्र करने पर उन्होने तंत्र के महत्व को समझा क्योंकि श्रीमती यशोदा का आग्रह था कि चित्र भारतीय चित्रकला सिद्धान्त पर आधारित होते हुए भी आधुनिक संवेदनशीलता के अनुरूप हो।⁶ अतएव उन्होने तान्त्रिक पद्धति का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करके प्राचीन भारतीय तंत्र कला के प्रतीकों को समकालीन कला के संदर्भ में सफलतापूर्वक अपनाया। उनकी तान्त्रिक शैली विवेचनात्मक है न कि अल्पज्ञ। जो बिन्दू और शक्ति, योनि और लिंग पर सतही तौर पर आधारित नहीं है क्योंकि तंत्र के प्रति उनका दृष्टिकोण गम्भीर था तंत्र उनके लिये एक पूर्णत्व प्राप्त विद्या है। उन्होने स्वयं लिखा है कि इसे हम अपनी जीवित परम्पराओं, धार्मिक संस्कारों, कर्मकाण्डों, अनुष्ठानों, समारोहों, व्रत, त्यौहारों इत्यादि में पाते हैं। हमारा जीवन जन्म से मृत्यु तक धार्मिक कृत्यों व लोकाचार में तान्त्रिक पद्धतियों, प्रतीकों व चिन्हों व अनुष्ठानों से परिव्याप्त है। इसी प्रकार हमारे धार्मिक कर्मकाण्डों में तान्त्रिक अवधारणा, तान्त्रिक ज्यामितीय रेखा चित्र और तंत्र दर्शन समाहित है। निःसन्देह ये प्रतीक और यंत्र-बीते वर्षों में बदली हुई रूचियों, प्रवृत्तियों के अनुसार समय के प्रवाह के साथ-साथ ओर अधिक परिष्कृत, जटिल और समानुरूप हो गये हैं।" परन्तु इसके पीछे छिपे दार्शनिक दृष्टिकोण, चित्रकला व प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी मान्यताओं में कोई बदलाव नहीं आया।⁷ परन्तु इन मान्यताओं को ध्यान में न रखते हुए पी0टी0 रेड्डी ने तंत्र के चाक्षुष रूपों को अपनी कलाकृतियों में स्थान दिया है। वास्तव में रेड्डी ने परम्परागत तंत्र का अन्धानुकरण नहीं किया है वरन् उन्होने इसे एक नयी दृष्टि से देखा, जिससे उन्होने उसमें से केवल वही ग्रहण किया अर्थात् उन्होने वही प्रतीक व चिन्ह अपनाये, जो उनके स्वयं की कल्पना, निजी दृष्टिकोण और शैली के अनुसार उनकी चित्रभाषा के लिये उपयुक्त थे। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वे अपनी कृतियों में समसामयिक विषयों को चित्रित करते समय परम्परागत तंत्र दर्शन और तान्त्रिक चित्रकला के अनुकरण की अपेक्षा उनकी व्याख्या करते थे।⁸ जैसे कि वह शिव, विष्णु व ब्रह्मा को उन्होने समकालीन दृष्टि से चित्रित किया है। उनके प्रिय देवता

सूर्य है जो संसार की रचना व विनाश की असाधारण शक्ति रखते है। 'प्रेरण तादायक चन्द्रमा', 'प्रत्यय' और 'सत्य' उनके ऐसे चित्र है जो तंत्र से पूर्णत प्रभावित है। नवम्बर 1990 में आयोजित प्रदर्शनी में उन्होने शिव, विष्णु, ब्रह्मा, श्री कृष्ण आदि शीर्षको के साथ अपनी अनेकों तांत्रिक कलाकृतियां प्रदर्शित की थी। उनके अनुसार देवता अथवा ईश्वर का अर्थ है सूर्य तथा पृथ्वी। ये सृष्टिकारक तथा संहारक दोनों रूपों में हो सकते है। इनका चित्रण उन्होने प्रतीकात्मक रीति से अत्यधिक किया है। इस प्रकार के चित्रों का एक वृहद संग्रह उनके आवास पर स्थित सुधर्मा आर्ट गैलरी, हैदराबाद में देखा जा सकता है।



ललित कला अकादमी ने 14 से 24 अक्टूबर, 1979 में उनके 194 कार्य चुनकर प्रदर्शित भी किये थे जो उन्होने 1935 से 1979 की समयावधि में चित्रित किये थे यह चयन के०के० हेब्बर जैसे प्रतिष्ठित कलाकार द्वारा किया गया था जिनमें चित्रों के संयोजन व डिजाइन की अद्भुत योग्यता, स्पर्शातीत तकनीक, सन्तुलित लय, रेखा की शक्ति, रंगों का कोमल प्रदर्शन और इनकी मध्यम तानों पर उत्कृष्ट नियन्त्रण, विस्तृत वर्णन की दृष्टि और विस्तार से भी परे जाने का साहस, सामन्जस्य, विरोधाभास, विविधता और ओजस्विता सभी उत्कृष्ट था उपर्युक्त विशेषताओं के साथ चित्रित उनके व्यक्ति चित्र, वस्तु चित्रण, अमूर्त चित्रण, तांत्रिक चित्र दर्शनीय है।



1978 में भारत सरकार के सांस्कृतिक विभाग ने उन्हें दो वर्ष की एक छात्रवृत्ति तांत्रिक रूपों पर शोध करने हेतु प्रदान की थी। 1980 में आन्ध्र प्रदेश

सरकार ने उन्हें आजीवन 'राज्य के आस्थान चित्रकार' अर्थात प्रदेश के राजकीय स्थायी चित्रकार के पद पर नियुक्त किया था। तांत्रिक दर्शन को भी उन्होंने अपने प्रतीकों द्वारा प्रस्तुत किया है जैसे 1988 के 'ब्रह्माण्डीय नृत्य' व 'ब्रह्माण्डीय ऊर्जा' नामक चित्रों में दर्शनीय है।

समसामयिक विषयों का तांत्रिक पद्धति में चित्रांकन उन्हें विशेष प्रिय था। उदाहरणार्थ 1980 का 'काश्मीर घाटी' नामक चित्र। इस चित्र में उन्होंने कश्मीर की प्रत्येक विशेषता तथा जन-जीवन को अष्टफुलियाँ (कमल दल) यंत्र रूप में प्रस्तुत किया है मानो कोई धार्मिक यंत्र है जिसके मध्य में आलौकिक दृष्टि से कश्मीर को निहारती किसी दैविक शक्ति का चित्रण किया गया है। 1987 में एक अन्य चित्र 'उद्योग ऊर्जा' में गतिशील वृत्त के भीतर 'श्री यंत्र' की भाँति दो अधोमुखी व उर्ध्वमुखी त्रिभुजों का अंकन चित्र को यंत्रवत् आकार प्रदान करता है। परन्तु मध्य में अंकित बीकर व जार इसके वैज्ञानिक सम्बन्ध को प्रदर्शित करते हैं।



इन चित्रों द्वारा रेड्डी ने भारतीय सार के प्रश्न पर संघर्षरत अपने समकालीन अन्य कलाकारों की भाँति अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिकतावाद के परिपेक्ष्य में अपनी तांत्रिक कला कृतियाँ प्रस्तुत की हैं कला इतिहासविद् तथा आलोचक जया अप्पासामी

ने उन्हें ठीक ही 'संक्रांतिक आधुनिक कलाकार' की उपाधि दी थी।⁹ यदि भारत में आधुनिकतावाद, पश्चिमी साम्राज्यवाद व आधुनिकता के मानकों के विरुद्ध है तब यह आश्चर्यजनक नहीं है कि इस दौर के कलाकार पश्चिमी आधुनिकता को पार करके अर्थात इसे पीछे छोड़ देने के प्रयास में लगे हैं क्योंकि वे वास्तविक भौतिक परिवर्तन में जी रहे हैं रेड्डी का कार्य

हमें यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखता है तथा यह भारतीय आधुनिकतावाद के संघर्ष के वृत्तांत में कुछ स्पष्टता प्रदान करता है।¹⁰

नव तांत्रिक कलाकार और पश्चिमी आधुनिक कलाकार दोनों ही आध्यात्मिक और भौतिक के मध्य के खिचाव को प्रतीकों व चिन्हों द्वारा अभिव्यक्ति करते हैं क्योंकि ये प्रतीक व चिन्ह एक प्रकार के विशिष्ट रूप और सांस्कृतिक प्रणालियों और उन्नत आध्यात्मिकता की अभिव्यंजना करते हैं, विश्वक पैटर्नस और संवेदनात्क बोध से मुक्त होते हैं, इसी कारण रेड्डी द्वारा प्रयुक्त प्रतीक तांत्रिक आध्यात्मिक प्रणाली से सम्बद्ध है और उनके द्वारा की गयी ध्वनि की व्याख्या भी इसी विचार का आचरण करती है आधुनिक कलाकारों के संघर्ष का मुख्य बिन्दु आध्यात्मवाद और आधुनिकवाद के मध्य सन्धि सम्बन्धी रहा है यह सन्धि रेड्डी ने तांत्रिक रूपों द्वारा निश्चित की है 1960 व 1970 के दशक में नव तांत्रिक विचारधारा के बलवती होने का एक कारण यह भी था जिसने पश्चिमी व भारतीय संस्कृति के प्रति ऐसी एपील की।

रेड्डी ने भी ऐसी ही आधुनिकता की समस्यापरक चाकू जैसी धार पर चलकर वैयक्तिक रीति से अमूर्त चित्रांकनों के माध्यम से स्वदेशी परम्परा को अपनाया। रेड्डी की तांत्रिक शैली वाली कृतियों को न केवल भारत में वरन् विदेशों में भी महत्वपूर्ण स्थान मिला। उनके इन चित्रों की प्रदर्शनी यू0के0, यू0एस0ए0, यू0एस0एल0आर0, स्वीडन, स्वीटर्लैण्ड तथा ग्रीस में आयोजित हुई उन्हें यू0एस0ए0 में केन्चुकी की सम्मानित नागरिकता भी प्रदान की गयी थी।¹¹

1976 में फारले डिकिन्सन यूनिवर्सिटी, यू0एस0ए0 के निमंत्रण पर वह श्री सॉल रॉनसन के सौजन्य से यू0एस0ए0 गये जिससे उन्हें अमेरिका के संग्रहालय व कला विधिकार्यें घुमने का अवसर मिला एवं अपने मानकों कल्पना शक्ति का मूल्यांकन कर ओर विकसित करने का अवसर प्राप्त हुआ। 1979 में रेड्डी आन्ध्र प्रदेश के प्रतिनिधि कलाकार के रूप में ललित कला अकादमी, नई दिल्ली के सदस्य रहे और बाद में रेड्डी नई कॉंसिल के द्वारा अकादमी के वाइस चेयरमैन भी चुने गये।²³ उनके सयोजन बड़े पेचीदा

ढंग से वर्गाकार, वृत्ताकार यंत्रवत फोरमेट पर बने है विषयों की विविधता होने पर भी कार्य करने की पद्धति तांत्रिक यंत्र रचना पर ही आधारित रही जो दर्शक को रेड्डी की कल्पना शक्ति का लोहा मानने को विवश कर देती है। निष्कर्षतः रेड्डी की कला चाहे वह राजनैतिक, धार्मिक और आधुनिक हो सामान्यतः लोक शक्ति की तांत्रिक परम्परा में समायोजित है।

सन्दर्भ सूची

- (1) कौल, के0एल0 - वोज एण्ड विजन-लेख ललित कला कन्टेम्प्रेरी-28, पृ0सं0-16
- (2) वही
- (3) वही
- (4) रमन, ए0एस0 - पी0टी रेड्डी (मोनोग्राफ) ललित कला अकादमी, नई दिल्ली से प्रकाशित
- (5) वही
- (6) वही
- (7) वही
- (8) वही
- (9) अप्पासामी, जया - पेन्टर्स ऑफ द ट्रान्जिशन, 1972, नई दिल्ली, पृ0सं0-6 पर 25 इयर्स ऑफ इण्डियन आर्ट, पेन्टिंग, स्कल्पचर एण्ड ग्राफिक इन द पोस्ट इन्डिपेन्डेन्स इरा
- (10) कपूर, गीता - देन वॉज मार्टिनिज्म इन इण्डियन आर्ट, तुलिका, नई दिल्ली, 2000,

प्रेरणा चौधरी
प्रवक्ता (चित्रकला)
कनोहर डिग्री कॉलेज
चौधरी चरण सिंह यूनिवर्सिटी
मेरठ

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

भारतीय चित्रकला में ताड़पत्र का योगदान

भारत में प्राचीन काल की अधिकतर हस्तलिपियां ताड़पत्रों पर ही मिलती हैं। मृच्छकटिका में पुस्तक शब्द का प्राकृत रूप “पोत्थम या पोधा” मिलता है। इसी से पोथी शब्द भी बना है। वाणभट्ट ने हर्ष चरित और कादम्बरी में चण्डिका और कादम्बरी, दोनों ही रचनाओं में पुस्तक शब्द का प्रयोग किया है। कादम्बरी में चण्डिका और कादम्बरी, दोनों ही रचनाओं में पुस्तक शब्द का प्रयोग किया है। कादम्बरी में चण्डिका देवी के मन्दिर में तमिल देशवासी पुजारी के वर्णन में लिखा है:— “धूमरक्तालक्त काक्षरताल पत्र कुहक तन्त्र—मन्त्र पुस्तिका संग्राहिणा” अर्थात् उस पुजारी के पास कज्जल और लाल अलक्तक से बनी स्याही से ताल पत्र पर लिखी तन्त्र मन्त्र की पुस्तकों का संग्रह था। इससे विदित होता है कि उस समय तक ताल पत्रों पर रंग बिरंगी स्याहियों से लिखने की प्रथा भी प्रचलित थी।¹ जैन ग्रन्थकारों और कलाकारों की निपुणता का दर्शन ताड़पत्रीय पोथियों में देखने को मिलता है। ‘सिद्ध हेम व्याकरण’ और ‘कालकाकथा’, ‘बालमित्र’ और उसकी पत्नीज्वलन्त उदाहरण है। इस युग के कलाकारों एवं विद्वानों मुनियों ने भी स्वर्णमय और रजतमय स्याही से मूल्यवान चित्रों एवं पोथियों का निर्माण किया।² पाल पोथियों में सचित्र पोथियाँ दो दर्जन से कम मिलती हैं और जो प्राप्त हैं, उनमें ‘साधनमाला’, ‘गन्धव्यूह’, ‘करनदेवगुहा’, ‘पंचशिखा’, ‘मधयान बौद्ध पोथियाँ’ हैं।³

ताड़पत्रों के प्रकार — ताड़ या ताल वृक्ष दो प्रकार के होते हैं एक खरताड़ और दूसरा श्रीताड़ा गुजरात, सिंध और राजस्थान में कहीं-कहीं खरताड़ के वृक्ष पाये जाते हैं इनके पत्ते मोटे और कठके व लम्बे चौड़े होते हैं ये सूखकर तड़कने भी लगते हैं और कच्चे तोड़ लेने पर जल्दी ही सड़ या गल जाते हैं। इसलिए इनका प्रयोग पोथी लिखने में नहीं किया जाता। श्रीताड़ के पेड़ दक्षिण में मद्रास और पूर्व में बर्मा आदि देशों में उगते हैं इन पेड़ों के पत्ते अधिक

लम्बे, लचीले और कोमल हैं ये पत्ते 37 इंच तक लम्बे होते हैं।⁴ कभी-कभी इससे भी अधिक परन्तु इनकी चौड़ाई 3 इंच या इसके लगभग ही होती है। ताड़पत्रीय ग्रन्थों की माप प्रायः 22"× 2½" है। चित्र स्थान को छोड़कर शेष भाग में काली स्याही से सुन्दर अक्षरों को लिखा जाता था प्रायः ताड़पत्र पर दोनों ओर लम्बवत् तथा मध्य में क्षैतिज आलेखन स्थान निश्चित किया जाता था।⁵

लेखन प्रक्रिया— श्री ताड़पत्रों को उबालकर उन्हें शंख या कौड़ी से रगड़ा या घोंटा जाता था। जिससे के चिकने हो जाते थे। फिर लोहे की कलम से उनपर कुरेदते हुए अक्षर लिखे जाते थे तदन्तर उन पर स्याही लेप दी जाती थी जो कुरेदे हुए अक्षरों में भर जाती थी यह तरीका दक्षिण भारत में अधिक प्रचलित था। उत्तर भारत में प्रायः ताड़पत्रों पर स्याही से लेखनी द्वारा लिखा जाता था "संस्कृत" में "लिख्" धातु का अर्थ हुआ— कुरेदना। अतः इस क्रिया का नाम लेखन या लिखना हुआ है। "लिप" धातु का अर्थ है—लीपना। ताड़पत्र पर अक्षर कुरेद कर उन पर "स्याही लेपन" के कारण लिपि शब्द का प्रयोग भी चालू हुआ।

ताड़पत्रों के दूसरे प्रयोग में उन्हें भिगोकर या गलाकर उनकी लुगदी बनाकर कूट-पीसकर अधिक चौड़ाई के पत्रों का निर्माण किया जाने लगा। ऐसा पूर्वीय देशों में होता था महाराजा जयपुर के संग्रहालय में महाभारत के कुछ पूर्व ऐसे ही पत्रों पर वंग लिपि में लिखे हुए हैं।⁶ जिनका लिपि संवत् लक्ष्मण सेन वर्ष में है। इसी प्रकार मोटाई अधिक करने के लिए तीन या चार पत्रों को एक साथ सीकर उन पर लिखा जाता था ऐसा करने में अधिक स्थिरता आ जाती और ऐसे ग्रंथ बर्मा या ब्रम्हा देश में अधिक पाये गये हैं। ताड़पत्रों के लिए गर्म जलवायु हानिकारक होती है इसलिए अधिक मात्रा में लिखे जाने पर भी ताड़पत्रीय ग्रंथ दक्षिण भारत में कम मिलते हैं। कश्मीर, नेपाल, गुजरात व राजस्थान आदि ठण्डे और सूखे प्रदेशों में अधिक संख्या में मिलते हैं। नेपाल की जलवायु को इन ग्रंथों के लिए आदर्श बताया गया है। ताड़पत्र पर लिखित जो प्राचीनतम प्रतिमाएँ मिली हैं वे पशुपत के आचार्य रामेश्वरध्वज कृत "कुसुमांजलि टीका" और "प्रबोध सिद्धी" है इनका लिपिकाल ईसा की प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी बताया गया है। नेपाल के ताड़पत्रीय ग्रंथ संग्रह में "स्कन्दपुराण" (नवी शताब्दी में लिखित) और "लंकावतार" (906-7

ई० में लिखित) की प्रतियां सुरक्षित हैं। राजस्थान में जैसलमेर के गंथ भण्डार अपने प्राचीन ग्रंथ संग्रह के लिए सर्वविदित हैं। इनमें से जिन राजसूरीश्वर के शिष्य जिनभद्रसूरि द्वारा स्थापित वृहद भण्डार का 1874 ई. में डॉ. व्हूलर ने अवलोकर करके 1160 वि. की लिखि हुई ताड़पत्रीय प्रति को उस संग्रह की प्राचीन प्रति बतलाया है इसके 1904-5 ई० हीरालाल हंस राज नामक जैन पण्डित ने दो हजार दो और ग्रन्थों का सूची पत्र तैयार कराया। इसके आधार पर पी.सी.डी. दलाल द्वारा अनुसंधान करने पर संवत् 1130 में लिखित "तिलक मंजरी" और 1139 में लिपिकृत "कुवलयमाला" की ही प्रतियाँ प्राचीनतम प्रमाणित हुई। इस संग्रह में अर्वाचीनतम ताड़पत्रीय प्रति "सर्वसिद्धान्त विशमपदपयीय" नामक प्रति संत 1439 वर्ष में लिखित है।⁷

गुजरात के रबम्मात के शांतिनाथ ज्ञान भण्डार में भी संवत् 1164 में लिखित "जीत सभासवृन्ति" और 1181 संवत् में लिखित मुनिचन्द्रसूरि रचित "धर्माबिन्दुटीका" का प्राचीनतम ताड़पत्रीय प्रतियां उपलब्ध है।

भाण्डारकर ओरिण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना में "उपमिति भवप्रपंच कथा" नामक जैन ग्रंथ की 178 पत्रों की ताड़पत्रीय प्रति उपलब्ध है। जो विकृत संवत् 962 (905-6) ई० में लिखी हुई है। इस ग्रंथ की भाषा संस्कृत है।

ताड़पत्रीय ग्रंथो पोथियों में मध्य मे छेद रहता था जिसमें सूत्र या नाड़ी (डोरी) पिरोई जाती थी, इनकी सुरक्षा हेतु ऊपर एवं नीचे लकड़ी के पटरे जो आकार में ताड़पत्रों से थोड़े बड़े होते हैं, लगाए जाते हैं, जिन्हें पर या पटली कहा जाता है दोनो पटलियों में भी ताड़पत्र के छेद के अनुसार छेद होते हैं जिनमें से सूत्र या नाड़ी पिरोकर कसकर ग्रन्थि (गाँठ) लगाई जाती है। यह पत्रो की सुरक्षा एवं सीधा रखने के लिए किया जाता था इन ग्रंथि के आधार पर पोथी को ग्रंथ कहने की परम्परा है बाद में कागज का प्रचलन होने पर पोथी नाम प्रचलित हुआ। पोथी नाम कबीर काल तक प्रचलित हो गया था।⁸

ग्रन्थों में चित्र— मुख्यतः चित्रो में अलंकरण के लिए बेलबूटो के साथ पशुओं की आकृतियां भी चित्रित है। 13वीं शती में देवी देवताओं का चित्रण बाहुल्य से होने लगा। ये सभी प्रतियां ताड़पत्र पर है चित्र भी ताड़पत्र पर ही बने है। 1100 से 1400 ई० के मध्य जो चित्रित ताड़पत्र तथा पाण्डुलिपियां मिलती है

उनमें “अंगसूत्र” कथा सरिता सागर त्रिशशित शालाका—पुरुष चरित्र “श्री नेमिनाथ चरित्र”, “श्रावक—प्रतिक्रमण चूर्णि” आदि मुख्य है।⁹ (चित्र 1 से 4)

चित्र रचना—प्रयुक्त वर्ण

सबसे पहली चित्रित कृति ताड़पत्र पर लिखित निशीय—चूर्णि नामक पांडु लिपि है जो सिद्ध राज जयसिंह के राज्य काल में 1100 ई० में लिखि गयी थी और अब पाटन के जैन भण्डार मे सुरक्षित है इसमें बेल—बूटे और कुछ पशु—आकृतियाँ है 13वीं शताब्दी में देवी—देवताओं के चित्रण का बाहुल्य हो गया। अब तक ये पोथियां ताड़पत्र पर ही थी। 14वीं शताब्दी में कागज का प्रयोग हुआ। पाल शैली के अन्तर्गत चित्रित पोथियाँ ताल पत्रों में है। लम्बे—लम्बे ताड़पत्रों के एक से टुकड़े काटकर उनके बीच में चित्र के लिए स्थान छोड़कर दोनों और ग्रन्थ लिख दिया जाता था नागरी लिपि में बड़े सुन्दर अक्षरो में यह लिखाई की जाती थी। बीच में खाली स्थानों में सुरुचिपूर्ण रंगों में चित्र बनाये जाते थे सुन्दर और सुधड़ आकृतियाँ बनाई जाती थी। जिनमें बड़े आर्कशक ढंग से आंखों और अन्य अंग प्रत्यंगों का आलेखन होता था।¹⁰

1451 में चित्रित बंसल विलास के समय से कला जैन बौद्ध एवं वैष्णव धर्म का पल्ला छोड़ कर लोकिक हो चली थी यह एक नया मोड़ था। काम शास्त्र के ग्रन्थ ही नहीं प्रेम गाथाएं जैसे चन्दायन, गृगावती आदि भी सचित्र मिलती है। यह चित्र बहुधा रंगीन होते थे तथा विविध रंगों से चित्रित किये जाते थे। लाल रंग, हिंगलू से, पीला हरलाल से, सफेद शंख से, नीला रंग नील से, व सोने चाँदी आदि एवं इनके मिश्रित रंगों से अन्य रंगों की रंगत बनाकर चित्र में प्रयुक्त किये जाते थे।

ग्रन्थों में प्रयुक्त स्याही— ग्रन्थों के लिखने हेतु कई प्रकार की स्याहियों का प्रयोग दृष्टिगत होता है।

1. काजल या इण बोल (बीजा बोल), भूमिलया या जल भोगरा थोड़ा पारा इन्हें उष्ण जल में मिलाकर तांबे की कढ़ाई में डालकर सात दिन ऐसा घोटें कि सब एक हो जाए तब इसकी बड़िया बनाकर सुखा लें। स्याही की आवश्यकता पड़ने पर इन बड़ियों को आवश्यकतानुसार गर्म पानी में खूब मसल कर स्याही बना लें इस स्याही में लिखे अक्षर रात में भी दिन की भांति ही पढ़े जा सकते हैं।

2. नये काजल की स्वखे (सकोरे) में रखकर ऊंगलियों से उसे इतना मलें

या रगड़ें कि रखे से लगकर उसका चिकनापन छूट जाए तब नीम के गोंद या खैर के गोंद और वियाजल के मिश्रण में उक्त काजल को मिलाकर इतना घोंटे कि पानी सूख जाये फिर बड़िया बना लें।

3. नीम का गोंद उससे दुगना बीजाबेल, उससे दुगना तिलो का तेल कागज लें ताम्बें का कढ़ारी मे तेज आँच पर इन्हे खूब घोटें और उसमें जल तथा अलता (लाक्षारस) की थोड़ा-थोड़ा करके सौ भावनाएं दें और अच्छी स्याही बनाने के लिए इसमें शोधा हुआ भिलवा तथा भांगरे का रख डालें।¹¹

डोरा : डोरी

ताड़पत्र के ग्रन्थों के पन्ने अस्तव्यस्त न हो जाए इसलिए एक विधि का उपयोग किया जाता था। ताड़पत्रों की लम्बाई के बीचोंबीच ताड़ पत्रों को छेद कर एक डोरा नीचे से ऊपर तक पिरो दिया जाता था। इस डोरे से सभी से सभी पत्र नत्थी होकर यथास्थान रहते थे लेखक प्रत्येक पन्ने के बीच में एक स्थान कोरा छोड़ देता था। यह स्थान डोरे के छेद के लिए छोड़ा जाता था।¹²

सन्दर्भ सूची

1. वर्मा, डॉ० नाथूलाल : राजस्थानी चित्रशैली की विभिन्न चित्रण विधियाँ, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2009, पृष्ठ संख्या 98
2. प्रताप, डॉ० रीता : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2003, पृष्ठ संख्या-115
3. वहीं : पृष्ठ संख्या 110
4. वर्मा, डॉ० नाथूलाल : राजस्थानी चित्रशैली की विभिन्न चित्रण विधियाँ, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2009, पृष्ठ संख्या-97
5. अग्रवाल, आर.ए. : कला विलास भारतीय चित्रकला का विवेचन, लॉयल बुक डिपो, मेरठ 2007, पृष्ठ सं० 66
6. वहीं, : पृष्ठ संख्या 98-99
7. कुमार, डॉ० शैलेन्द्र : उत्तर भारतीय पोथी चित्रकला, कला प्रकाशन, वाराणसी 2009, पृष्ठ संख्या-13
8. वर्मा, डॉ० नाथूलाल : राजस्थानी चित्रशैली की विभिन्न चित्रण विधियाँ, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2009, पृष्ठ संख्या-102
9. वही : पृष्ठ संख्या-104
10. वही : पृष्ठ संख्या-105

(चित्र-1)



(बाबागोपाल स्तुति (१५वीं शती का अन्तिम अनुपात)

(चित्र-2)



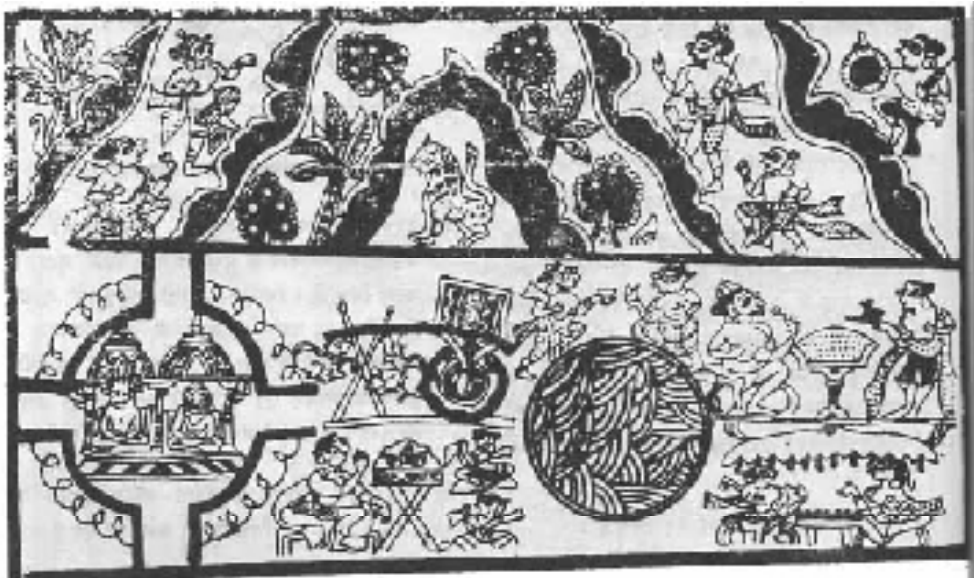
(बाबागोपाल स्तुति (१६वीं शती का अन्तिम अनुपात)

(चित्र-3)



राम राजा से रीति मुनि कालकाचार्य को भेंट (कल्पसूत्र व महावकाचार्थ कथा)

(चित्र-4)



पवनोर्ध्वं पत्त का एक दृश्य (१४६३ ई०)। त-इपत्रोप कृष्णक लखार रावन में संघर्षीय

अमनदीप कौर
शोध छात्रा
पेसेफिक यूनिवर्सिटी
उदयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

समसामयिक कला जगत में जयपुर की महिला कलाकारों के चित्रों एवं शिल्पों के माध्यम

किसी भी महिला कलाकार की कला शैली व माध्यम एकाएक निर्मित नहीं होते। इसके विकास में अनेक तत्वों का योगदान होता है। इन तत्वों में युगीन परिवेश अर्थात् तत्कालीन युग की परिस्थितियां तथा परिवेश सर्वाधिक प्रभावित करती है। महिला कलाकार व समाज का गहन सम्बन्ध है। एक ओर तो समाज महिला कलाकारों को प्रभावित करता है तो दूसरी ओर महिला कलाकार भी अपने सृजन के माध्यम से समाज को अभिव्यक्त करती है। प्रत्येक महिला कलाकार अपने आस-पास के माहौल पदार्थों, घटनाओं तथा अपनी भावानुभूतियों को अभिव्यक्त करना चाहती है। महिला कलाकार अमूल्य अनुभूतियों को आकार देने के लिये कई प्रकार के माध्यमों की खोज करती है, उनका प्रयोग करती है कई बार तकनीक के अभाव में अनुभूतियों को साकार करना कठिन होता है। महिला कलाकार इन्हीं भावाभिव्यक्तियों के लिये अनेक सशक्त तकनीकों व माध्यमों का सफल प्रयोग करती रही है। इन्होंने कोई एक ही माध्यम या एक ही तकनीक में बंधकर रहना पसंद नहीं किया तथा जो स्वयं को अच्छा लगे वही नये-नये प्रयोग दिन-प्रतिदिन अपने सृजन में रूपायित किये हैं। अतः चित्र का मुख्य आधार और अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम रेखांकन होता है।

समसामयिक कला जगत में जयपुर की महिला चित्रकारों एवं शिल्पकारों ने अपने चित्रों एवं शिल्पों में सहज एवं सुकोमल भावनाओं को व्यक्त करने के लिए समर्थ प्रयास किए हैं। आज के युग में हर महिला कलाकार नये-नये माध्यमों का चुनाव करना पसंद करती है ठीक उसी प्रकार जयपुर की इन महिला कलाकारों ने भी अलग-अलग माध्यमों में कार्य किया है। अतः हर चित्रकार व मूर्तिकार के चित्रों एवं शिल्पों की निर्माण विधियाँ भिन्न-भिन्न माध्यमों

में पाई गई हैं। कुछ महिला कलाकारों के चित्रों व मूर्तियों की तकनीके तो बिल्कुल ही अलग पाई गई हैं। नये-नये माध्यमों का प्रयोग किया गया है। ग्राफिक महिला कलाकारों के तकनीकी अनुभव में रंगीन लिथोग्राफी, सेरीयोग्राफी, विस्कोसटी और मिश्रित माध्यम जैसी नई तकनीकें भी जुड़ी हुई हैं। महिला चित्रकारों ने छापाचित्रकला की विभिन्न पद्धतियों-परिष्कृत रेखा से युक्त एंजिंग और एन्ग्रेविंग चित्र, स्पष्ट रंगसंगति वाले लिथोग्राफ और उत्तम टेक्सचर से युक्त वुडकट तथा लीनोकट चित्र में उत्कृष्ट तरीके के चित्र बनाये और ग्राफिक माध्यम की विविध संभावनाओं को उजागर किया। इन महिला कलाकारों की कृतियों में सामान्य से अत्यन्त परिष्कृत स्तर तक को देखा जा सकता है।

महिला चित्रकारों ने तैलचित्र, जलरंग चित्र, एक्रेलिक चित्र, कोलाज चित्र, रिलीफ चित्र, रेत से बने चित्र, चारकोल चित्र, छाया चित्र, सेरीयोग्राफी, फो. टोलिथो, लिथोग्राफी, जिन्क प्रिन्ट, शैविंग फोम क्रीम प्रिन्ट, डिजीटल पेन्टिंग्स, लिनोकट, वुडकट, पेपर मैशी पेन्टिंग्स, विस्कोसिटी मैथड के चित्र, कोलाज में डिजिटल चित्रण, म्यूरलस (भित्ति चित्र), सीमेन्ट कोन्क्रीट से बनाई गई मूर्तियाँ, मार्बल से बनी मूर्तियाँ, ब्रॉन्ज की मूर्तियाँ, स्क्रैप मेटल से बनी मूर्तियाँ, लकड़ी की मूर्तियाँ व ग्राफिक महिला कलाकारों की तकनीकी अनुभव में सिल्क-स्क्रीन, रंगीन लिथोग्राफी और मिश्रित माध्यम जैसी नई तकनीकों का प्रयोग इन महिला कलाकारों ने अपने चित्रों में किया और मृदमांड (पॉटरी), महिला कलाकार-शिल्पियों में सिरेमिक एक पसंदीदा माध्यम है। सिरेमिक, महिला कलाकारों की कलाकृतियों में कुछ अलग उभरे हुए माध्यम के रूप में प्रयोग में लिया गया है। सिरेमिक से रिलीफ चित्रों को भी नया रूप प्रदान किया गया है।

समसामयिक कला जगत में इन महिला कलाकारों ने अपनी कृतियों का निर्माण मनोभावों से किया है। कला के प्रति सम्पूर्ण आत्म समर्पण से अपनी कृति का निर्माण किया व कलाकृतियों में सूक्ष्मता एवं अरूपता की बाढ ही ला दी गई। ये महिला कलाकार मौलिकता, नवीनता, उपयोगिता के नाम पर ऐसी कलाकृतियों का निर्माण कर रही हैं जो कलाकृतियाँ स्वयं में सौन्दर्य की मूल भावना को समाहित किए होती हैं। सौन्दर्य, महिला कलाकार के सौन्दर्य बोध से युक्त होकर कलाकृति में सजीव हो उठता है। अतः जयपुर की किस महिला चित्रकार व मूर्तिकार ने किस-किस माध्यम से कार्य किया है विस्तार से जानते हैं।

सीमेन्ट-कोन्क्रीट में मूर्तियाँ :- सीमेन्ट कोन्क्रीट में मूर्तियाँ ऊषा रानी हूजा ने बनाई। इन मूर्तियों की लम्बाई 16 फीट तक देखी जा सकती है व यह मूर्तियाँ जयपुर के कई स्क्रीज (चौक) पर देखी जा सकती है। ऊषा पहली महिला मूर्तिकार थी जिसने सीमेन्ट कोन्क्रीट को अपनी मूर्तियों का माध्यम बनाया। अतः ऊषा रानी सब कार्य स्वयं करती थी कारीगरों की सहायता कभी नहीं ली।

ब्रॉन्ज (धातु) की मूर्तियाँ :- ब्रॉन्ज (धातु) में सुमन गौड व ऊषा रानी हूजा ने कार्य किया व उनकी धातु से बनी मूर्तियों को देश-विदेश में अनेकों जगहों पर रखा गया है।

संगमरमर/मार्बल ने बनी मूर्तियाँ :- छेनी हथोड़ी उठाकर कार्य करना महिलाओं के लिए काफी मुश्किल है परन्तु सुमन गौड संगमरमर अपना माध्यम बनाए हुए है और मूर्तियों को सुन्दर आकारों में गढ़ रही है।

लकड़ी की मूर्तियाँ :- सुमन गौड द्वारा बनाई लकड़ी की मूर्तियों को यूरोप के देशों में प्रदर्शित किया गया है।

म्यूरलस (भित्ति चित्र) :- भित्ति चित्रण में फ्रेस्को ब्रूनो, फ्रेस्को सेक्को, छोटी-छोटी टाइल्स बनाना, जयपुर फ्रेस्को, एनकास्टिक, मणिकुट्टिम आदि माध्यमों में डॉ. किरण सरना, डॉ. रीता प्रताप, डॉ. पुष्पा दुल्लर, इला यादव, इन्दू सिंह, डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला, मंजू मिश्रा, डॉ. ममता चतुर्वेदी आदि ने कार्य किया है।

बाटिक कला :- बाटिक में डॉ. रीता प्रताप ने काफी मात्रा में चित्रण कार्य किया है व कई स्थानों पर इनके बाटिक चित्रों को संग्रहीत भी किया गया।

तैल रंगों में चित्रण :- तैल रंगों में कई महिला कलाकारों चित्र बनाए जिसमें सबसे प्रमुख रूप से रीता प्रताप ने कार्य किया है। इनके अलावा डॉ. रेखा भटनागर, डॉ. कृष्णा महावर, संगीता जुनेजा, डॉ. किरण सरना, डॉ. पुष्पा दुर्लर, उमा शर्मा, मन्जू परिहार, डॉ. बीना जैन, आशा भार्गव, सारिका, रिता पान्डे आदि इन सब ने भी तैल रंगों को अलग-अलग तरीकों से चित्रों में प्रयोग लिया है।

एक्रेलिक रंगों में चित्रण :- अर्चना जोशी, डॉ. किरण सरना, डॉ. पुष्पा दुर्लर, डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला, डॉ. ममता चतुर्वेदी, मीनू श्रीवास्तव, शालीनी, ममता

रोकना, अमनदीप कौर, इरा ताक, गीता सौखिया, डॉ. रेखा भटनागर, अमिता राज गोयल, सारिका, नीलू कनवारिया आदि ने एक्रेलिक रंगों को अपना माध्यम बनाया है।

जलरंग चित्रण :- जल रंग में सबसे अधिक कार्य अन्नपूर्णा शुक्ला ने दृश्य चित्रों को चित्रित करने में किया है।

कोलाज चित्र :- कोलाज में प्रमुख रूप से मणी भारतीय ने उत्कृष्ट कार्य किया है साथ ही मीनू श्रीवास्तव, डॉ. ममता चतुर्वेदी, आशा भार्गव के कार्यों में भी कोलाज का समावेश है।

रिलीफ चित्र :- सुरभि सोनी द्वारा बनाए गए सभी चित्र रिलीफ चित्र है। सुरभि प्रमुख रूप से इसी माध्यम में फूलों का चित्रण करती है। सुरभि के अलावा अमनदीप कौर ने भी कुछ चित्र रिलीफ में बनाए हैं।

पेपर मैशी में चित्र :- इस माध्यम को केवल एक ही महिला चित्रकार मंजू मिश्रा ने अपनाया। इन्होंने पेपर मैशी से ही चित्रों को अलग-अलग तरीकों से बनाया है।

रेत (मिट्टी) से बने चित्र :- रेत से कार्य करने वाली देश की ही नहीं बल्कि विदेश की पहली महिला चित्रकार है डॉ. वीरबाला भावसार है। इन्होंने रेत को अपने चित्रों का माध्यम बनाया है।

चारकोल चित्र :- चारकोल में डॉ. रेखा भटनागर, मीनू श्रीवास्तव, डॉ. ममता चतुर्वेदी, नीलू कनवारिया इन सभी ने कार्य किया।

आपल पेस्टल :- डॉ. रेखा भटनागर, कुक्कू माथुर, नीलू कनवारियाँ के चित्रों का माध्यम रहा है आपल पेस्टल।

इमपेस्टो चित्र :- इमपेस्टो में डॉ. रीता पाण्डे व सारिका ने कार्य किया। डॉ. रीता पाण्डे का इमपेस्टो में चित्रण प्रमुख माध्यम रहा है।

डिजिटल चित्रण :- डिजिटल चित्रण को डॉ. किरण सरना, इन्दू सिंह, डॉ. अर्चना जोशी ने प्रमुख रूप से अपने चित्रों के माध्यम के रूप में चुना है।

विस्कोसिटी :- विस्कोसिटी में अब तक प्रमुख रूप से केवल इन्दू सिंह ही कार्य कर रही है।

लिथोग्राफी :- डॉ. अर्चना जोशी, इन्दू सिंह, इला यादव का प्रमुख लिथोग्राफी या फोटोलिथो माध्यम रहा है।

सेरीयोग्राफी :- इन्दू सिंह ने सेरीयोग्राफी को भी अपने ग्राफिक चित्रण का प्रमुख माध्यम बनाया।

शेविंग फोम क्रीम प्रिण्ट :- शेविंग क्रीम को अपने चित्रों का माध्यम बनाने वाली भारत की पहली युवा महिला चित्रकार अमनदीप कौर इस माध्यम पर प्रमुख रूप से कार्य कर रही है।

लिनोकट :- लिनो ग्राफिक माध्यम का प्रमुख हिस्सा है। इस माध्यम में इन्दू सिंह, इला यादव, मोनिका चौपडा, रीता प्रताप, अमनदीप कौर ने कार्य किया।

बुडकट :- इन्दू सिंह, इला यादव, अमनदीप कौर, रीता प्रताप ने बुडकट में प्रिण्ट बनाये है।

जिन्क प्रिण्ट :- इला यादव, इन्दू सिंह, डॉ. अर्चना जोशी, अमनदीप कौर, रीता प्रताप ने इस माध्यम में कार्य किया।

संदर्भ

- ◆ उपरोक्त विवरण विभिन्न महिला कलाकारों से प्राप्त कर लिखा गया है।

डॉ. मधु भट्ट तैलंग
एसोसिएट प्रोफेसर
संगीत विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

असामान्यता को चुनौती देता “संगीत”

मानव एक सामाजिक प्राणी अथवा सामाजिक इकाई है इस नाते उसे अपना व्यवहार सामाजिक दायरे एवं उसके अनुकूल परिधि में ही संचालित करना होता है। जबकि देखा जाये तो सामान्यता और असामान्यता के बीच विभाजन रेखा खींचना मुश्किल होता है क्योंकि कभी-कभी मानव का आम से हटकर, खास तरह का व्यवहार किसी स्थान पर असामान्य माना जा सकता है किन्तु वह कहीं-कहीं सामान्य जरूरत मानी जा सकती है उदाहरण के लिए किसी ज्ञान धारा के क्षेत्र में दीन दुनिया से हटकर सदैव तल्लीन रहना पागलपन भी कहलाया जा सकता है किन्तु यह भी सत्य है कि यह लगन और सक्रियता हर व्यक्ति में नहीं होती है और जिसमें होती है वह उसे असाधारण बना देती है जो कि कला-विद्याओं के लिए सामान्यतः आवश्यक मानी गई है अतएव इस दृष्टि से असामान्यता का अपना विशेष महत्व है क्योंकि हम सामान्यता को असामान्यता के परिप्रेक्ष्य में ही सही रूप से समझ पायेंगे। यह समझ हम परिस्थितियों के समायोजन-प्रयोजन एवं उकसे अनुकूलन-प्रतिकूलन द्वारा नियोजित कर पायेंगे। उदाहरणार्थ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो आज एक शब्द “मर्यादा” का बहुत प्रयोग किया जाता है। ऑफिस की एक मर्यादा होती है जरूरी नहीं वह घर की भी हो। हम उस मर्यादा के प्रतिकूल घर में ऑफिस की भाषा और ऑफिस में घर जैसी भाषादि अन्यान्य व्यवहारों को लागू करें तो वह असामान्यता विकृति की श्रेणी में मानी जायेगी वह यदि मर्यादित होगी तो वह ‘संस्कृति’ की श्रेणी में गिनी जायेगी अतएव आज की संत्रासपूर्ण, भाग-दौड़ एवं परस्पर होड़ वाली मानव-जीवन प्रणाली क सम्यक आकलन, विश्लेषण एवं उसे संतुलित करने हेतु ‘असामान्य मनोविज्ञान’ (Abnormal Psychology) का प्रादुर्भाव आधुनिक काल की एक महती आवश्यकता के मद्देनजर एक आविष्कार के रूप में उभर कर सामने आया है जिसमें प्रतिकूल व्यवहार को विकृति मानते

हुए उसके स्तर, उसके विविध चरणों, समस्याओं एवं परिस्थितियों का अध्ययन कर उसके निराकरण, उपचार अथवा निदान का अध्ययन एवं व्याख्या की जाती है।¹

‘कोलमेन’ के अनुसार “असामान्य का अर्थ उस असामान्योचित व्यवहार में है जो व्यक्ति व समूह के लिए या दोनों के लिए हानिकारक होता है।”

‘स्ट्रेन्ज’ के अनुसार “असामान्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो कि व्यवहार से संबंधित विकारों, उनके निदानों, वर्गीकरणों तथा उपचारों का अध्ययन करती है और उन सिद्धान्तों का अध्ययन करती है, जो कि उनकी व्याख्या करते हैं।”²

मानवीय व्यवहार का प्रेरक ‘मन’ और उसके भाव-संवेग

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानव का सम्पूर्ण जीवन-चक्र मानव मन से ही प्रेरित है। मानव भावों और विचारों का पुंज है जो कि व्यवहार के रूप में प्रकट होते हुए शरीर में अपनी स्थिति का भान कराते हैं और मन की मस्तिष्क एवम् हृदय में प्रतीकात्मक अवस्थिति का अहसास कराती है। इसलिए मन को शरीर-प्रक्रियाओं का पूरक माना गया है। मन की अभिव्यक्ति का आधार माना गया है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार “यही वो थर्मोस्टेट है जो हमारी सफलताओं को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों स्तर पर नियंत्रित करता है। मन ही शारीरिक चैतन्य एवं उर्जा का स्रोत है, हमारी उपलब्धियों एवं संतुष्टि-असंतुष्टि का नियामक है। "Psychology is the science of mind. It teaches us how to examine our own mind and what changes it undergoes from time to time and contain influences."³

Psychology deals with responses to any or every kind of situation that life presents. By responses or behaviour is meant all form of process, adjustments, activities and expressions of organisms.⁴

देखा जाये तो मन और शरीर परस्पर पूरक हैं। मन खुश होगा तो शरीर भी फर्तीला होगा एवं शरीर रोग ग्रस्त होगा तो मन में भी उदासीनता का समावेश होगा।

मानव के मन द्वारा प्रेरित समस्त क्रियाकलापों को देखा जाये तो मन के तीन भागों को केन्द्र में रखा जा सकता है। चेतन (conscious), अवचेतन

(subconscious) एवं अचेतन (unconscious) वर्तमान ग्रहणशीलता में चेतनमन की भूमिका होती है। अवचेतन मन कम्प्यूटर की 'मेमोरी' का काम करता है जो भविष्य में उस ग्रहित ज्ञान को पुनः प्रस्तुत करता है एवं अचेतन अवस्था में किसी भी क्रिया या अनुभव कापे ग्रहण करने एवं उसे अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो जाता है। अचेतन हमारे चेतन व अवचेतन मन को अपनी अतिशयता के कारण निष्क्रिय कर देता है एवं मानव मन के भावों और संवेगों के मध्य संतुलन को खाते हुए असामान्य स्थिति में पहुंच जाता है।

असामान्यता के कारणों को संक्षिप्त में देखा जाये तो निम्न कारण प्रमुखतया देखे जा सकते हैं।

- शारीरिक व बौद्धिक (मानसिक) विकास की कमी
- भावों व विचारों का दमन
- गलत आशय, शंका, भ्रम एवं विकृत सहचर्य
- अत्यन्त एवं सुदीर्घ कालीन उत्तेजना
- लगातार उपेक्षा, उदासीनता, भेदभाव एवं अपमान
- लगातार रोज़गार की कमी एवं आर्थिक अभाव
- काम का, अत्यन्त दबाव व बोझ व अनैच्छिक प्रतिबद्धताएं।
- वासनाओं का दमन
- अपराध कार्य
- विकास-मार्ग अवरोध, प्रोत्साहन की कमी
- निरन्तर असफलताएं
- जन्मजात
- पारिवारिक कारण
- जैविक एवं मनोवैज्ञानिक कारण
- तनाव-ग्रस्त स्थितियों का निरन्तर सामना
- क्रोध का अधिक्य

उपरोक्त असामान्यताएं मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों एवं उससे प्रेरित भाव-संवेगों का परिणाम होती हैं।

मैकडूगल के अनुसार "मनुष्य अनेक मूल प्रवृत्तियों को संसार में लेकर आता है, इनके साथ कोई न कोई संवेग जुड़ा होता है। जब कोई संवेग किसी एक व्यक्ति, पदार्थ अथवा विचार के साथ संबंधित हो जाते हैं तो स्थ. ई भाव की उत्पत्ति होती है।"⁵ भारतीय रसावधारणा भी इन्हीं का परिणाम है, इसे निम्नानुसार देखा जा सकता है—

स्थायी भावरस	संवेग	
1. रति	श्रृंगार	प्रेम
2. हास	हास्य	हंसी
3. शोक	करुण	उदासीन
4. क्रोध	रौद्र	क्रोध
5. उत्साह	वीर	निडर
6. भय	भयानक	डर
7. जुगुप्सा	वीभत्स	भयानक—आश्चर्य
8. विस्मय	अद्भुत	आश्चर्य
9. निर्वेग	शांति	शान्त ⁶

उपरोक्त तालिका को देखने एवं असामान्यता के कारणों से उसके संबंध विश्लेषण करने पर उसके समाधान, निराकरण एवं चिकित्सा के रूप में सर्वोत्कृष्ट माध्यम 'संगत' ही मुखर होता है। विश्व भर के प्रयोगों पर यदि दृष्टि डाली जाये तो पशु-पक्षी, फसल, शिशुओं, शारीरिक व मानसिक रोगियों एवं गर्भवती महिलाओं सभी पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को संगीत ने एक कारगर चिकित्सा के रूप में विलक्षण सकारात्मक सुधार एवं परिणाम दिये हैं, यद्यपि चिकित्सा संघ ने इसे चिकित्सा-पद्धति के रूप में मानकीकृत नहीं किया है किन्तु यह एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में चिकित्सकों द्वारा अपनाया जा रहा है क्योंकि अधिकांश चिकित्सक इस बात से सहमत हैं कि संगीत हमारे हृदय तंत्र एवं रक्त संचार पर अनुकूल-प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है जो कि इलाज को प्रभाविता कर सकता है। संगीत अपने सुरीले स्वर विन्यासों एवं लयात्मकता से आनन्द की सृष्टि करता हुआ ध्वनितरंगों से हमारी तंत्रिकाओं पर सकारात्मक प्रभाव पैदा कर सकता है। संगीत में व्याप्त आस्था, तल्लीनता, सुकोमलता, अनुशासनता, तत्परता, उत्साह, उर्जस्विता, रचनाशीलता आदिगुण हमारे आन्तरिक व बाह्य व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होते हैं जो किसी भी प्रकार

के रोगी के लिए सहायक सिद्ध हो सकती है। संगीत के सार्वभौमिक प्रभाव अथवा परिणाम पर समाज के विविध क्षेत्रों के महानुभावों ने अपने विचार रखे जो मनुष्य को असामान्यता से हटकर असाधारण (extra ordinary) बनाते हैं।⁷

राघव आर मेनन के अनुसार स्वर का तात्पर्य – स्वर + र स्वयं राजतेइति स्वर" जो स्वयं को प्रकाशित कर देता है यानि आत्मिक गुणों का प्रकाश यानि फैलाव 'संगीत' है।⁸ कुमारी हवीतस योभ के अनुसार "संगीत हमारे जीवन को अनुप्राणित करता है, हमारे जीवन की निर्जीव शक्तियों को विनष्ट कर एक ऐसी अभिनव पृष्ठभूमि निर्माण करता है कि जिसमें संजीवन उत्साह के स्फुरण दीप्त होने लगते हैं और होने लगती हैं स्फूर्ति की उल्कायें, जो जीवन को मंगलमय एवं स्वर्णिम बना देती है।"⁹

पं. रविशंकर के अनुसार "Through music, one can reach God"¹⁰

गांधी जी कवचार है कि "संगीत" द्वारा उन्हें क्रोध पर नियंत्रण करने की शक्ति तथा अपूर्व शान्ति प्राप्त हुई। सुन्दर गायन हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ देता है।"¹¹

चार्ल्स डारविन ने जीवन के अंतिम क्षणों में कहा था – "यदि मुझे यह जीवन दोबारा जीवित रहने को मिलता तो मैं कम से कम सप्ताह में एक बार कुछ कविता पढ़ने और कुछ संगीत सुनने का एक नियम बना लेता, यह इसलिए कि शायद ये मस्तिष्क के हिस्से, जो स्फूर्ति शून्य हैं काम में आने से वे स्फूर्तिमय रखे जा सकते थे।"¹²

डॉ. पोडोलस्की ने लिखा है "Music by arousing pleasurable emotions promotes the flow of digestive juices. This increased flow causes a more through digestion"¹³

प्रसिद्ध संगीतज्ञ पं. एस.एन. रातान्जनकर के अनुसार "श्वास-नियंत्रण पर संगीत का सब अधिकार रहता है। इस दृष्टि से गायन एक प्रकार का योगाभ्यास ही है। लय-सुरों के अनुपात में श्वासोच्छ्वास होते रहने के कारण पाचन-शक्ति बढ़ती है, जहर शुद्ध रहता है, नींद अच्छी आती है, मन एवं शरीर जागृत होता है।"¹⁴

कुमार अंचल ने लिखा है – "युवक कर्णप्रिय संगीत सुनकर अपने सामान्य से अधिक पसीना निकलने और श्वास में होने वाली तकलीफ को भी कम

कर सकते हैं।¹⁵

डॉ. वाल्टर एच. वाल्से ने "जिगर; अमाशय, आँतें और गुर्दे की बीमारी पर संगीत का उपयोगी प्रभाव स्वीकार किया है। मल-विसर्जन की क्रिया को उत्तेजित और व्यवस्थित करने में उन्होंने संगीत के प्रभाव को स्वीकार किया है।"¹⁶

आचार्य रामनाथशर्मा ने पिट्सबर्ग के शल्फ लारेन्स हाय व पत्नी ने वॉयलिन वादन से रूधिर नाड़ियों की बीमारी ठीक करने का उल्लेख किया है।¹⁷

डॉ. एडवर्ड पोडोलास्की ने अपने लेख "म्यूज़िक एण्ड मेंटल हेल्थ" में पियानिवादन द्वारा अंधापन दूर करने वपं डवलिन में उधमी बच्चे को 'फोनोग्राफ' के द्वारा शान्त करने के इलाजों का जिक्र किया है।

अमेरिका के न्यूहेम्पशायर के डार्ट माउथ कॉलेज के पीटर जानाटा के शोध में जो संगीत का परिणाम निकाला गया वह है "Part of the brain also plays a key role in learning and in the response and control of emotions. Our results provide a stronger foundation for explaining the link"

राजस्थान के संगीतज्ञ श्री पन्नलाल पीयूष ने स्वानुभवाधारित भिन्न रागों के प्रभाव दर्शाये –

राग विभास	—	कफ नाशक, बुखार सर दर्द में उपयोगी
भैरव	—	कफ नाशक
आसावरी	—	चैतन्यमय राग, सरदर्द में उपयोगी
धनाश्री	—	उत्साहवर्द्धक, कफ नाशक
सारंग	—	पित्तनाशक, बुखार में पसीना लाने वाला
पूर्वी कान्हड़ा	—	उदर रोगों के लिए
पीलू	—	बल उत्पत्ति साठी

हिन्दुस्तानी संगीतशास्त्र में हमारे सप्तस्वरों का संबंध भी रस एवं स्थाई भावों से माना है।

स्थाई स्वररस	स्थाई भाव
1. षडज	वीर, अद्भुत, रौद्र उत्साह, विस्मय, क्रोध
2. ऋषभ	वीर, अद्भुत रौद्र उत्साह, विस्मय, क्रोध

3. गन्धार	करुण	शाक
4. मध्यम	श्रृंगार, हास्य	रति, हास
5. पंचम	श्रृंगार, हास्य	रति हास
6. धैवत	वीभत्स भयानक	डर
7. निषाद	करुण	शोक

तालों का संबंध भी संवेगों से जोड़ा गया है। जैसे धमार को रौद्र जाहिर है कि मानव के संवेगात्म मनोविकारों में ये स्वर गया औषधि परक हो सकते हैं।

संगीत का प्रभाव प्रकृति जानवरों एवं पक्षियों पर भी माने गये हैं। कृष्ण की बांसुरी पर गायों का एकत्र हो जाना, तानसेन के तोड़ी गायन पर हिरणों का इकट्ठा हो जाना, पं. ओंकार नाथ ठाकुर द्वारा कोमल गंधार के विशिष्ट प्रयोग से क्रोधी शेर को शान्त करने जैसे उदाहरण दृष्टव्य हैं। अमेरिका में भी संगीत द्वारा फसलों को अधिकाधिक उर्वर बनाने एवं प्रयोग में भी की प्रयोगशाला में गायों द्वारा ज्यादा दुग्ध-उत्पादन के प्रयोग किये गये। तानसेन के संगीत पर दीपक जलाने, व वर्षा करने उदाहरण भी किंवदंतियों से प्राप्त होने हैं।

पं. ओंकारनाथ ठाकुर का कथन है कि काफी राग के कोमल स्वरों का प्रयोग जानवरों पर खूब प्रभुवावकारी होता है। बन्दे अली के शिष्य चुन्ना जी द्वारा गौरी राग से पक्षियों एवं आस्ट्रेलिया की दियाना गोल्ड द्वारा जंगली घोड़ों को संगीत द्वारा वश में करने के जिक्र प्राप्त हैं।

संगीत के उपरोक्त उत्तम गुणों के कारण ही प्राचीन काल से योगियों एवं ज्ञानियों ने इसे ध्यानयोग और साधना में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। यहां तककि ध्यानयोग को सुगम करने हेतु संगीत का प्रयोग किया गया। पहले कहा जा सकता है कि मानव का जीवन तंत्र मन पर केन्द्रित है, एक दृष्टि से तभी वह मन से मानव कहलाता है। मन की उत्तेजना, मन की चंचलता, उत्साह, मन की सक्रियता एवं उदासीनता आदि मनुष्य की जीवनधारा का मार्ग तय करती है अतएव इस नाते संगीत को प्राचीन काल से प्रदर्शनकारी कला की अपेक्षा ध्यान व योग से जोड़ा गया एवं आयुर्वेद में उसे उपचार पद्धति में स्थान दिया। मन का अनियंत्रण विकार पैदा करता है अतएवं संगीत द्वारा

मनस्थिति को परिवर्तित कर विकार पैदा करता है अतएवं संगीत द्वारा मनस्थिति को परिवर्तित कर स्वास्थ्य लाभ करने का कार्य किया जाता है। “अल्टशुगर” के अनुसार “संगीत में रोगी के संवेदनात्मक बौद्धिक पहलुओं को उत्तेजित करने की शक्ति होती है।” हर्ष का विषय है कि संगीत का उपयोग अनेक अस्पतालों और मनोचिकित्सा केन्द्रों में इसे उपचार-पद्धति के रूप में अपनाया जा रहा है जिसके परिणाम भी सकारात्मक देखने को मिले। कई उदाहरण इस दृष्टि से दृष्टव्य हैं। मुम्बई के ब्रीच कैंडी, लीलावती, जसलोक, मुम्बई के डॉ. एल.एच. हीरानंदानी, दिल्ली के अपोलो, बंगलौर के नारायण हृदयालय, जयपुर के दंतरोग विशेषज्ञ पी.के. माथुर के दत्त अस्पताल, बापूनगर इसके उदाहरण हैं जहां रोगी के रोग के कष्ट निवारण एवं डाक्टर के ऑपरेशन आदि के तनाव को दूर करने में संगीत का उपयोग किया गया है, यहां तक बड़ी फैक्ट्री व बैंक आदि में भी कार्य के तनाव को कम करने व ऑपरेशन की सफलता के लिए संगीत का उपयोग किया गया। डॉक्टरों ने स्वीकार किया है कि संगीत में औषधि के मुकाबले रोग निरोधक गुण अधिक है। आज घबराहटपन, चिन्ता, क्रोध, आवेश, ब्लडप्रेसर, हाइपरटेंशन, चिड़चिड़ापन, अवसाद, दिग्भ्रम अनिद्रा अतिउतावलापन, डायबिटीज स्मृतिलोप, हिस्टीरिया एवं मिर्गी सभी में संगीत को उपचार के लिए प्रयुक्त किया गया है। ध्यान-केन्द्रों, प्रतीक्षा-कक्षों, एलीवेटरों, आई.सी.यू., मोबाइल रिंग टौन, गाड़ियों के हॉर्न सभी में मनोचिकित्सा के लिए संगीत का उपयोग किया गया है। जयपुर के मनोचिकित्सा केन्द्र पागलखाने में डॉ. शिवगौतम ने भी इसके सफल प्रयोग किये। उनके अनुसार “सर्वप्रथम प्रयोग के रूप में मरीजों के तीन भागों को बांटा गया इसमें संगीत चिकित्सा (Music Therapy) क्रीड़ा चिकित्सा (Play Therapy) व नैदानिक मनोविज्ञान (Clinic Therapy) के अन्तर्गत उपचार किया। इसमें प्रत्येकभाग में तीन मरीज रखे गये। प्रथम भाग को केवल संगीत सुनाया गया दूसरे को उससे वंचित रखा गया एवं तीसरे को अधिकांशतः संगीत सुनाया गया।

परिणामतः मनोरोगियों को संगीत-श्रवण से अधिक लाभ पहुंचा। इसके लिए मनोरोगियों की मनःस्थिति के अनुसार शास्त्रीय संगीत लोक धुन, भजन, आरती कीर्तन, मंत्रोच्चारण, सुगमगायन, विविध नाद गुणों वाले वाद्यों का प्रयोग किया गया। यहां तक अलग-अलग गायकों का भी प्रयोग रोगी के अनुसार किया गया। जयपुर के जेलखाने व पागलखाने में भी संगीत-व्यवस्था की गई

है।

इस प्रकार संगीत द्वारा उपचार पद्धति को "वैकल्पिक उपचार पद्धति" के रूप में माना गया है, जिसमें दवाइयों के साथ संगीत-श्रवण द्वारा इलाज का विकल्प रखा गया है।

यहां तक दृष्टिहीन विद्यार्थियों व साधकों में भी संगीत के विलक्षण प्रयोग देखे गये। स्मृति व श्रवण-अनुकरण पर आधृत इन साधकों में आत्मविश्वास व सृजनशीलता के उल्लेखनीय गुण पाये गये, संगतकार रवीन्द्र जैन इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर के दृष्टिहीन शिक्षक डॉ. राजेश शर्मा ने अपनी पुस्तक "मनोविज्ञान विकलांगता एवं संगीत" में पृ. 59 में उल्लेख किया है - "दृष्टिहीन व्यक्ति के श्रवण इन्द्रियों पर निर्भर होने के कारण और संगीत जो कि एक श्रवणकला है किसी न किसी रूप में अगर व्यक्ति इस विषय में कुछ करने की चेष्टा रखता है तो ये विषय उसके लिए सर्वाधिक उत्तम मार्ग हो सकता है। संगीत का संबंध व्यक्ति विशेष के मन और भावनाओं से होता है और जब यही संगीत एक विषय अथवा उद्देश्य के रूप में दृष्टिहीन व्यक्ति आत्मसात करता है तो वह उसके मानसिक व बौद्धिक विकास का कारण भी बन जाता है।

कुल लाकर संगीत को "Best Language of Imotion" कहा गया है इस दृष्टि से संगीत मानव को प्रकृति से ही प्राप्त अनुपम उपहार है एवं सीशोर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में 'Musical Mind' होने के कारण संगीत हर व्यक्ति में स्वतः निवास करता है अतएवं वर्तमान युग में व्याप्त संत्रासों को हम संगीत से दूर करें एवं भावात्मक एकता के माध्यम से अपना निरन्तर विरेचन एवं शुद्धि कर सुखमय जीवन बनाते हुए "अपनी जय से पहले सब की जय करें।"

संदर्भ

1. भारतीय संगीत और मनोविज्ञान - वसुधा कुलकर्णी, पृ. 136
2. वही
3. The Psychology of Music - H.P. Krishan Rao, p. 18
4. Educational Psychology - Charies Eskeiner, p. 1
5. संगीत की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि - डॉ. कविता चक्रवर्ती, पृ. 82
6. वही, पृ. 89
7. वही, पृ. 89

8. वही, पृ. 88
9. वही, पृ. 89
10. वही, पृ. 88
11. वही, पृ. 89
12. वही, पृ. 88
13. Music for your health, p. 88
14. मनोविज्ञान विकलांगता एवं संगीत – डॉ. राजेश शर्मा, पृ. 30
15. लेख – “विधाता की अद्भुतकृति है हमारा दिमाग”, नवभारत दिनांक 12.3.1997
16. वाङ्मय शब्द ब्रह्मम नाद ब्रह्म – आ. श्री राम शर्मा, पृ. 5, 59
17. वही, पृ. 1
18. Article - If music stimulates the mind, play on "Parul Recer - Times of India, p.1, dated 14.12.2002.

डॉ. सरला चौधरी,
व्याख्याता, हिन्दी,
राजकीय महाविद्यालय,
कालाडेरा – जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

हिन्दी नाट्य काव्यों एवं नाटकों में पात्रों की उपयोगिता

‘नाट्य काव्य’ के द्वारा लेखक अपने अनुभवों को कलाकारों के माध्यम से सहृदय पाठक एवं दृष्टा या श्रोता तक पहुँचाने की चेष्टा करता है। सही दृष्टिकोण ही कलाकार के जीवन खोज एवं जीवन तत्व से साक्षात्कार है। ‘नाट्य काव्य’ का अभिप्राय है नाटक एवं काव्य के तत्वों का संयुक्त रूप। नाट्य एवं काव्य दोनों के पृथक – पृथक तत्व इस प्रकार से वर्णित है। 1, कथानक 2, पात्र और चरित्र चित्रण 3, संवाद 4, अभिव्यंजना 5, अभिनेयता 6, उद्देश्य।

यहाँ पर हमें चरित्र चित्रण के विकास पर अधिक चर्चा करना अनिवार्य हो जाता है। नाटक में कथावस्तु व चरित्र चित्रण हमेशा विवाद की वस्तु बने है। जहाँ अरस्तू आदि कुछ विद्वानों ने कथावस्तु को प्रधानता दी है वहीं विलियम आर्थर, जी. पी. वेकर तथा गाल्सवर्दी आदि ने चरित्र चित्रण को ही नाटक का प्रधान तत्व माना है।

पात्रों का नाटक में महत्वपूर्ण स्थान है, कथा व पात्र शरीर एवं आत्मा के समान है। जिनके बिना एक दूसरे की कल्पना करना असम्भव है। समसामायिक जीवन के सजीव चित्र को चित्रित करने में नाटककार पात्रों से विशिष्ट योगदान प्राप्त करवाते हैं। नाटक में पात्रों का चित्रण जितना सफल चित्रित किया जाता है नाटककार को उतनी ही सफलता प्राप्त होती है। पात्रों के द्वारा ही नाटककार अपने विचारों को सही रूप में दर्शकों के दिलों दिमाग तक पहुँचा सकता है।

संस्कृत नाट्यशास्त्री ग्रन्थों में पात्रों का उल्लेख मिलता है। दशरूपक एवं नाट्यदर्पण में भी पात्रों के प्रकार स्वरूप, गुणादि का विवेचन किया गया है। नायक शब्द की उत्पत्ति ‘नी’ धातु से हुई है जिसका अर्थ ‘ले चलना’ ‘आगे चलना’ है, नायक नाटक का प्रधान पात्र होता है। नाटक के अंतिम परिणाम

को प्राप्त करवाने का अधिकारी भी नायक ही होता है। नाट्य शास्त्रीय परम्प. रानुसार जिसे फल की प्राप्ति होती है, तथा जो फल प्राप्ति के लिये आद्यन्त सचेष्ट रहता है वही नायक है।

नायक विभिन्न प्रकार का हो सकता है। नाट्याचार्यों ने कुछ गुण व प्रकारों का उल्लेख इस प्रकार किया है।

दशरूपक व नायक – दशरूपक में आचार्य धनंजय ने नायक के सामान्य गुणों का दो श्लोकों द्वारा वर्णन किया है। नायक – नेता, विनीत, मधुर त्यागी, दशप्रियंवद, कुशल वक्ता, रूढ़वश, स्थिर, युवा बुद्धिमान– प्रज्ञावान, स्मृतिसम्पन्न, उत्साही, वीर, शूर, दृढ़ प्रतिज्ञ, तेजी, धार्मिक, होना चाहिये।¹

विनीत – नायक स्वभाव से नम्र होना चाहिये उदाहरण स्वरूप राम विनम्रता के द्योतक तथा विनीत नायक के गुणों से युक्त है।

मधुर – देखने में सौन्दर्य मधुरता से सम्पन्न होना चाहिये² मधुर नायक का उदाहरण आचार्य धनिक ने महावीर चरित्र से लिया है।³

त्यागी – सत्कर्म में तत्पर नायक त्यागी कहलाता है।⁴

दक्ष – दक्ष वह है जो कार्य को शीघ्रता से करे।⁵

प्रियंवद – प्रिय बोलने वाला नायक प्रियंवद कहलाता है।⁶

रक्तलोक – 'महावीर चरित्र' में अयोध्या की प्रजा से दशरथ राम का वर्णन कर रहे हैं जिससे यह प्रकट होता है कि राम प्रजा के अत्यधिक प्रिय थे,⁷

शुचि – मन की पवित्रता, जिस तरह श्रीराम अन्तःकरण से शुद्ध होने के कारण शूर्पणखा के प्रति पवित्रता रखते हैं⁸

वाग्मी – वाग्मी यानि वाक्-कुशल, अप्रिय बात को भी मधुर बनाने वाला वक्ता नायक वाग्मी कहलाया जाता है। 'हनुमन्नाटक' में राम द्वारा वाक्कुशलता प्रकट होती है।⁹

रूपवंश – नायक उच्चकुलीन होना चाहिये।

स्थिर – मन, वचन कर्म से जो स्थिर रहता है। स्थिर नायक कहलाता है।¹⁰

युवा – बुद्धिमान – युवक तथा वस्तुभिज्ञ नायक बुद्धिमान कहलाता है।

प्रज्ञावान – ज्ञान में विशेषता उत्पन्न करने वाली प्रज्ञा कहलाती है। विवेक

के साथ कार्य करने वाला प्रज्ञावान कहलाता है।

स्मृति सम्पन्न – किसी वस्तु को जान कर स्मरण रखना स्मृति कहलाता है।

उत्साही – उत्साह पूर्वक कार्य करना उत्साही नायक का लक्षण है।

बलवान – सर्व कलाभिज्ञ, जानकार, बलवान कहलाया जाता है।

शास्त्रवक्ष – शास्त्रों के अनुसार कार्य करने वाला।

आत्मसम्माननी – अपमान को न सहना अपने मान में अटल रहना।

शूर – वीरता एवं उदारता का समायोजन शूर का लक्षण है।

दृढ़ प्रतिज्ञा – विचारों, कार्यों पर अटल रहना दृढ़ प्रतिज्ञता का उदाहरण है।

तेजस्वी – क्रान्ति युक्त सम्मानित नायक तेजस्वी कहलाया जाता है।

धार्मिक – धर्म में आस्था रखने वाला नायक धार्मिक कहलाता है।

विशिष्ट गुण – इस आधार पर नायक को हम चार प्रकारों में विभक्त कर सकते हैं। धीरललित, धीर प्रशान्त, धीरोदत्त, दशरूपक में इन भेदों का विवेचन इस प्रकार किया है।

1. धीरललित—चिन्ता रहित, प्रकृति का प्रेमी, सुखी एवं कोमल नायक धीरललित कहलाता है।¹¹

2. धीर प्रशान्त – आचार्य धनंजय द्वारा परिभाषित धीर प्रशान्त नायक सामान्य गुणों से युक्त द्विज नायक ही धीर प्रशान्त नायक है।

3. धीरदित्त नायक – 'उत्कृष्ट अन्तःकरण वाला अत्यन्त गंभीर, क्षमाशक्ति, आत्मश्लाघा न करने वाला, स्थिर, अहंकार से रहित, होता है।¹²

4. धीरोद्वत नायक – घमण्ड की प्रचुरता, माया व कपटी, क्रोधी, चंचल अपनी प्रशंसा स्वयं करने वाला धीरोद्वत नायक है।¹³

नायक के अन्य गुण – धनंजय ने नायक के आठ सात्विक गुणों का विवेचन इस प्रकार किया है। शोभा, विलास, माधुर्य, गम्भीरता, स्थिरता, तेज, ललित, औदार्य, सात्विक, परिपेय।¹⁴

नाट्यदर्पणा के अनुसार नायक को चार प्रकारों से युक्त माना है, व पं. रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार नायक को धीर विशेषण से युक्त, उदृत, उदात्त,

ललित, प्रशान्त चार प्रकार के स्वभावों को मध्यम तथा उत्तम दो रूपों में ही वर्णित करना चाहिए।¹⁵

पात्रों की प्रकृति नाट्यदर्पणानुसार – विश्व में प्रकृति का निरूपण हम इस प्रकार देख सकते हैं, कि जलवायु पेड़ – पौधे रहन – सहन सभी में भिन्नता पायी जाती है। उसी प्रकार मानव भी भिन्न – भिन्न प्रकृति के होते हैं। एक ही परिवार में जन्में दो बच्चों की प्रकृति एक – दूसरे से पूर्णतया भिन्न होती है।

संस्कृत साहित्य में इसका निरूपण नाट्यदर्पणाचार्य ने करते हुये पात्रों को उत्तम, मध्यम, अधम् तीन प्रकृति वाला बताया है। स्त्री व पुरुषों दोनों ही तीनों प्रकृति वाले होते हैं और अपने – अपने गुणों के तारतम्य से उनमें तीन-तीन भेद हो जाते हैं।¹⁶

उत्तम प्रकृति प्रधान पुरुष – विलक्षण बुद्धि, सज्जन, धैर्य, त्यागी, न्यायी, पुरुष उत्तम प्रकृति युक्त।

मध्यम प्रकृति प्रधान पुरुष – उत्तम गुणों एवं नायक निम्न गुणों से युक्त, मध्यम प्रकृति का स्वामी कहलाया जाता है।

नीच प्रकृति प्रधान पुरुष – कृतघ्न, कलही, स्त्री रत, पापी, आलसी गुणों का स्वामी नीच प्रकृति प्रधान पुरुष है।

संस्कृत में रूपकों के मुख्य नायक का लक्षण नाट्यदर्पण में वर्णित है। जिसे इस प्रकार चित्रित किया जा सकता है।

संस्कृत साहित्य में नायक के गुणों को इस प्रकार वर्णित किया है।

नायक के आठ गुण सात्विक माने हैं। तेज, विलास, माधुर्य, शोभा, स्थिरता, गम्भीरता, उदारता, लालित्य।

नायक का समानताओं एवं विषमताओं का निरूपण दशरूपक व नाट्यदर्पण के आधार पर इस प्रकार समझ सकते हैं।

समानतायें – दोनों काव्यों में नायक को चार गुणों धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोद्धत में विभक्त किया है।

विषमताएँ – दशरूपक में नायक के सामान्य गुणों का वर्णन 'विनय' मिलता है।

नाट्य दर्पण में नायक के समान्य गुणों का वर्णन नहीं मिलता है। दशरूपक में दक्षिण, शठ, घृष्ट, अनुकूल आदि शृंगारिक भेदों का वर्णन है। नायक की भाँति नायिका का स्थान भी महत्वपूर्ण है। भरतमुनिनुसार ने दिव्या, नृपपत्नी, कुलस्त्री, गणिका, चार भेद किये गये हैं।¹⁷

नायिका भेद की विस्तृत जानकारी हेतु संस्कृत काव्य के दो महान ग्रन्थों का उल्लेख करना सार्थक होगा।

दशरूपक व नायिका भेद – दशरूपकाचार्य धनंजयानुसार नायिका के तीन प्रकारों का वर्णन इस प्रकार है। 'स्वकीया, परकीया, सामान्या' नायिका भी नायक की भाँति विनय गुणों वाली बताई है।

स्वकीया नायिका – शील एवं सरलता युक्त, मुग्धा, मध्या प्रगल्भा भेदों से युक्त होती है।¹⁸

मुग्ध नायिका – अवस्था व काम से विमुक्त ,और क्रोध आने पर मधुर रहने वाली मुग्धा नायिका होती है।

मध्या नायिका – यौवन व रति भाव से युक्त मूर्च्छा, अवस्था पर्यन्त रतिभावायुक्त मध्या नायिका कहलाती है।

प्रगल्भा नायिका – काम भावनारत, प्रियतम के अंगों में प्रविष्ट सुरत के आरम्भ में चेतना रहित प्रगल्भा नायिका कहलाती है।¹⁹

परकीया – अन्य स्त्री को परकीया नायिका कहते हैं। ये दो प्रकार की होती है। 1, कन्या 2, विवाहिता, कन्या के अनुराग को प्रधान अप्रधान बनाया जा सकता है।²⁰

साधारण स्त्री – छिपकर प्रेम करने वाली, सुखपूर्वक धन प्राप्त करने वाली, अजानी, स्वच्छन्द, अहंकारी धनरहित व्यक्ति होने पर निकलने वाली साधारण स्त्री या गणिका कहलाती है।²¹

नायिकाओं की अवस्थाओं का वर्णन संस्कृत में – दशरूपक में सोलह नायिकाओं का वर्णन तथा आठ अवस्थाओं का निरूपण मिलता है।²² डा. हारन द्वारा – आठ अवस्थाओं का वर्णन –

1.- स्वाधीन पतिका – नायक के समीप रहने वाली ,व उसे आधीन व प्रसन्न रखने वाली स्वाधीन पतिका कहलाती है।

2.— वासक्सज्जा — नायक के जाने पर शृंगार में रत नायिका वासक्सज्जा कहलाती है।

3.— विरहोत्कण्ठिता — प्रिय की उत्कण्ठित भाव से प्रतीक्षा करती नायिका विरहोत्कण्ठिता कहलाती है।

4.— खण्डिता — नायक के द्वारा किये परस्त्री संभोग को जान कर ईर्ष्या युक्त नायिका खण्डिता कहलाई जाती है।

5.— कलहान्तरिता — नायक का पहले तिरस्कार कर बाद में अपने कृत्य पर ग्लानि हो उस नायिका को कलहान्तरिता के गुणों से युक्त नायिका कलहान्तरिता कहलाती है।

6.— विप्रलब्धा — प्रिय के समयानुसार न आने पर अपमानित होने वाली नायिका विप्रलब्धा कहलाती है।

7.— पोषितप्रिया — जिसका पति कार्यवश विदेश व दूर रहे, पोषितप्रिया नायिका कहलाती है।²³

8.— आभिसारिका — नायक के पास जाकर ऐसे निपुणतापूर्वक कहना कि जिससे वह मेरी लधुता न समझ सके और मुझ पर करुणा भी करे।²⁴ ऐसी विशेषताओं से युक्त नायिका आभिसारिका कहलाती है।

संस्कृत साहित्य में नायिका की अलंकार योजना — नायिकाओं के अलंकरण से सौन्दर्यावृद्धि होती है। भारतीय नाटककारों ने नायिका विवेचना सूक्ष्मता से किया है। पाश्चात्य नाट्य शास्त्रों में इसका अभाव सा है। दशरूपक में नायिका के बीस अलंकार की योजना इस प्रकार हुई है। हाव भाव, हेला अलंकारों को शरीर, शोभा, कान्ति, दीप्ति माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य एवं धैर्य इन सात अलंकारों को अयत्नज, लीला, विलास, विच्छित्ति विल्लोक, किलकिञ्चित, मोट्टाचित, कुट्टमित, विभ्रम ललित स्वभावज माना गया है।

नाट्यदर्पणानुसार नायिका भेद — नायिका कुलजा, दिव्या क्षत्रिया, पुण्यकामिनी 'वेश्या' चार प्रकार वाली मानी गयी है। पुण्यकामिनी ललितोदात्त कुलटा उदात्त दिव्या एवं क्षत्रिया धीर, ललित एवं उदात्त होती है।²⁵ नायिकाओं के तीन भेद इस प्रकार किये हैं। मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। 'काम तथा मान वाली प्रिय के स्पर्श मात्र से मूर्छित होने वाली पूर्ण रूप से दीप्त आयु वाली नायिका प्रगल्भा कहलाती है।²⁶

अरस्तू पात्र नायक के चारिष्य को वैशिष्ट्य युक्त बनाने के पक्ष में रहे है।²⁷ उनके इस चरित्र शब्द की व्याख्या वोसाके ने केवल वर्गगत और सामान्य, और डा. नागेन्द्र ने विशिष्ट व्यक्तित्व के अर्थ में की है।²⁸ अरस्तू ने पात्रों के चरित्र चित्रण में विशिष्ट व्यक्तित्व के समावेश के लिये भद्रता के नैतिक गुण स्वीकार किया है।²⁹ नैतिक उद्देश्य का द्योतन करने वाला कोई भी वक्तव्य या कार्य व्यापार चरित्र का व्यंजक होगा, यदि उद्देश्य भद्र है तो चरित्र भी भद्र होगा।³⁰ “भद्रता के संबंध में उन्होंने एक तथ्य की स्थापना की है। यह गुण प्रत्येक वर्ग में संभव है, स्त्री भी भद्र हो सकती है, दास भी।

पाश्चात्य नाटककारों ने चरित्र निर्माण के साथ – साथ इन सभी भावों दृश्य के माध्यम से रंगमंच में लाने का सफल प्रयास किया है, ‘यूना ऐलिस फाम’ ने नाटककार की प्रभावत्पादक प्रणाली “इवोकेटिव टेक्निक” इसी के अंतर्गत माना है। पात्रों के चरित्र संबंधी भावनायें सामाजिक वातावरण व संस्कृत से संबंधित होने के कारण पात्रों के चरित्र में “करुण” चरित्र का निर्माण ही पाश्चात्य नाटकों का अनुपम योगदान है।

पाश्चात्य नाटकों के उद्गम स्थल यूनानी नाटकों में भी करुण चरित्र के उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं। यूनानी नाटकों में पात्रों के जीवन संघर्ष व उनसे बंधी भविष्यवाणियों को नायक के जीवन की नियती माना है, उदाहरणार्थ सोफ़ोकलीज़ राजा इडिपश को जब पता चलता है कि वह अपनी पत्नी को मारेगा व माता से विवाह करेगा तो वह भ्रमित होकर उसी देश (थीप्स) में पहुँच जाता है। वह भविष्यवाणी के द्वारा सब जानता था पर अन्जाने में किये पाप के पश्चाताप के कारण अपनी आँखे फोड़ डालता है। इस प्रकार नाटककार ने उसके चरित्र को एक शाप का परिणाम दिखाया है। स्ट्रिडंवर्ग ने “मिस जुली” की भूमिका में लिखा है “कुछ भी हो सकता है, सब कुछ संभव है, दिक और काल का कोई अस्तित्व नहीं यथार्थ के महत्वहीन पृष्ठभूमि पर कल्पना, स्मृतियों, अनुभूतियों निर्बन्ध के सहारे अपना तन्तु बुनती है। चरित्र खण्डित होते हैं और बहुरंगी जो कभी भाप बनकर हवा में उड़ जाते हैं, कभी बिखर जाते हैं; किन्तु सबको एक ही चेतना एक सूत्र में बाँधकर रखती है वह है स्वप्नदर्शी चेतना।

नाटक में पात्रों का चरित्र चित्रण कथा का प्राण है। मानव चरित्र की विकासात्मक झाँकी के विविध आयामों का अंकन नाटक से सम्भव है। पात्रों की

क्रिया प्रतिक्रिया एवं उनकी उपयुक्तता को परखने कथा का सुलझे हुये माध्यम से दर्शको तक पहुँचाने का सर्वाधिक अवसर नाटक में ही सुलभ होता है।

पात्र तथा चरित्र की परिभाषा –

पात्र – नाटक की कथानक में पात्रों की स्थिति सौरमण्डल के ग्रहों की तरह होती हैं। प्रधान पात्रों के चारों ओर गौण पात्र उपग्रहों की तरह चक्कर काटते रहते हैं। हिन्दी साहित्य कोश में पात्र का उल्लेख किया गया है। 'वे शक्ति जिनके द्वारा कथा की घटनाएँ घटती हैं। अथवा जो उन घटनाओं से प्रभावित होते हैं। कथा की कल्पना में ही पात्रों के विजयमानता निहित है।'³¹ ज्ञान शब्द कोश में पात्र की परिभाषा करते हुये कहा गया है कि पात्र नाटक में वर्णित होता है। जिसका कथावस्तु में भी प्रमुख स्थान है। हिन्दी साहित्यकोशकार में पात्रों को 'कथानक साहित्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व कहा है, क्योंकि पात्र ही घटनाओं का जनक है। अन्य समस्त तत्व भी पात्रगत बहुमुखी प्रतिभा का उद्घाटन करते हैं।'³²

यद्यपि नाटक का पात्र मानव जीवन से प्रेरित एवं कल्पित प्राणी है, किन्तु उसकी प्रतीति यथार्थ की होती है और उसमें सामान्य प्राणी के गुणों एवं विशेषताओं का आरोपण होता है। नाटक में पात्रों के माध्यम से नाटककार पूरी कथा कहने में समर्थ होता है। नाटक में पात्रों का विशेष स्थान है। नाटक में पात्रों का सम्बन्ध सीधे पाठकों से होता है।³³

चरित्र – हिन्दी साहित्य में पात्र या चरित्र पाश्चात्य शब्द कैरेक्टर का पर्याय है। पात्र कैरेक्टर अथवा चरित्र एक ही अर्थ को ध्यानित करते हैं। चरित्र का साहित्यिक अर्थ कथावस्तु से सम्बन्धित व्यक्ति विशेष से ही होता है तथा उसका विकास व्यक्ति के जीवन के अनुभवों पर आधारित होता है।³⁴ अंगीकरण और समानाधिकरण की प्रक्रियाएँ भी चरित्र के विकास में सहायक होती हैं।³⁵ चरित्र अथवा चरित्र शब्द का अर्थ रहन – सहन, आचरण, काम, करनी अथवा करतूत के रूप में दिया गया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के जीवन को विविध क्रिया कलाप उसका व्यक्तित्व ही उसका चरित्र है। नाटकों में व्यक्ति के व्यक्तित्व का आरोपण ही चरित्र है। जो प्रत्येक स्थिति में अपने युग की सृष्टि है। और उनमें बहुत कम ऐसे होते हैं, जो स्वयं को युगीन विचारों से ऊपर उठा पाते हैं। नाटक में पात्रगत व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व अर्थ उसकी अनुभूति का होना चरित्र की एक अनिवार्य विशेषता है। चरित्र

के निर्माण में उसके संघटक, आवेग, विशेषता, व्यक्तित्व एवं चित्त प्रवृत्ति आदि का कार्य करते हैं, जिनमें सम्पूर्ण मानव व्यवहार उसके कार्य व्यापार अनुभूति, मनः स्थिति नींव के समान है। पात्रों के विविध कार्य व्यापारों के द्वारा उनके चरित्र या कथा को आयाम दिया जाता है। पाश्चात्य अवधारणा में प्राचीनकाल में चरित्र और व्यक्तित्व में कोई अन्तर नहीं माना जाता था, व्यक्तित्व ही चरित्र और चरित्र ही व्यक्तित्व का द्योतक था, महान दार्शनिक अरस्तू ने चरित्र की व्यापक व्याख्या की है। उन्होंने चरित्र में गुणों के आरोपण के साथ उसके नैतिक प्रयोजन पर भी बल दिया है। यह कहना अधिक उचित होगा कि पात्र या चरित्र के समस्त कार्य व्यापार के द्वारा जहाँ एक और उसकी आभ्यान्तरिक संरचना और बाह्य स्वरूप का आभास होता है, वहीं उसके माध्यम से युगीन जीवन मूल्यों की नवीन प्रतिष्ठा होती है, यही समाज तथा व्यक्ति को प्रेरणा एवं गति प्रदान करते हैं, तथा उसके विकास में सहायक होते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पात्र या चरित्र दोनों की आत्मा एक ही है। पाश्चात्य तथा भारतीय साहित्य में इनकी अवधारणा में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

पात्र, चरित्र—रचना विधान एवं कथावस्तु —

नाटक में पात्रों के चरित्र — रचना विधान में कथावस्तु का विशेष महत्व है। कथावस्तु नाटक के विभिन्न घटकों को जोड़ती है। तथा मानवीय कार्य व्यापारों से पात्रों के व्यक्तित्व का निर्माण और स्वरूप निर्धारित करती है। नाटककार अपने पात्रों एवं चरित्रों को यथार्थ रूप में दर्शाते हुए उन्हें आचार—विचार, हाव—भाव, रूप—रंग भी प्रदान करता है।

नाटककार समाज के यथार्थ मानव चरित्रों से प्रभावित होकर कल्पना के संयोग से कथा चरित्रों का निर्माण करता है, तभी तो रचना रचियता के मनोभाव का, उसके चरित्र का उसके जीवनादर्श का आइना होती है। पात्रों का चरित्र विकास धीरे — धीरे होना चाहिए कथावस्तु और पात्र रचनाविधान में चरित्र को बीच में रखकर पहचानना चाहे तो कथा ही चरित्र है और चरित्र ही कथा है। चरित्र रचना से तात्पर्य हृदय रचना से है। जिसका कार्य — कार्य व्यापारों का आरोपण करना होता है। अरस्तू के अनुसार — मानव की अन्तरात्मा भावात्मकता और संवेदशीलता से है, कार्य व्यापार द्वारा समाज में मानव का व्यक्तित्व गतिमान होता है।³⁶

चरित्र सृष्टि का स्वरूप: शास्त्रगत अध्ययन – हिन्दी नाटक आरम्भ से लेकर अंत तक संस्कृत नाटक से अटूट रूप से सम्बद्ध है। उसके विकास को मूल प्रेरणा संस्कृत नाटकों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। हिन्दी नाटक पाश्चात्य नाट्य प्रवृत्तियों से अनुभव ग्रहण करता हुआ अपने ही जन-जीवन की अनुभूतियों, मनोभावनाओं एवं रागरंग से अविभूति हुआ है। डा. लक्ष्मीनारायण के अनुसार “स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रथम दशक के अंत तक आते – आते हिन्दी नाटककार एक गहराई से अनुभव करने लगा कि हर देश, काल और युग का रंगमंच तथा उसका नाट्य लेखन उसकी अपनी परिस्थितियों और उसकी अपनी सामर्थ के अनुसार विकसित हुआ है। इस विकास का सीधा सम्बन्ध उस देश युग और काल की अपनी आन्तरिक शक्ति से है। पश्चिम की उपलब्धि हमारे सामने है हम उनसे महज रंग शिल्प के स्तर से मदद ले सकते हैं। पर हम उनकी सामूहिक उपलब्धियों से अपनी उपलब्धि नहीं पा सकते हैं।”⁹⁷

चरित्र सम्बंधी सामान्य विवेचना

चरित्र सृजन की स्थितियाँ – इसके अन्तर्गत हम पात्र, चरित्र और व्यक्तित्व को लेते हैं। यद्यपि हमारी समस्त नाट्य – समीक्षा में पात्र – चरित्र और व्यक्तित्व को प्रायः समानार्थक शब्दों में प्रयुक्त किया जाता है। “पात्र” शब्द का अर्थ “भाजन” किसी वस्तु का आधार अथवा ‘कोई वस्तु’ पाने का अधिकारी व्यक्ति नाटक के संदर्भ में ‘चारित्य’ अथवा ‘विशिष्ट व्यक्तित्व’ का अधिकारी व्यक्ति पात्र कहलाता है।

चरित्र क्या है? एक व्यक्ति का दूसरे से शारीरिक और भावात्मक दोनों स्वरों पर भिन्न होना ही चरित्र कहलाता है। नाटक के सभी चरित्र मूलतः पात्र होते हैं किन्तु बाद में नाटककार की नाट्यानुभूति की कुशल अभिव्यंजना से अपनी – अपनी निहित संभावनाओं के आधार पर वे शील, व्यक्तिगत विशिष्टता, चारित्रिक इयत्ता और आचार व्यवहार को निजता को प्राप्त कर ‘चरित्र’ की संज्ञा के अधिकारी बनते हैं।

पात्र का चारिष्य ही नाटक को सार्थकता प्रदान करता है। लेकिन ऐसी भी नाटकों का अभाव नहीं जिनमें पात्र को चारिष्य से जोड़ा गया है और वे नाटककार की धारणाओं के वाहक मात्र बनकर रह गये हैं, नाटक में ‘चरित्र वस्तुतः नाटककार के लिये कच्ची सामग्री की तरह नहीं होता है, बल्कि यह एक उत्पादन की भाँति है। चरित्र बाहर से आरोपित न होकर उसी के बीच से

उभरता है और नाटक में उसके अनन्त उपयोग होते हैं। वह नाटक की पूर्णता में महत्वपूर्ण होता है। अतः कोई भी 'नाटकगत पात्र केवल शाब्दिक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं होता, नाटककार उसे नाटक में कथावस्तु रंगमंच और प्रेक्षक वर्ग से सम्बद्ध कर उसके अस्तित्व को सिद्ध करता है, उसके जीवन का प्रमाण देता है, तभी वह पात्र चरित्र की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।³⁸

आज का नाटक जितना सांदेश्य होता जा रहा है कि लेखक की दृष्टि चरित्र से हटकर विचारों की ओर केन्द्रित होती दिखाई देती है। यह निश्चित है कि युगीन परिवर्तन के साथ चरित्र सृष्टि के लक्ष्य और उसके स्वरूप में परिवर्तन हुए हैं। प्रयोगशीलता के आज के युग में चरित्र सृष्टि के कई आयाम दृष्टिगत होते हैं। पात्र का चरित्र एवं व्यक्तित्व – पात्र का व्यक्तित्व उसके चरित्र से जो आगे की एक ऐसी स्थिति होती है, जो दर्शक की सम्पूर्ण चेतना को पर्याप्त समय तक अभिभूत किए रहती है। किसी पात्र का भैतिक रूपाकार दर्शक को अधिक देर तक तल्लीन नहीं कर सकता अपितु पात्र का अंतरंग मानस ही प्रत्यक्षीकृत होकर हमारी संवेदना को छुता है और यही उस पात्र का व्यक्तित्व कहा जा सकता है। वस्तुतः व्यक्तित्व पात्र के भीतर की उस अंतरंग मानस शक्ति को कहते हैं, जिससे वह प्रेक्षकों की रुची और कल्पना को बाँध लेता है और ऐसे हर पात्र के प्रति दर्शकों के मन में देखने की एक चाह और उत्सुकता बनी रहती है।³⁹ हलर्ट के अनुसार पात्र की अंतर्भूत प्रकृति को चरित्र कहते हैं।⁴⁰ एक अन्य आलोचक के अनुसार नियामक सिद्धान्तों के अनुसार मानव की स्वभाव जन्य वासनाओं का दमन करके सद्भावों और भावनाओं को स्थायीत्व, प्रदान करना चरित्र कहलाता है।⁴¹

व्यक्ति की संवेदनाएँ, चेतना – अचेतन प्रवृत्तियाँ, उद्देश्य, प्रत्यक्ष ज्ञान, कल्पना, स्मृति, बुद्धि, विवेक आदि मानसिक शक्तियाँ ही उसके व्यक्तित्व की सृष्टि करती हैं। ऐसे व्यक्तित्व युक्त पात्रों के देखने से एक साथ उस देह के भीतर जो है और अगम और अबंध है उसकी छाप आपको छूती है।⁴²

पात्र और जीवन दृष्टि – इस विषय में कुछ विद्वानों का मानना है कि पात्र अपनी ही दुनियाँ में जीते हैं। और दुनियाँ से बाहर उनका अस्तित्व नहीं होता, 'आधे अधूरे' मोहन राकेश एक काले सूट वाले पात्र में इसी कथ्य का संकेत देते हैं।⁴³ चरित्र के शब्दों में "मैं अपने चरित्रों को नियंत्रित नहीं करता, मैं उनके हाथों में हूँ, और जहाँ उनकी इच्छा होती है वे मुझे ले चलते हैं।

मूलतः चरित्र नाटककार की मानस संतान है, फिर भी वह अपनी चरित्र सृष्टि से पात्र को जगत और जीवन के यथार्थ से अलग नहीं कर सकता। नाटककार एक नया चरित्र निर्मित करने का प्रयास करता है जो वास्तव में बहुआयामीय स्वीकार और नकार को एक साथ निरन्तर जीने वाला, द्वंद्व की शक्ति से परिपूर्ण जटिल और जीवंत व्यक्तित्व वाला होता है। वस्तुतः नाटक में चरित्र महत्वपूर्ण होता है, चरित्र का प्रयोग नाटक में कुछ भाव बिम्बों को उभारने के लिये किया जाता है। चरित्र यथार्थ हो अथवा अयथार्थ उसका एक बिम्ब होता है बिम्ब से ही चरित्र को एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्राप्त होता है अर्थात् बिम्ब के बीच से ही उसका व्यक्तित्व उभरता है। चरित्र एक दूसरे चरित्र से संबंध रखते हैं। जिससे वे यथार्थ जीवन से सादृश्य प्रस्तुत करते हैं।

चरित्र के भेद एवं उपभेद – सामान्यतः नाटककार पात्रों का निर्माण दो रूपों में करता है। 1. पात्र एवं 2. व्यक्ति। पात्र जैनेन्द्र के शब्दों में वर्ग ओर व्यक्ति पात्रों का अंतर इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है। “टाइप” वही जिसमें चरित्र की निजता नहीं है, और व्यक्ति वह कि जिसमें निजता है। व्यक्ति औरों से भिन्न है और मिलता जुलता है।

वर्ग पात्र – वर्ग पात्रों को निर्माण के मूल में नाटककार को देश की परम्परा, जाति, वर्ग कृति के अनुसार मनुष्य के चारिष्य को अंकित करने की धारणा निहित रहती है। वे एक आदर्शवादी नायक का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये पात्र परम्परा से निर्धारित व्यक्तित्व का निर्वाह करते रहे हैं। डा. लक्ष्मीनारायण लाल का कथन है कि ऐसे पात्र सब जगह सब नामों के नीचे एक ही मूल्य के द्योतक होते हैं।⁴⁴

‘फोरस्टर’ ने व्यक्ति पात्रों को गतिशील ‘राउण्ड’ और वर्ग पात्रों को ‘लैट’ पात्रों की संज्ञा दी है। व्यक्तिपात्र संवेदनशील होने के कारण प्रत्येक परिस्थिति में उचित प्रतिक्रिया करते हुए विकसित होते हैं। वे स्वतंत्र और अद्भुत होते हैं और उनका चारिष्य अपूर्वानुमेय होता है। उनका निरन्तर परिवर्तनशील चारिष्य विश्वसनीय प्रतीत होता है। वास्तव में नाटक में ‘वर्ग पात्र’ और व्यक्ति पात्रों को अलग – अलग विभाजित करके नहीं देखा जा सकता। “ दुनिया में जितने आदमी हैं उनमें से कुछ को व्यक्ति कह कर बाँट देना सम्भव नहीं है और यदि किसी को टाइप और दूसरे को व्यक्ति कहा जा सकता है तो केवल कलम की खूबी की वजह से ऊपरी वर्णन की विशेषता से जिस पात्र

को विशिष्टतापूर्ण बनाने की कोशिश की जायेगी वह उतना ही पुतला यानी टाइप रह जायेगा और जिसको वैयक्तिक रूप में मानव जाति के निकट से निकट करके देखा जायेगा, वह पात्र अनायास गहन चरित्र और पुष्ट व्यक्तित्वधारी बन सकेगा।⁴⁵

यद्यपि वर्गपात्रों की अपेक्षा गतिशील व्यक्तिपात्रों का चरित्र गहन एवं आकर्षक होता है किन्तु नाटकीय चरित्र सृष्टि में वास्तविक सौन्दर्य पात्र सृजन के उपक्रम में वर्ग और व्यक्तिपात्रों की विशेषताओं की समन्विति में निहित है, "व्यक्तित्व और प्रतिनिधित्व का जीवित संतुलित समन्वय शील को सरल, सजीत और यथार्थ बनाता है।⁴⁶ बाबू गुलाबराय के अनुसार " नाटक का चरित्र एक ऐसी कलात्मक और संश्लिष्ट सृष्टि है जिसमें सामान्य और व्यक्ति का समन्वय हो गया है। इसके अतिरिक्त आदर्शवादी और यथार्थवादी पात्रों का भी विभाजन किया गया है जो चरित्र सृष्टि के मुख्य अंग है। आधुनिक नाटकों में कई प्रकार के चरित्र दिखाई देते हैं। इनमें पूरक, खंडित, सूत्रवाही, विलोम, विकृति, प्रवीक, स्वप्निल आदि कोटि के पात्रों की भी अवतारणा हुई है। इन पात्रों की सृष्टि मुख्यता यह स्पष्ट करती है कि व्यक्ति अपने में कोई इकाई नहीं है और एक व्यक्ति के अंदर भी कई व्यक्ति होते हैं।

सन्दर्भ :-

1. दशरूपक , 12, 1-2
2. दशरूपक / द्वितीय कारिका के आगे।
3. दशरूपक द्वितीय प्रकाश दूसरी कारिका
4. दशरूपक द्वि प्रकाश। द्वि कारिका
5. दशरूपक द्वि प्रकाश
6. दशरूपक द्वि प्रकाश
7. दशरूपक द्वि प्रकाश / द्वि कारिका
8. दशरूपक / द्वि प्रकाश / द्वि कारिका
9. दशरूपक द्वि कारिका के आगे।
10. दशरूपक द्वि कारिका
11. दशरूपक 2 / 3
12. दशरूपक 2 / 4-5
13. दशरूपक 2 / 5
14. दशरूपक 2 / 10

15. नाट्यदर्पण 1 / 6
16. नाट्यदर्पण 4 / 3
17. दशरूपक 15
18. नाट्यशास्त्र 24
19. दशरूपक 18
20. दशरूपक 20
21. दशरूपक 22
22. दशरूपक 2 / 23
23. दशरूपक, 27 कारिका
24. दशरूपक, 27 कारिका
25. नाट्यदर्पण, 21 वीं कारिका
26. नाट्यदर्पण
27. डा. नगेन्द्र अरस्तू का काव्यशास्त्र पृ0 20
28. डा. नगेन्द्र अरस्तू का काव्यशास्त्र पृ0 109
29. डा. नगेन्द्र अरस्तू का काव्यशास्त्र पृ0 22
30. डा. नगेन्द्र अरस्तू का काव्यशास्त्र पृ0 39
31. धीरेन्द्र वर्मा 'हिन्दी साहित्य कोश प्रथम माध्वाराबशी 2015 प्र. सं. पृ0 447
32. धीरेन्द्र वर्मा 'हिन्दी साहित्य कोश प्रथम माध्वाराबशी 2020 प्र. सं. पृ0 447
33. रवीन्द्र जैन, 972 प्र. सं.
34. धीरेन्द्र वर्मा 'हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग पृ0 447
35. श्यामसुन्दर दास सम्पा. 'हिन्दी शब्द सागर, तृतीय भाग पृ0 1482
36. डा. नगेन्द्र एवं महेन्द्र चतुर्वेदी अनुवादक अरस्तू का काव्यशास्त्र अनुवाद संग्रह, पृ0 32

www.krkjhplgh

प्रवक्ता, राजकीय कन्या इण्टर कालेज,
अम्बैहटा पीर,
सहारनुर (उ०प्र०)

ATISHAY KALIT

Vol. 4, Pt. B

Sr. 8, 2015

ISSN : 2277-419X

^ra dyk dk Lo: i**

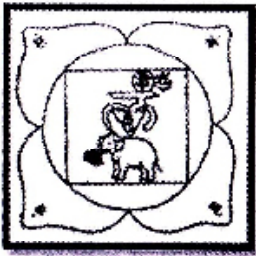
तंत्र साहित्य की भांति ही तंत्र कला का क्षेत्र भी बहुत असीमित है। तंत्र कला तंत्र विद्या के आकार प्रधान या दृश्यमान चित्रों का अध्ययन मुख्य रूप से यंत्र रचना, देवप्रतिमाओं और विभिन्न योग-आसनों की मुद्राओं के चित्रों पर आधारित है। वह कला जो कि तंत्रवाद से निसृत हुई है, वह प्रचुर मात्रा में भिन्न रूपों, भिन्न रंगों व तानों, ज्यामितीय नमूनों, व्यक्तिगत एवं सार्वभौमिक महत्व वालों को प्रदर्शित करती है। इसका मुख्य ध्येय विशेष रूप से हमारे प्रत्यक्षीकरण के उच्चतम स्तर के ज्ञान को प्रदान करना और हमारे प्रसुप्त ज्ञान को जगाने का साधन है।¹

तंत्र कला का एक स्वतंत्र कला परम्परा के रूप में प्रकाशन बहुत अधिक पुराना नहीं है। वरन् सन् 1955 में बंगाल के श्री अजित मुखर्जी के स्वसंग्रह की प्रदर्शनी द्वारा तंत्र कला के नमूनों का प्रकाशन हुआ और उन्हीं के प्रयासों द्वारा तंत्र कला को एक नयी पहचान मिली व उनके लेखों के प्रकाशनों के माध्यम से ही इस कला में सक्रियता आयी। प्राचीन समय में 'तंत्र कला' कला की कोई स्वतंत्र कला शैली न होकर सिद्धि का एक साधन मात्र थी और अपने-अपने युगों में प्रचलित कला शैलियों के चित्रकार एवं मूर्तिकार तांत्रिक साधना हेतु तांत्रिक कलाकृतियाँ बनाते थे।² जिनका प्रभाव भारतीय चित्रकला शैलियों पर भी देखने को मिलता है, उदाहरणार्थ— विभिन्न कला शैलियों के चित्रों में तंत्र कला के प्रतीक चिन्ह व मानवीय अवयव चित्रित देखने को मिलते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तंत्र साधना पद्धति के अनुसार—ध्यान, पूजा आदि के उपयोग के लिये तांत्रिकों ने जिन यंत्र, मूर्ति, उपकरण, प्रतीक आदि का निर्माण किया उन्हीं के माध्यम से तंत्र सम्बन्धी कला ने अस्तित्व ग्रहण किया।

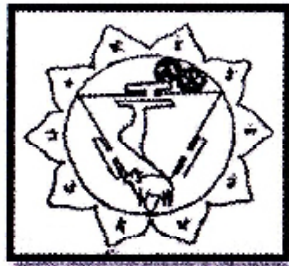
तंत्र विद्या द्वारा सिद्धियाँ प्राप्त करने हेतु जो ज्यामितीय अमूर्त रूप प्राकृ.

तिक चिन्ह जैसे—स्वास्तिक, ॐ, चक्र, कलश, वृक्ष, पदम्, मीन, मिथुन, त्रिरत्न आदि प्राचीन भारत में प्रयुक्त हुये हैं। इसलिये कला के अध्येताओं ने इस प्रकार की समस्त प्राचीन कला—मूर्ति, चित्र तथा अलंकरणों को 'तंत्र कला' का नाम दिया है जिन्हें अभी तक रहस्य कहकर छोड़ दिया जाता था, सृष्टि के उन्हीं पक्षों पर उच्च भौतिक (Higher Physics) विचार करने में आज हम समर्थ हैं। तंत्र कला में इसी का अन्तर्ज्ञानाश्रित स्वरूप प्राप्त होता है। अतः आधुनिक भौतिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में इसके व्यवस्थित अध्ययन की आवश्यकता है। एक ओर रोचक तथ्य यह है कि जहाँ आधुनिक सूक्ष्म कला में केवल दिक् और काल का ही विचार हो पाया है वहीं तंत्र कला इससे भी आगे ध्वनि एवं प्रकाश को अंकित करती रही है। इसी कारण कला का यह स्वरूप अदभुत है।³ तंत्र कला की आधारशिला आध्यात्मिक मूल्यों, जो सामान्यतः भारतीय कला में व्याप्त है, पर ही मुख्यतः आधारित है।

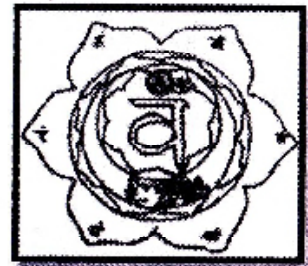
समस्त तंत्र कला मुख्य रूप से यंत्रों पर आधारित है। तंत्र दर्शन में जहाँ एक ओर अभिव्यक्ति के साधन शब्दात्मक प्रतीक मंत्र है वहीं दूसरी ओर अष्टिकांश कलात्मक अभिव्यक्ति यंत्रों द्वारा ही की गयी है। यंत्रों द्वारा सम्बन्धित देवता की शक्ति नियन्त्रित या केन्द्रित की जाती है। प्रमुख यंत्र इस प्रकार से हैं— श्री यंत्र, श्री चक्र यंत्र, भुवनेश्वरी यंत्र, देवी यंत्र, काली यंत्र, छिन्नमस्ता यंत्र, तारा यंत्र, बाला यंत्र, चतुर्लिङ्गतोभद्र यंत्र, अष्टलिङ्गतोभद्र यंत्र कच्छपाकार यंत्र आदि। यंत्रों के साथ-साथ चक्रों का भी तांत्रिक वाङ्मय में बहुत महत्व है। समस्त तांत्रिक साधना शरीर में निहित षट्चक्रों पर आधारित है। अतः इन चक्रों को प्रतीकात्मक आकारों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धाख्य और आज्ञा ये छः चक्र हैं। प्रथम पांच चक्र पंचभूतों के साथ संश्लिष्ट हैं वे छठे चक्र का मन के साथ सम्बन्ध हैं।⁴ इन छः चक्रों के अतिरिक्त एक सातवां चक्र ओर है जो सहस्रार कहलाता है



मूलाधार चक्र



स्वाधिष्ठान चक्र



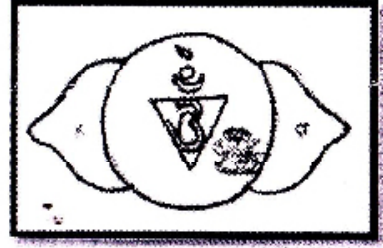
मणिपुर चक्र



अनाहत चक्र



विशुद्धाख्य चक्र



आज्ञा चक्र

तंत्र विचारधारा और उसकी कला की निजी विशेषता बीज मंत्र, बीजाक्षर, बीजांक, और बीज संख्या आदि का प्रयोग है, तांत्रिक परंपरा के बीज मन्त्र शाब्दिक अर्थात् ध्वनिपरक अभिव्यक्ति के मूल आधार है ‘अ’ से लेकर ‘झ’ तक के पचास वर्ण आकारात्मक स्वरूपों के समान ही तांत्रिक यंत्र और कलाकृतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। हीं, क्लीं, ऐं, श्री आदि अनेक संयुक्ताक्षरों के रूप में उपलब्ध बीजाक्षरों का भी विविध अंकन भारतीय चित्रकला में मिलता है। बीजाक्षरों में ओंकार का महत्वपूर्ण स्थान है, इसे भारतीय धर्म एवं दर्शन में सर्वोच्च रहस्यपूर्ण बीजमंत्र माना गया है। ऊँ को शब्द ब्रह्म की प्रथम अभिव्यक्ति बताया गया है और इसीलिये उसे ही शब्द ब्रह्म की और नाद ब्रह्म का बीज प्रतीक बताया गया है। तंत्र कला में धातु या कागज पर यंत्र रचना के अन्तर्गत अथवा स्वतंत्र लिखित बीजाक्षर और बीजयंत्र भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि रेखात्मक अथवा मूर्त स्वरूप। इसी प्रकार 1 से लेकर 36 तक की संख्यायें बीज संख्या हैं जिनका उलट-पुलट कर अंकन यंत्र रचना में दिखायी देता हैं संख्या 1, 9 और 0 का तंत्र विद्या में महत्वपूर्ण, स्थान है। जिस प्रकार एकाक्षरी बीजों के अनेक अर्थ होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक संख्या बीज कई-कई अर्थों के बोधक है।⁵ इसके अतिरिक्त सूर्य, रुद्र, मंगल, महाविद्या आदि तंत्र कला के नमूनों में सम्मिलित हैं। तांत्रिक यंत्र, मण्डल और आकारगत न्यासों में सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दू का भी पूरा महत्व है। बिन्दू, रेखा, वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण, अष्टकोण आदि मात्र रेखापरक आकार भी तंत्रकला की अभिव्यक्ति के प्रधान माध्यम हैं।

तंत्र कला की महत्वपूर्ण विशेषता उसमें वर्ण या रंग का प्रतीकवाद है। विभिन्न तत्त्वों ओर सैद्धान्तिक भावों को प्रकट करने के लिये तंत्र कला विशेष

रूप से रंगों के प्रतीकों को उपयोग करती है। तांत्रिक मान्यता के अनुसार—प्रधान वर्ण शुक्ल, रक्त और नील है। आकार, विशेष वर्ण के अनुसार अलग-अलग भावों का प्रतीक और द्योतक बन जाता है। इन्हीं मूल वर्णों के मिश्रित वर्णों से अन्य रंगों के प्रतीक का विस्तार तंत्र कला में दिखायी देता है। उदाहरण के लिये एक ही बिन्दु क्रमशः श्वेत और रक्त वर्णों से अंकित होने पर शिव और शक्ति का द्योतक प्रतीक माना जाता है।⁶ अधिकांशतः तंत्र कला के चित्रों में चटक चमकीले रंगों के महत्व को स्वीकार करते हुये प्रो० रस्किन ने भी लिखा है— “समस्त मानव रंग का आनन्द प्राप्त करते हैं, सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में रंग है। मानव जीवन में रंग का नैसर्गिक सम्बन्ध है। पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चाँद इन सबका रंग मानव जीवन को प्रफुल्लित करता है।”

तंत्र कला में वास्तु शिल्पीय तथा ज्यामितिक आकारों के अलावा स्त्री-पुरुष के सूक्ष्म मिथुन चित्रों का भी समावेश रहता है। इनका सम्बन्ध दोनों के स्थूल शरीर से न होकर सूक्ष्म तत्वों से होता है। तंत्र दर्शन में स्त्री को शक्ति स्वरूप माना गया है। मिथुन से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है और स्त्री तथा पुरुष साधक और साध्य के रूप में एकाकार हो जाते हैं। तंत्रकला में तांत्रिक आसनों को भी दर्शाया जाता रहा है, आसन वस्तुतः स्थूल को सूक्ष्म में विलीन करने का साधन है। इनके द्वारा ब्रह्माण्ड में व्याप्त पंचतत्वों (पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश) का शरीर की पाँचों इन्द्रियों (ध्यान, स्वाद, दर्शन, स्पर्श तथा शब्द) से मिलाप हो जाता है। जिसके परिणामस्वरूप पुरुष शिव का तथा शक्ति (नारी) प्रकृति का रूप धारण करती है।⁷ तंत्र कला एक ओर जहाँ हमें नारी-पुरुष, शिव-और शक्ति के सम्बन्ध को आत्मसात करने का अवसर देती है तो वहीं दूसरी ओर अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को विकसित करने की ताकत भी जुटाती है। इसी प्रकार एकत्व के अन्वेषण में, तांत्रिक कलाकार ब्रह्माण्ड की शक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं।

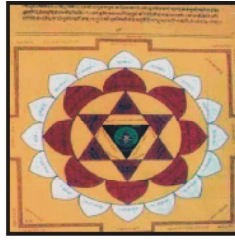
तंत्र कला विविध भौतिक शक्तियों के मध्य उस एकत्व को अभिव्यक्त करती है। जो प्रकृति को स्थापित करती है और इनमें से अधिकतर भौतिक शक्तियाँ पूर्णरूप से सामंजस्य रखती हैं। इस एकता का आविर्भाव ही कलाकार के लिए वास्तविकता है और ये एकता उसके उन प्रतिरूपों में प्रदर्शित होती है, जिन्हें वह बनाता है। प्रकृति की आवश्यक शक्ति के साथ अति-भौतिक एकता के अन्वेषण में कला के कार्य की। विमितीय सीमा को भंग करना एक ब्रह्माण्डीय प्रवृत्ति है न की ये समय की सीमाओं के अधीन है।⁸ समकालीन

कलाकार ल्यूसियों फॉन्टना ने भी कहा है, “मैं एक चित्र बनाना नहीं चाहता। मैं अन्तराल को खोलकर कला के लिए एक नई विभा को बनाना चाहता हूँ। जिससे की यह ब्राह्मण्ड के साथ एक हो सके जैसे कि यह चित्र की सीमाओं के परे अन्तहीन विस्तारित हैं। निरन्तरता जो सम्बद्धता को प्रभावित करती है और कला को सार्वभौमिक महत्व प्रदान करती है।⁹ और यहीं तंत्र कला का मुख्य उद्देश्य रहा है।

इस प्रकार तंत्र कला रूपों की प्रचुर विविधता, तान और रंग की प्रभ. ावित रूप रचना, ज्यामितीय प्रतिरूप वैयक्तिक और ब्रह्माण्डीय अभिप्रायों के शक्तिशाली प्रतीक रूप में उदघाटित हुई है और उदघाटित हुई है और अन्य भारतीय कलाओं की तरह तंत्र कला भी प्राचीन कला का एक रूप है जो तात्विक रूपों की छिपी हुई सम्पूर्णता को निकालने वाले आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित है।¹⁰



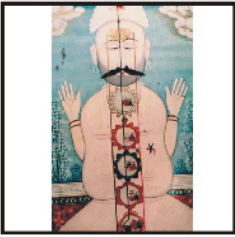
श्री यंत्र



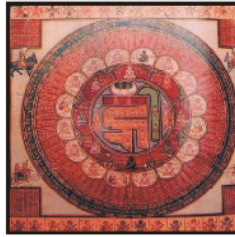
भुवनेश्वरी यंत्र
राजस्थान 18वीं शती



श्री एक पवित्र चिन्ह
कश्मीर



सूक्ष्म शरीर में षट्चक्र
कागड़ा, हिमाचल प्रदेश
18वीं शती



ओम यंत्र, राजस्थान
18 वीं शती

1 UnHZ xLFk 1 ph

1. मुखर्जी, अजीत एवं खन्ना, मधु-दी तांत्रिक वे, 1977, न्यूयॉर्क पृ0 सं0-41
2. अग्रवाल, गिराज किशोर-आधुनिक भारतीय चित्रकला, पृ0 सं0-217-218

सविता शर्मा
शोध छात्रा
पेसेफिक यूनिवर्सिटी
उदयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

मिथिला की लोक चित्र शैली – एक विश्लेषण

मिथिलांचल क्षेत्र नेपाल की तराई में बसा शान्तिप्रिय क्षेत्र है। यहां की भूमि उपजाऊ है। इसी कारण यह क्षेत्र धान, मखाना ओर पान के लिए प्रसिद्ध है। यहां शैव, शाक्त और वैष्णवों के साथ-साथ अन्य धर्मों, सम्प्रदायों के लोग भी रहते हैं। बंगाल के समीप होने के कारण यहां की संस्कृति पर कुछ बंगाली प्रभाव है। यहां के निवासी धर्मपरायण और कर्मठ हैं इसी कारण यहां कला और संस्कृति का समुचित विकास हुआ है। संस्कृत के विद्वान मंडलन मिश्र और लोककवित विद्यापति के अलावा अनेक विद्वान कर्मनिष्ठ इसी भूमि की देन है।

प्राचीनकाल से ही यह क्षेत्र सम्पूर्ण भारत में कला संस्कृति का केन्द्र रहा है। पौराणिक काल में राजा जनक की राजधानी मिथिला थी। राजा जनक की पुत्री सीता के विवाह के समय इस पूरी नगरी को यहां की स्त्रियों ने चित्रमय बना दिया था। विवाह के समय सुन्दर 'कोहबर' चित्रांकित किए गए थे। इस चित्रांकन कला में मिथिला की स्त्रियों का आज भी वर्चस्व है। आर्य संस्कृति यहां पूर्ण विकसित थी। यहीं पर मुनि याज्ञवल्क्य का निवास था। न्यायशास्त्र के विद्वान गौतम, कपिल मुनि, ऋषि श्रंग्य, शतानन्द, मण्डन मिश्र आदि महापण्डितों के साथ गार्गी, मैत्रेयी, लक्ष्मिमा देवी, विश्वास देवी तथा वेदवती जैसी विदुषी स्त्रियों ने मिथिला के वर्तमान सामाजिक आध्यात्मिक जीवन तथा सांस्कृतिक उत्थान के लिए कार्य किया। कालांतर में मिथि नामक के एक शासक का यहां राज्य हुआ। उसने एक नगर बसाकर उसे कलात्मकता प्रदान की। बाद में इसी क्षेत्र का नाम मिथिला पड़ा। सन् 1097 में नान्यदेव के समय यहां कर्णट वंश का शासन स्थापित हुआ और राम सिंह देव, शिव सिंह, लाखिमा, विश्वास देवी, कंस नारायण आदि का राज्य हुआ। चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में महाकवि विद्यापति

के लोक गीतों में मिथिलांचल प्रभावित होने लगा। इसी क्रम में यहां लोककला और लोक शिल्पों का विकास हुआ। इस क्षेत्र में चित्रांकन के साथ-साथ लोक शिल्पों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। शिल्पों का उपयोग संस्कारों के समय होता है। प्राचीनकाल से लेकर अब तक यहां का समाज संस्कारों से बंधा है। संस्कारों, मांगलिक पर्वों, विवाह, उत्सवों के समय लोक चित्रांकन का होना महत्वपूर्ण माना जाता है।

मिथिला क्षेत्र में शैव, शाक्त, वैष्णव सम्प्रदायों का सुमेल है। यहां के समाज में चित्रकला जीवन का अंग है। अतः महिलाएं समय निकाल कर अपनी-अपनी रूचि के अनुसार चित्रों के विषय चुनकर चित्र रचना करती है। जैसे शिव विवाह, गौरी पूजन, शिव परिवार आदि, शक्ति के चित्रण में माँ काली, भगवती दुर्गा, महिषासुर मर्दनी आदि, वैष्णव चित्रों में रामकथा पर आधारित राम सीता विवाह, राम लक्ष्मण, सीता का वन गमन, पुष्प वाटिका में सीताजी और कृष्ण चरित्र में राधा कृष्ण, कालीय मर्दन, गोपियों के बीच कृष्ण आदि। महाकवि विद्यापति एवं अन्य मैथिली भक्तों के गीतों पर भी यहां चित्रांकन होता है।

मिथिलांचल क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहर में यहां की लोक कला और शिल्प अग्रणी है। अब स्त्रियों के साथ-साथ यहां पुरुष भी चित्रांकन करने लगे हैं। उपयोगी शिल्पों के निर्माण में यहां का पुरुष वर्ग सक्रिय है। यहां अर्थोपार्जन के बाद जो समय मिलता है उसमें चित्र रचना होती है।

मिथिला की लोककला

मिथिला क्षेत्र में कला की अभिव्यक्ति माध्यमों के अनुसार प्रायः चार प्रकार से हुई है।

- | | | |
|---|---|-----------------------|
| क | – | भूमि चित्रण (अरिपन) |
| ख | – | भित्ति चित्रण (कोहबर) |
| ग | – | पट चित्रण |
| घ | – | तांत्रिक चित्रकला |

भूमि चित्रण – (अरिपन)

भारतवर्ष में भूमि अलंकरण की प्रथा वैदिक युग से मानी जाती है। ब्राह्मण

कर्मकाण्ड तथा बाद में तंत्र साधना के समय इसके रूप में परिवर्तन आ गया और समयानुसार यह हमारे रीति रिवाज, संस्कारों का अंग बन गई। अलग-अलग प्रदेश में यह भिन्न-भिन्न नामों और रूपों में देखी जा सकती है। जैसे – उत्तर प्रदेश के बृज क्षेत्र में यह सांझी, पहाड़ी क्षेत्र में आँजी, गुजरात में साथिया, राजस्थान में माँडना, महाराष्ट्र में रंगोली, आन्ध्र प्रदेश में सुग्गु, दक्षिण भारत में कोलम, बंगाल तथा असम प्रदेश में अल्पना तथा कहीं –कहीं चौक पूरना भी कहते हैं।

बिहार के मिथिलांचल में भूमि अलंकरण की प्रथा अति प्राचीन है। यहां इसे अश्विन के नाम से भी जाना जाता है। यह रचना मांगलिक पर्वों, विवाह के समय, लोकोत्सवों के समय स्त्रियों या कुंवारी कन्याओं द्वारा रची जाती है। भूमि को गोबर मिट्टी से लीपकर या पक्की जमीन को धो-पोंछर उसके ऊपर भीगे चावलो को पीसकर 'पीथर' या 'चौरठ' बनाया जाता है। इसे रंगीन बनाने के लिए जलरंगों को इसमें मिला दिया जाता है। मांगलिक पर्वों पर सूखे सिंदूर का प्रयोग आवश्यक है।

मिथिला क्षेत्र में प्रत्येक उत्सव या पर्व के समय परम्परागत रूप से पूर्व निश्चित अरिपन ही बनता है। उसमें प्रयोग होने वाली आकृतियाँ भी पूर्व निश्चित होती है। जैसे – विवाह के समय बनने वाले आश्विन या आसिन में कमल, मछली, पुरइन के पत्ता, बाँस आदि। ये सभी चिन्ह विवाह के बाद वंश वृद्धि के प्रतीक हैं। सत्यनारायण पूजा के अवसर पर अष्टदल कमल, विष्णु पद, शंख चक्र, गदा, मद्म आदि आकृतियों का अंकन होता है। लक्ष्मी पूजा के समय त्रिकोणात्मक अरिपन की प्रथा है। दशहरे पर कोसा अरिपन, नाग पंचमी पर नागफण अरिपन और भ्रातृ द्वितीया पर गोलाकार अरिपन बनाने का विधान है। इसके अतिरिक्त तुषरी पूजा, चौठ चन्द्र, मधु श्रावणी, लवान (हल पूजा) पर अलग-अलग प्रकार के अरिपन बनाने का प्रचलन है। भूमि अलंकरण का कार्य प्रायः घर की महिला या कुंवारी कन्या ही बनाती है।

मिथिला क्षेत्र में तंत्र साधना के लिए भी भू-अलंकरण किया जाता रहा है। यह चित्रण कुछ सिद्धहस्त तांत्रिकों द्वारा ही होता है जिसमें कर्मकाण्ड के समय भूमि पर ज्यामितीय आकृतियाँ, अंक विज्ञान एवं तांत्रिक प्रतीक चिन्हों का अंकन भूमि शुद्धिकरण के बाद किया जाता है। इसमें प्रायः सूखे रंगों का प्रयोग होता है। इन आकृतियों को सामान्य कलाकारों द्वारा बनाया जाना वर्जित है। अनुष्ठान के बाद इनका विधिवत्

विसर्जन किया जाता है। इन आकृतियों के दर्शन भी सबके लिए वर्जित हैं।

भित्ति चित्रण (कोहबर)

भित्ति चित्रण में मुख्य रूप से 'कोहबर' आता है। इसके अतिरिक्त भी यहां अनेक प्रकार के चित्र दीवार पर बनाने की परम्परा है। 'कोहबर' चित्रण को यहां कोहबर लेखन कहा जाता है। ये आकृतियाँ इतनी स्पष्ट और सरल होती हैं कि उनको आसानी से पढ़ा जा सकता है। बिहार के अन्य क्षेत्रों में भी विवाह के समय कोहबर बनाने की प्रथा है परन्तु जिस विधान और मनोयोग के साथ यहां कोहबर अंकन होता है, अन्यत्र प्रतीत नहीं होता।

कोहबर वह स्थान है जहां विवाह के समय नव दम्पति मिलते हैं। इसके तीन भाग होते हैं। पहला गोसाईं घर (जहां कुल देवता स्थापित होते हैं), दूसरा कोहबर घन (जहां नव दम्पति प्रथम बाद मिलते हैं) तीसरा – कोहबर घन कोनिया (यह कोहबर का बाहरी भाग) होता है। इन तीनों स्थानों में अलग-अलग प्रकार के चित्रांकन का विधान है। कोहबर में प्रयोग होने वाली आकृतियाँ सार्थक होती हैं और सभी का उद्देश्य नव दम्पति के भावी जीवन की मंगल कामना के साथ वंशवृद्धि की कामना होती है।

कोहबर चित्रण भित्ति पर, आयताकार या चतुर्भुजीय आकार का होता है। इनमें प्रयोग होने वाली आकृति तोता, बांस, कमल का पत्ता, कछुआ, मछली के अलावा मैना योगिन के चित्रांकन का प्रचलन है। इसमें सामा-चकेवा (मिथिलांचल में प्रचलित लोककथा) का चित्रण भी होता है। कोहबर चित्रण में तांत्रिक आकृतियों का भी सामंजस्य होता है। कहीं-कहीं पर युगल मिथुन आकृतियों के साथ कामरत चित्र भी होता है। कोहबर चित्रण अनुभवी महिला चित्रकार ही करती हैं। जल रंगों से रूई की तूलिका और अनार की कलम से ये चित्र बनाए जाते हैं। कोहबर में प्रयोग होने वाले रंग प्रायः चटख होते हैं।

मिथिला की भित्ति चित्रण परम्परा में सामा-चकेवा की कथा को भी रूपायित किया जाता है। शैव, शाक्त और वैष्णव सम्प्रदायों का चित्रों की शृंखला में नारी नृत्य, विषहरा और अघोरी, लोरिकायन, दयाल सिंह, कमला कोयला, नायका बनजारा तथा राज सल्हेस आदि। पौराणिक विषयों में चीर हरण, राधाकृष्ण नृत्य, राम सीता विवाह आदि। जट-जटिन, शिशुनृत्य, करिया झूमर तथा बगुला-बगुली आदि

मिथिलांचल में प्रचलित राजा सल्हेस की शौर्यगाथा, हार्थी पर सवार अंगरखा

पहने, पगड़ी बांधे, पीट पर तरकस लगाए, हाथ में तलवार लिए हुए चित्रित की जाती है। ये आकृतियाँ वीर रस से पूर्ण होती हैं।

भारत के अन्य क्षेत्रों उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र (बारली) उड़ीसा आदि राज्यों में भित्ति चित्रण की परम्परा अति प्राचीन है। अनेक राज्यों में तो मात्र एक ही रंग से तथा रेखाओं के माध्यम से ही यह भित्ति चित्रण होता रहा है। मिथिलांचल क्षेत्र की भित्ति चित्र परम्परा अति प्राचीन है। यहां रेखाओं के साथ रंगों का भी भरपूर प्रयोग होता है। रेखाएँ सरल और सहज होती हैं। चित्रों में प्रयोग होने वाली आकृतियाँ भी परम्परागत हैं। बदलते परिवेश में चित्रों के विषयों में कहीं-कहीं थोड़ी आधुनिकता आ गई है। समयाभाव और रूचि के अनुसार यह माध्यम अब कम प्रयोग में आता है।

पट चित्रण

भारत में पटचित्रों की परम्परा अति प्राचीन है। पाल काल में कथाओं अथवा महाकाव्यों को चित्रित करने की परम्परा प्रारम्भ हो गई थी। ये कुण्डलित (स्करोल) रूप में होते थे। गुप्तकाल की चित्रकला, अथवा अजंता के कथा चित्रों में जीवन कथा या काव्य चित्रण की परम्परा थी। धीरे-धीरे लोक संस्कृति पर भी इसका प्रभाव पड़ा और यह राजस्थान में 'बापू की फड', बंगाल में 'काली घाट के पटचित्र' 'मनसा कथा', आदि का प्रचलन हो गया। उसी प्रकार बिहार के मिथिलांचल में पटचित्र परम्परा प्रारम्भ हो गई। मिथिला के पड़ोसी देश नेपाल में भी पट चित्रों की परम्परा है। सम्भवतः यहीं से प्रभावित होकर मिथिलांचल में भी पट चित्रों और कुण्डलित चित्रों (स्करोल) की परम्परा प्रारम्भ हुई होगी।

कला मर्मज्ञों के अनुसार महाराज शिव सिंह के काल में पटचित्रों के प्रदर्शन की परम्परा का प्रारम्भ मिथिला में हुआ था। पटचित्रों में अलग-अलग विषय पर आधारित चित्र रचना होती है जबकि कुण्डलित चित्रों में सम्पूर्ण रूपायित होती है। जिसके साथ कथा गायन करके भी प्रदर्शित किया जाता था। यहां के कुण्डलित चित्रों में राय रणपाल की वीरता का चित्र तथा लवकुश कथा, राजा सत्येन्द्र की कथा तथा 'नयना बंजारा लोक कथा' गायन के साथ प्रस्तुत करते थे। इन कुण्डलित चित्रों की लम्बाई लगभग बीस फुट होती है। छोटे आकार के भी चित्र कहीं-कहीं उपलब्ध हैं।

भारत में कम्पनी कला का प्रभाव इन चित्रों पर भी पड़ा। समय के अनुसार

धीरे-धीरे पटचित्र और कुण्डलित चित्रों की यह परम्परा कम होती गई और इस शताब्दी के पांचवें दशक तक आते-आते यह प्रायः कम हो गई। कागज पर चित्रांकन पद्धति ने तथा चित्रों में छापा पद्धति के प्रवेश से इस पर प्रतिकूल असर पड़ा। चित्रों में व्यावसायिकता आने लगी। समाज की दृष्टि भी बदलने लगी।

मिथिला और तांत्रिक चित्रकला

यहां की तंत्र साधना, शैव, शाक्त और वैष्णव पद्धति पर आधारित है। मिथिलांचल में बौद्ध तंत्रागमों के प्रभाव से दूर रहने का प्रयास किया गया है। इन तांत्रिक पद्धतियों का रूपांकन अन्य चित्रों से अलग है। महिला चित्रकारों की कलाकृतियां और पुरुष कलाकारों द्वारा बनाए गए ये तांत्रिक चित्र सर्वथा अलग हैं। विशुद्ध तांत्रिक चित्रों का सृजन कुछ सिद्धहस्त चित्रकारों द्वारा ही होता है।

मिथिला के तांत्रिक चित्रों में अंकगणितीय आकृतियों और ज्यामितीय आकृतियों का प्रयोग होता है। तंत्रसाधक चितरे अपनी आध्यात्मिक चेतना और अनुभव के आधार पर चित्र संयोजित करते हैं। गुरु शिष्य परम्परा के अनुसार यह कला आगे बढ़ती गई। इसमें शक्ति की चार महादेवियों के रूप में चित्रित किया गया है। महालक्ष्मी, महासरस्वती, महाकाली और चामुण्डा। देवियों के रूपों में दस महाविद्या काली, कमला, तारा, छिन्नमस्ता, मातंगी, षेड़सी, भैरवी, भुवनेश्वरी, धूमावती, बगुलामुखी इन सबको चित्रकार धैर्यपूर्वक पूरे मनोयोग के साथ चित्रित करते हैं। इन चित्रों के रंगविधान भी अलग हैं।

मिथिला के तांत्रिक चित्र विवेचनात्मक हैं। विषयानुगत रेखाओं और रंगों का प्रयोग इन चित्रों की विशेषता है। इस प्रकार के चित्र प्रायः गुप्त रखे जाते हैं और चित्रकार आत्म प्रचार से दूर रहते हैं। यह तंत्र साधना की क्रिया का एक अंग है।

मिथिला लोक कला के गुण

यहां के चित्र मुख्य रूप से रेखा प्रधान और दूसरे रंग प्रधान होते हैं। चित्रों के बाहर मछली फूल, फल, चिड़िया आदि का बॉर्डर बनाया जाता है। चित्रों में आकृतियों का जाल सा बिछा रहता है। कहीं भी खाली स्थान नहीं छोड़ा जाता है। प्रारम्भ में चित्रों में प्रयोग होने वाले रंग फूल, फल, छाल के रसों से बनाए जाते थे। काले रंग

के लिए तेल के दीपक से बनी फलिया में गोंद मिलाकर बनाया जाता था। तूलिका के लिए अनार की कलम या सीक के अग्रभाग से रेखा बनायी जाती थी। कुछ रंग खनिज पदार्थों से लिए जाते थे। जैसे पेवरी, रामरस, सिंदूर, नील आदि। इनमें बबूल का गोंद मिलाकर रंग तैयार होते थे। परन्तु आज अधिकतर कलाकार कैमिकल रंग जो बाजार में उपलब्ध हैं, उन्हीं का प्रयोग करते हैं।

मिथिलांचल में हरिजन लोककला की कुछ अलग परम्परा है। स्त्रियाँ अपने घर के बाहर की दीवारों पर मिट्टी गोबर से उभरी हुई आकृतियों से संयोजन बनाती हैं इन मिट्टी के चित्रों में फल, फूल, चिड़िया और जानवरों की आकृतियों को बनाया जाता है। स्त्री-पुरुष की आकृतियाँ मिथिला चित्रों की आकृतियों से अलग होती है। हरिजन लोक शैली में राजा सल्हेस की गाथा कम रंगों से बनाई जाती है। गोबर से निकले एक रस और काले रंग का प्रयोग अधिक होता है। यहां राजा सल्हेस की मृणमय मूर्ति बनाकर पेड़ों के नीचे स्थापित भी की जाती है।

पशु अलंकरण

मिथिलांचल में चित्रांकन, मृणमय मूर्तियों के अलावा पशु अलंकरण की भी प्रथा है। गोधन पूजा के दिन गायों पर रंगों से आकल्पन किया जाता है। रंग बिरंगे कपड़ों को सींगों पर बांधकर गायों के गले में रंग-बिरंगे मोतियों की माला पहनाकर सजाया जाता है। दीपावली के बाद सुकराती पर्व के दिन इसी प्रकार बैलों को भी सजाया जाता है। हरिजन लोक सुअर को सजाते हैं और एक खुले मैदान में सुसज्जित बैल और सुअर की लड़ाई आयोजित कर हर्ष मनाते हैं।

मिथिला चित्र शैली की चितेरी कायस्थ, ब्राह्मण और हरिजन समुदाय की महिलाएं होती थी परन्तु अब अर्थोपार्जन के लिए पुरुष भी चित्रांकन करने लगे हैं। सर्वप्रथम सन् 1970 में जितवारपुर की जगदम्बा देवी को राष्ट्रीय हस्त शिल्प पुरस्कार मिला। सन् 1975 में सीता देवी, सन् 1976 में रसीदपुर की गंगा देवी तथा 1980 में राँटी ग्राम की गोदावरी दत्ता को तथा 1982 में महासुन्दरी देवी और लहिरिया गंज की शान्ति देवी, शिवन पासवान को सन् 1986 में हस्त शिल्प पुरस्कार मिला। भारत सरकार ने मिथिला चित्रकला की सेवा के लिए सन् 1975 में जगदम्बा देवी तथा 1981 में सीता देवी और सन् 1984 में गंगादेवी को पद्मश्री की उपाधि से

अलंकृत किया। समय-समय पर अन्य संस्थाओं ने भी यहां के अनेक कलाकारों को भी सम्मानित किया है यहां के कलाकार विदेशों में आयोजित होने वाले 'भारत-उत्सवों' में भी भाग लेते रहे हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, इटली, जर्मनी, सोवियत संघ के सांस्कृतिक आदाम-प्रदान कार्यक्रमों में यहां के कलाकारों को भेजा जाता रहा है। विदेशों में मिथिला शैली के चित्रों को भरपूर प्रशंसा मिली है।

उपरोक्त प्रतिष्ठित महिला कलाकारों के अलावा यहां जितवारपुर की अनमना देवी, बौआ देवी, चन्द्रकला देवी, त्रिपुरा देवी, बच्चू देवी, हीरा देवी और राँठी ग्राम की उर्मिला झा, कर्पूरी देवी, सावित्री देवी, श्यामा देवी, शशि देवी, प्रेमलता देवी, सतधारा सीमरी की जानकी देवी आर रामप्यारी देवी, भवानीपुर की चन्द्रमा देवी, रहिका की पूना देवी एवं त्रिवेणी देवी, रामपट्टी ग्राम की सुनन्दा चौधरी, यशोदा देवी आदि महिला मिथिला लोककला चित्रांकन में संलग्न है। हरिजन महिला चित्रकारों ने अभी भी परम्परागत ढंग को अपनाए रखा है। बिहार के मिथिलांचल क्षेत्र की यह कला शैली बिहार का गौरव बनकर रह गई है।

सन् 1948 में भारत की लोक कलाओं और लोक शिल्पों का प्रदर्शन लंदन में पहली बार हुआ। मिथिलांचल की चित्र शैली को देखकर कला मर्मज्ञ आश्चर्यचकित रह गए। इसके बाद यहां की कला का विस्तार विश्वस्तर पर छाने लगा। धीरे-धीरे कलाकार स्वातः सुखाय रचना करने के बजाय अर्थोपार्जन के लिए रचना करने लगे। यहां की कला विश्व के अनेक भागों जैसे अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, पोलैण्ड, जर्मनी, जापान भेजी जाने लगी।

भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड के मर्मज्ञ कलाकार 'भास्कर कुलकर्णी' ने इस कला के महत्त्व को पहचाना और मिथिलांचल में घूम-घूमकर यहां के कलाकारों और कलाकृतियों को देखा। उन्होंने हस्तनिर्मित कागज पर यहां की महिला कलाकारों से चित्र बनवाना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे जितवारपुरा की सीता देवी, जगदम्बा देवी, ऊषा देवी, यमुना देवी और राँठी की महासुन्दरी देवी की पहचान बनने लगी। सन् 1965 में उपेन्द्र महारथी तथा 1972 में तत्कालीन विदेश व्यापार मंत्री ललितनारायण मिश्र के अलावा कलाविद् पुपुलजयकर आदि ने इस लोककला शैली के प्रचार-प्रसार में भरपूर योगदान दिया और यहां की लोककला शैली देश और विदेश में लोकप्रिय

होने लगी।

भारत की प्रख्यात कला समालोचक श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय, डॉ. मुल्. कराज आनन्द, राजेश्वर नारायण सिंह आदि ने मिथिलांचल क्षेत्र की लोककला का अध्ययन कर यहां की कला सम्पदा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सन् 1972 में श्रीमती पुपुलजयकर ने यहां की महिला कलाकारों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की तथा शशिकला देवी को आंध्रप्रदेश के चिट्टूर स्थित ऋषि वैली स्कूल में मिथिला चित्रकला के अध्यापन के लिए नियुक्त किया गया। सन् 1978 से 1981 तक फ्रांस के कला मर्मज्ञ विकी ने यहां की कला पर 'द आर्ट ऑफ मिथिला' पुस्तक लिखी जिसका प्रकाशन लंदन से हुआ। इसके अलावा जर्मनी, कनाडा, फ्रांस के अनेक कला मर्मज्ञों ने यहां की लोककला को देश से बाहर प्रतिष्ठित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आज भी व्यावसायिक दृष्टिकोण से अनेक कला दीर्घाओं में यहां के चित्र देखे जा सकते हैं। मिथिला के समाज में आज भी संस्कारों, मांगलिक पर्वों और उत्सवों में यहां की लोकचित्र शैली अपना स्थान बनाए हुए हैं।

संदर्भ

1. अवधेश, अमन; लोक जीवन से दूर होती मिथिला की लोक चित्रकला, कला दीर्घा, वोल्यूम-8, नम्बर 16, लखनऊ, 2008
2. "Mithila Painting : Past, Present and Future" <http://ignca.nic.in/kmsh0002.htm>
3. Mulk Raj Anand; Madhubani Painting, Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, 1984
4. www.eworldtradefair.com/madhubani_paintings_72.html posted on 12th september, 2009
5. K. Prakash, Madhubani - an invaluable book in the original art tradition. The design Point, Mumbai, 1994
6. श्याम शर्मा; मिथिला की लोकचित्र शैली, कला दीर्घा, उत्कर्ष प्रतिष्ठान, लखनऊ, अक्टूबर, 2000



डॉ. सरला चौधरी
व्याख्याता – हिन्दी,
राजकीय महाविद्यालय,
कालाडेरा – जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

हिन्दी नाट्य कव्यों में पात्रों का मनोविशलेष्णात्मक अध्ययन

नाट्य कव्यों में पात्रों का मनोविशलेष्णात्मक अध्ययन करने से पहले , साहित्य एवं मनोविज्ञान को समझ लेना अतिआवश्यक हो जाता है। सर्वप्रथम मनोविज्ञान को स्पष्ट करना उपर्युक्त रहेगा। मनोविज्ञान मन का विज्ञान है जिसका प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव पर लक्षित होता है। मनोविज्ञान से तात्पर्य मन के , ज्ञान अर्थात् मन में उठने वाले विचारों का अध्ययन है। “जेम्स के अनुसार मनोविज्ञान मानसिक जीवन – जगत् उसके व्यापार एवं दिशाओं का विज्ञान है, कार्य है भाव, इच्छा, सोचना, तर्क एवं निर्णय आदि”। वूडवर्थ ने “ व्यक्ति की क्रियाओं को मनोविज्ञान कहा है। विलियम कूट के शब्दों में “प्राकृतिक विज्ञान की विषय वस्तु बाह्य अनुभव के विषयों के विरुद्ध ,मनोविज्ञान को उसकी जांच करनी है। जिसको हम आंतरिक अनुभव कहते हैं अर्थात् हमारी अपनी संवेदना और अनुभूति हमारे विचार और संकल्प। “ मैवड्गल द्वारा मनोविज्ञान क्रमानुसार सुव्यवस्थित एवं विकसित ज्ञान, संस्था का विज्ञान है अथवा बनने की आकांक्षा रखता है। पिल्सवरी मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान मानते हैं।¹ गेरिसन व अन्य मनोविज्ञान का सम्बन्ध प्रत्यक्ष मानव व्यवहार से स्वीकार करते हैं।² स्किनर व्यवहार और अनुभव के विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान को परिभाषित करते हैं।³ मनोवैज्ञानिक मन ने इस सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है “आधुनिक मनोविज्ञान का संबंध व्यवहार की वैज्ञानिक खोज से है।”⁴ सबसे पहले मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा का त्याग फिर, उसने अपने मन का मस्तिष्क का त्याग किया, उसके बाद उसने चेतना का त्याग किया। अब वह व्यवहार की विधि को स्वीकार करता है।

साहित्य के सम्बन्ध में विभिन्न समय पर, हिन्दी साहित्यकारों, पाश्चात्य विद्वानों, संस्कृतचार्यों द्वारा विभिन्न प्रकार से विचार व्यक्त किये गये हैं। संस्कृत में “साहित्य शब्द का अर्थ साहितस्य भावः” से लिया है। हिन्दी में साहित्य,

अंग्रजी में "लिट्रेचर" शब्द के समानार्थ रूप में व्यवहृत होता है।

संस्कृत अचार्य भामह ने "काव्यालंकार" में शब्द सहितौ काव्यम् के रूप में परिभाषित किया। राजशेखर ने शब्दार्थ, योर्यथायत्सहभावेन विद्या साहित्य विद्या कहकर विस्तृति दी है।⁶ कुन्तक ने "वक्रोक्ति जीवन" (1 : 17) में इस प्रसंग में कहा है — जिसमें शब्द और अर्थ दोनों की अन्यूनीतिरिक्त, परम्परा, स्पद्ध पूर्वक, मनोहारिणी, श्लाधनीय स्थिति हो वह साहित्य है।⁶

साहित्य सम्बन्धी परिभाषाएं मानव की विभिन्न क्रियाओं के सम्बन्ध का ज्ञान कराती है। व्यक्ति देखता है, अनुभव करता है, एवं क्रियान्वित करता है। साहित्य निर्माण में चाहे दिव्यकार आनंद का अनुभव करे, अथवा धन एवं सम्मान प्राप्त करे, यह उसकी क्रिया अथवा लक्ष्य मात्र को बोध कराता है उसके लिखित रूप अथवा शब्द प्रत्यक्ष अनुभवों की अभिव्यक्ति का माध्यम है।

साहित्य का सम्बन्ध मन, विचार, भाव, संकल्प एवं प्रतिभा आदि क्रियाओं से है, जिनकी अभिव्यक्ति का माध्यम शब्द अथवा लिपि है। अतः स्वभाविक ही है, साहित्य और मनोविज्ञान का गहरा सम्बन्ध है। प्रथम में व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं की अभिव्यक्ति होती है एवं द्वितीय उस अभिव्यक्ति माध्यम द्वारा साहित्यकार की मानसिक — क्रियाओं, उसकी मान्यताओं एवं व्यक्तित्व की जानकारी कराने में सामर्थ्य प्रदान करता है। अतः मनोविज्ञान ही एक ऐसा माध्यम है, जिससे हम साहित्य की जानकारी सुचारु ढंग से प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं।

"साहित्यकार बहुधा अपने देश—काल से प्रभावित होता है, जब कोई लहर देश में उठती है। साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। और उसकी विशाल आत्मा अपने देश—बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है। एवं इस तीव्र विकलता में वह रो उठती है, पर उसके रूदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।"

प्रत्येक साहित्यकार अपने साहित्य की अभिव्यक्ति इस कारण करता है कि पाठकों व आलोचकों द्वारा उसकी काव्य — कृति का मूल्यांकन, उसके काव्य के प्रेरणा — स्रोतों को उसकी मानसिक प्रवृत्तियों, एवं उसके अनुभवों को सम्मुख रखकर ही किया जाये। साहित्यकार अपनी रचना के माध्यम से विभिन्न अलग—अलग तत्वों के रूप में प्राप्त अनुभवों को व्यक्त करता है। शब्द उसके कहने या लिखने की शैली उसके भावों, अनुभवों की अभिव्यक्ति का साधन मात्र है।

बहुधा साहित्यकार परम्परागत पात्रों के चरित्र – चित्रण एवं निर्माण की ओर ध्यान देते हैं। यथार्थवादी कवि मूलतः साधारणीकरण करता है, जबकि रोमांटिक कवि आरोपण करता है। परन्तु इन साधारणीकृत या रोमांटिक पात्रों का कहीं न कहीं, कथाकार के “आत्मा” से गहरा या आन्तरिक सम्बन्ध अवश्य ही होता है। मूलतः जिस कथाकार के पात्र जितने अधिक एवं बिखरे बिखरे होंगे उस कथाकार का स्वयं का व्यक्तित्व भी उतना ही अधिक अनिश्चित और बिखरा बिखरा होगा।

मनोविज्ञान ही एक ऐसा साधन है, जो कि काव्य, काव्य सृजन के कारण आदि की विवेचना उचित ढंग से करने में सक्षम हैं। वस्तुतः मनोविज्ञान रचनात्मक क्रिया पर विशेष प्रकार से प्रकाश डालने में समर्थ है। मूल प्रवृत्तियाँ – मनुष्य जब तक जागृत अवस्था में रहता है। उसको चेतना रहती है, और कभी – कभी सोते समय भी अर्थात् स्वपनावस्था में भी चेतना रहती है। मनुष्य सृष्टि की उन रचनाओं का ज्ञाता है। उसे सोच विचार करने की शक्ति है। ये सभी चेतना के कार्य हैं। और इनमें से प्रत्येक की मनोवृत्तियाँ क्षण – क्षण में परिवर्तित होती रहती है। एक क्षण में एक मनोवृत्ति हुई, तो दूसरे क्षण में दूसरी अपना आधिपत्य स्थापित कर लेती है। मानव अपने कार्यों को समाज में प्रभावित व अपनी जन्मजात प्रेरणाओं के कारण करता है यथा समय आता जाता है। वैसे ही दिन रात, खग कुल का कलरव होता है। सन्ध्या और प्रभात का हम पर, सदैव क्या वही प्रभाव पड़ता है जैसी सृष्टि दिखती है। वैसी ही हो जैसा निज भाव।⁸

इन्हीं जन्मजात प्रवृत्तियों को, जो मनुष्य को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है, मूल प्रवृत्तियाँ कहा जाता है। प्रसिद्ध अंग्रेज मनोवैज्ञानिक विलियम मैक्डगल मूल प्रवृत्तियों के सिद्धान्त के प्रतिपादक है। मैक्डगल के अनुसार ऐसे अनेक कार्य या व्यवहार हैं, जिनको मनुष्यों और जीवन जन्तुओं को सीखना नहीं पड़ता है। वे इन कार्यों को अपनी मूल प्रवृत्ति, आन्तरिक प्रेरणा या नैसर्गिक शक्ति के कारण करते हैं। ‘मैक्डगल’ ने मूल प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया – “प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मूल प्रवृत्तियाँ सब मानव – क्रियाओं की प्रमुख चालक हैं। यदि इन मूल प्रवृत्तियों और इनसे सम्बन्धित शक्तिशाली संवेगों को हटा दिया जाय, तो जीवधारी किसी भी प्रकार का कार्य करने में असमर्थ हो जायेगा। बुडवर्थ मूल प्रवृत्तियों को कार्य के बिना

सीखे हुए, स्वरूप के रूप में स्वीकार करते हैं।⁹ सी. डब्ल्यू वैनलटाइन के अनुसार मानव में जन्मजाम वृत्तियाँ ही प्रवृत्तियाँ हैं।¹⁰ मरसेल मूल प्रवृत्तियों की व्यवहार का सुव्यवस्थित प्रतिमान मानते हैं। जिस पर सीखे का बहुत कम या बिलकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

सहज प्रवृत्तियाँ – प्रत्येक सहज प्रवृत्ति विशिष्ट भाव के साथ संलग्न रहती है विभिन्न विद्वानों द्वारा इनका वर्गीकरण विभिन्न रूपों में किया गया है। जेम्स ने इनकी 32, थार्नडाइक ने 100, वनर्डि ने 110 संख्या स्वीकार की है। मनोविज्ञान की रूप, परिभाषा, स्वरूप, प्रवृत्तियों का विवेचन करने से यह कहना सार्थक है कि मानव व मनोविज्ञान शरीर व आत्मा की तरह है और साहित्य इस आत्मा की देन है। अतः साहित्य व मनोविज्ञान का अटूट सम्बन्ध है। वो साहित्य ही सार्थक है ,जो मानव को प्रभावित करे। आधुनिक युग में नाट्य विद्या इसका सर्वोत्तम उदाहरण है अतः इसका प्रयोग हमें हर एक नाटक में भरपूर रूप में समानार्थी एवं विपरीतार्थी रूपों में मिलता है। समर्पित है यह, धनुष, बाण, खड्ग और शिरबाण मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए।¹¹ डाकिनियों शाकिनियों प्रेतों और गणों की सेना लेकर महाकवि दिनकर के नाट्य काव्य में फ्रायड के मनोविश्लेषण शास्त्र का भी गहरा प्रभाव है।¹² “ये नवीन पाटल के दल आनन पर जब फिरते हैं “उर्वशी के मनः स्थिति का स्पष्ट वर्णन इप पंक्तियों द्वारा होता है।

“मैं पुलकित विद्वत प्रसान मूर्छित होने लगती हूँ।

कितना है आनंद फेंक देने में स्वयं स्वयं को “।

आधुनिक हिन्दी नाट्य काव्यों में मनोविज्ञान प्रभाव – हिन्दी नाटकों में, नाटककारों ने विभिन्न रूपों से मनोविज्ञान का चित्रण किया है। सुरेन्द्र वर्मा कृत सेतुबन्ध नर-नारी सम्बन्धों के अन्त रंग विश्लेषण पर टिका है जो इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

माँ प्रभावती और कालिदास के मधुर सम्बन्धों के ,माध्यम से नाटककार ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को नये कोण से परिभाषित किया है। यदि किसी विवशता या दबाव के कारण किसी स्त्री को किसी अनचाहे व्यक्ति से विवाह करना पड़ जाए तो क्या वह वैवाहिक मर्यादा के पतन के लिये अनिवार्यतः बाध्य होगी। ऐसी स्थिति में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह असम्भव नहीं कि उस नारी

के लिए पर पुरुष पति बन जाये और पति परपुरुष, इसी प्रकार का वर्णन दिनकर ने उर्वशी के माध्यम से व्यक्त किया है। जब उर्वशी पुरुषवा के समक्ष आकर समर्पण करती हैं और मन-ही मन सोचती हैं, कि अगर पुरुष स्त्री के समक्ष आकर अपनी मनस्थिति व समर्पण करे, तो स्त्री एक ऐश्वर्य और अंह की भागी होती हैं।¹³

उर्वशी स्वर्ग लोक की अप्सरा है इसलिये घरती पर आकर उसके हृदय में पुरुष के आलिंगन में, आने की अपरिमित वासना इच्छा और कामना हैं।

वक्ष स्थल पर इसी भाँति मेरे कपोल रहने दो।

कसे रहो बस इसी भाँति पर पीड़क आलिंगन में।

और जलाते रहो अधर पुट को कठोर चुम्बन से।

मनोवैज्ञानिक नाटक ,सेतुबंध में सुरेन्द्र वर्मा ने नारी-जीवन की विवशता, परवशता, दैन्य और नारी-मनोविज्ञान का अच्छा उद्घाटन किया है। षरतवर्ष के स्वर्णिम अतीत से जुड़े होने पर भी सेतुबंध की कथा ,आधुनिक संवेदना की संवाहक है। नारी के काम मनोविज्ञान 'मेघदूत' जैसे विरह प्रधान आत्मपरक काव्य की पाण्डुलिपि उसकी माँ के चरित्र पर एक प्रश्नचिन्ह लगाकर उसकी चेतना को दन्द्वग्रस्त कर देती है। वह अस्थिर उद्विग्न और अशान्त हो उठता है। अपनी इस आंशका को वह अपनी पत्नी विभावती के सामने रखता है। जैसे पाण्डुलिपि के साथ-साथ आपको मनमानी कल्पना का भी अधिकार मिल गया है।¹⁴ भस्माकुर नाट्य काव्य अपने मूलरूप में काव्यमयी चेतना से युक्त है।

उमा का यह सौन्दर्य।

लगता है मुझको भी विरल, अपूर्ण

पर तुमने तो, ओ हे प्राण धार,

मुनि मन मथित किए हैं सौ सौ बार।¹⁵

नारी के मन में हुये इस मनोभाव को भारत भूषण अग्रवाल ने इस प्रकार व्यक्त किया है।

कल तक माँ पति वंचिता विरहिणी थी।

अनाधिनी माँ थी।

मिथ्या कंलक के अभिशाप से ग्रस्त दयापाती थी, पर आज नहीं।¹⁶ द्रा.

पदी नाटक में सुरेन्द्र वर्मा ने नारी कि आत्मविभाजन को बड़े सजग रूप से दर्शाया है।

‘सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक’ शालवती को तो मौलिक पहचान मिल जाती है पर प्रभावती के मनोवेग का कुंदन हुआ। मेघखंड का चित्र सागर का चित्र इन सब में वह मौलिक पुरुष का अनुसंधान करती हैं।¹⁷ नारी व मनोविज्ञान का चित्रण प्रसाद जी व गुप्ताजी की कृतियों में स्पष्ट होता है। प्रकृतिप्राण ‘नारी का जीवन जितना स्वाभाविक है उतना ही कोमल भी। वह संसार से अपरिचित हो सकती है इसलिये यह अंसभव नहीं कि रानीत्व की चमक उसकी आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर दे और वह अंतःकरण (अंतः प्रकृति) ‘नारी’ और ‘रानी’ का परस्पर नितांत विरोध नहीं है रानी भी तो नारी ही है।¹⁸ प्रसादजी नारी के मनोविज्ञान को प्रस्तुत करने में कुशल है। वही गुप्तजी रानी के (यशोधरा) रूप में एक नारी के विचार-मन को चित्रित करने में सफल हैं। गुप्तजी की नारी में मध्यकालीन आदर्श आवश्यकता से अधिक है। रानी तुम भी तो स्त्री हो ... तुम्हारे भी जीवन में वह आलोक का महोत्सव आया होगा। जिसमें हृदय-हृदय को पहचानने को प्रयत्न करता है। उदार बनता है और सर्वस्य दान करने का उत्साह रखता है। (ध्रुवस्वामिनी तृतीय अंक 27) कौन समझेगा कि मेरी भावना आज तक कुमारी है . . . मे माँ बनी हूँ लेकिन पत्नी नहीं। (सुरेन्द्र वर्मा : सेतुबंध पृ. 3) यथार्थ में वह दासी है, उसका लक्ष्य है। देवी बनना उसके सामने कर्तव्य का हृदय से ऊँचा स्थान है। कवि गृहस्था की पृथ्वीतल का सबसे ऊँचा स्पृत मानो, नारी सब कुछ सहकर भी मन मारती रहती है, आँसू पी-पीकर धन्य है। वह कुल वाला जो अपने अंशु सलिल से कुल के समस्त कलंक को धो डालती है। वह यही मानती है।

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का यथार्थवादी मनोवैज्ञानिक प्रभाव – आधुनिक नाटककारों ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को मनोवैज्ञानिक रूप देकर स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया है। स्त्री-पुरुष के इस सम्बन्धों को सही मनोवैज्ञानिक आधार सेतुबंध, उर्वशी, साकंत आदि नाटकों ने बहुत गहरे रूप में दर्शित किया है।

सेतुबंध नाटक के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने नर-नारी सम्बन्धों पर एक नये कोण से पुनर्विचार किया है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का मूलाधार तथ्य है। रति या काम सुख इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं इसी सुख की चाह में

कितनी युवतियाँ हैं, जो व्याह से पहले ही कुमारी नहीं रहती¹⁹ कितनी निरोधक औषधि²⁰ के बल पर इस अनुभव की आवृत्ति कर रही है। और कितनी अन्याय बहानों से आपत्तियों से जुड़ी है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि, तीन अंको में लिखित सुरेन्द्र वर्मा रंग-नाटक—“सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक” ‘रति और मनोवैज्ञानिक शब्दावली में काम का अन्तरंग चित्रण करने वाला ऐसा रसात्मक नाटक है। जिसकी अंगी रस शृंगार है। व्यक्ति के मन का अन्तर्द्वन्द्व उसकी मानसिक ग्लानि उद्विग्नता, विह्वलता, विवशता, चिन्ता, दैन्य आदि का चित्रण हुआ है। प्रतोष और शीलवती के संयोग का यह दृश्य, किस दर्शक-पाठक को शृंगार से निमज्जित न कर देगा। ऐसे दृश्य से नाटककार ने स्त्री पुरुष के मन स्थिति का स्वाभाविक वर्णन किया है।

आधुनिक नाट्य शास्त्रों में मनोवैज्ञानिक आयाम : वर्तमान में नाट्य शास्त्र मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों व मानव की अन्तःस्थिति को समझाने में सार्थक है। नाटककारों ने हर नाटक में अनेकों पात्रों के माध्यम से इस विषय को स्पष्ट ,और अस्पष्ट रूपों द्वारा दर्शकों के समक्ष रख कर उसका प्रभाव उनके बुद्धि और मन दोनों प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपों में डाला है। विष्णु प्रभाकर जी का नाटक टूटते परिवेश – मनोवैज्ञानिक की सभी विशेषताओं से भरपूर है। पुरानी और नई पीढ़ी के बदले ,मनोरूपों को दर्शाने में समर्थ नाट्य रचना होने में सफल है। एक मर्यादित और परंपरा प्रमाणित जीवन में वे उन्हें देखने का स्वप्न लेते हैं। परंतु इस कामना में दुराग्रह और भय दोनों हैं। विश्वजीत , अतीत सापेक्ष वर्तमान में प्रासंगिकता ढूँढ़ता है और उसके पास संपूर्ण अस्वीकार का तेवर है, वह वयस्क होते ही अलगाव में आ जाती है।

प्रस्तुत नाटक के माध्यम नाटककार ने ,आज की पीढ़ी के उमड़ते बदलाव का वर्णन पात्रों के माध्यम से इस प्रकार किया है। दीप्ति अवयस्क है और विद्रोह की प्रक्रिया में है। वह सिगरेट पीती है और पीढ़ी के चरित्र को ओढ़कर हिप्पीनुमा बन चुकी है। पूर्व पीढ़ी के आचरण के लिये उसके पास एक ही घृणात्मक अभिव्यक्ति है – “बुर्जुआ” शब्द की। एक और वयस्क हो रही उग्र मनीषा है, जो जड़बंधनों व्यवस्थाओं को विनिष्ट करने का संकल्प है और परिवेश की घुटन सीलन को विध्वस्त करने का विनियोग है।

दीप्ति में मुक्ताचरण की उत्कृष्टलता है जो जिस्म की भूख से जुड़ी

है; परंतु विवेक का आक्रोश, बेकारी और दुर्व्यवस्था की प्रतिक्रिया का है। वह लगातार बेकारी में अपना मूल्य खोजता है। वह परंपरागत तथा प्रतिष्ठित मूल्यों को चुनौती देता है। चरित्र उसके लिये अर्थहीन पैपर है जो उस पर बोझ है। नैतिकता एक सिक्का है और परिवेश की घुटन एक निरंतर यातना शिविर है।

इस नाटक के पात्रों की मनःस्थिति पूर्ण रूप से प्रकट होती है। समकालीन—अस्वीकार क्रान्तिचेतना परिवर्तन में अपरिवर्तित स्थिति स्त्री, कोई हो अंतर नहीं पड़ता। प्यार तो होता ही रहता है। स्त्री के लिये पति अनिवार्य नहीं। बिस्तर का एक साथी अनिवार्य है। बिस्तर तो एक ही रहता है। आधुनिक युग के नाटककार मोहन राकेश के नाटकों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण स्पष्ट होता है। “आधे अधूर” इसी मनसिकता का नाटक है। महेन्द्र का द्वंद्व बाहरी व्यक्ति का है। घर में और स्वयं ही अनुभव करता है। कि वह एक नकारा रबड़ मोहर बन गया है। परन्तु एक और अनुभव उसके हाथ लगता है। वह रबड़ की मोहर नहीं प्रत्युत एक बेकार रबड़ का टुकड़ा मात्र है।

तीन अपाहिज— प्रस्तुत नाटक के तीनों अपाहिज, समकालीन मानसिक पक्षपात को ढोते हैं। उनकी विसंगतियाँ अनेक स्तरों पर प्रासंगिक विसंगतियों की धुंधली पहचान भी देती है।²¹

रेल कब आएगी : हमारे प्लेटफार्म पर— प्रस्तुत नाटक देश की पिछले तीन दशकों की यथस्थिति का एक जायजा है। आज की स्थिति का वर्णन गाड़ी में यात्रा और प्लेटफार्म पर गाड़ी की प्रतीक्षा—दोनों स्थितियाँ एक समान हो गई हैं क्योंकि स्टेशन के नाम और नगर का मानसिक संबंध टूट चुका है।²²

तिलचट्टा प्रस्तुत नाटक में देव सामान्यजन की आंतरिक मानसिकता है। केशी जो नपुंसक पति से विश्वघात कर एक काले आदमी से गर्भ धारण करती है वह तिलचट्टे की। पति के युद्ध समय ने केवल तिलचट्टे का विजयगान ही गाती है।²³ देव ऐसे आतंकवादियों को सीलन गंदगी की खतरनाक उपज कहता है। केशी को यह स्वीकार नहीं है वह तुरंत उसके समर्थन में उतरती है।²⁴

अमृत पुत्र — दीर्घ यथास्थिति का पहाड़ प्रस्तुत नाटक का, पात्र एक अवकाश प्राप्त व्यक्ति है। उनकी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने का तात्पर्य है मन के अन्दर की पीढ़ी को साकार रूप देना। डा. गोयल खाली समय में

तिल-तिल मृत्यु पा रहे है। यही स्थिति मि. खुराना की है। वे अपने निरंतर क्षरण के अहसास से जुड़े है। प्रत्येक साँस उन्हें मौत के निकट धकेलती है। मि. जज की भी यही यातना है।²⁵

चिदियों की एक झालर - दो पीढ़ियाँ किस संवादहीनता की मानसिकता से घिरी है वह हम इस नाट्य रचना के माध्यम से सही ढंगों से पहचान सकते है। दीपा का अहसास और भी भयंकर है। वह स्वयं को सीली माचिस मानती है। उसे एक दीमक चाटने लगती है। एक ताबूत में बंद लाश से वह अपनी शिनाखत जोड़ने लगती है। उसे बड़ी तीव्रता से लगता है। कि सब मर गए है, अपनी -अपनी कब्र में लेटे है।²⁶

धूप का एक टुकड़ा - एक ऐसी मूलवैज्ञानिक मूल प्रवृत्ति एकाकीपन को दर्शाने में समर्थ नाटक हमारे संबंधों में कोहरा जम रहा है। प्रस्तुत रचना की नायिका के भीतर भी एक रात हिमपात हो गया अलगाव, अकेलेपन की आदी न हो सकने पर वह दिनोदिन और भी सूनी, अकेली टंडी होती जा रही है। स्वयं को भरने के लिए वह पार्क में आती है। एक-एक बेंच पर बैठकर धूप के गर्म टुकड़े पकड़ती है।²⁷

पहला आदमी : तीसरे आदमी की भूमिका में- इस नाटक का व्यक्ति विधिवत परिणति हुआ, एक छत के नीचे घर में है। ऐसे पहले आदमी दो है, प्रस्तुत नाटक में जो तीसरे आदमी की भूमिका में निर्यातित होते है। पात्रों की आंतरिक घुटन मानसिकता को नाटककार ने बड़े स्वाभाविक रूप से उज. गार किया है। शोभा को सीढ़ी बनना। शोभा अर्जित के संशयों से बुरी तरह आंदोलित और प्रताड़ित होती हैं। अपने ही घर में उसे निरन्तर दंश मिलते है। पति से परिजनों से मोना भी स्वयं में व्यर्थता अनुभव करती है।²⁸ टूटे घरों से निष्काषित होने पर भी बाहर कोई ठोस जुड़ाव सम्भव नहीं। पड़ी हुई दरारें बाहर की रेत से नहीं भर पाती है।²⁹ इस नाटक के माध्यम से नाटककार आज के बदलते परिवेश में ऐसे संबोधन से, कि अपने घर और परिवार को संभालों तीसरे चेहरे को मन में नहीं झांकने का संदेश देकर, नाटक को आधुनिक स्थिति व बदलाव में खरा उतारने में समर्थ है।

दीवार की वापसी - यांत्रिक जीवन की व्यस्तताओं ने हमारा एंकात हरण किया है। पात्रों की मनःस्थिति को नाटककार ने इसी अनुभव से आंदोलित है। उसे अपने घर में गली सड़क और चौराहे का , एक पूरी भीड़ से घुस आने

का भय ग्रसने लगता है।³⁰ बीबी अनुभव के धरातल से नीचे है। पति उसे घर लेकर आता है और एकांत में स्वयं को पाने का प्रयत्न करता है इसी मनोवैज्ञानिकता को समेट हुए है।

अंधेरे का बेटा— प्रस्तुत नाटक में पात्रों की मानसिकता विविध स्तरों पर सामने आती है। माँ ने पति को युद्ध में खोया है। उसने वर्षों यह यातना लगातार भोगी है। पुत्र युद्ध में हैं यही वेदना नाटक में यातना भले ही दी बहुत गहरा नहीं पायी है परन्तु वह एक ऐसा व्यापक परिदृश्य प्रस्तुत करती है जो यहाँ के सामान्यजन ने भोगना है क्योंकि हमारी सभी युद्धों में कोई न कोई भागीदारी अवश्य ही रही है।³¹

आधुनिक हिन्दी नाट्यकार व नाटक मनोवैज्ञानिक रूपों में पूर्ण खरे उतरते हैं। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों और उससे होने वाले संवेगों का उल्लेख, आधुनिक युग के महान मनोविश्लेषक फ्रायड ने मनोविश्लेषण के अन्तर्गत स्वप्न सिद्धान्त का प्रतिवादन किया है जिसमें चेतना—अचेतना मन की स्थितियों का अध्ययन आता है।

उपर्युक्त विवेचना से हम इस निष्कर्ष में पहुँचते हैं कि मनोविज्ञान साहित्य के साथ जुड़ी विधा है। कोई भी साहित्यकार साहित्य लिखने से पहले इस को ध्यान में रखकर ही अपने साहित्य की रचना करता है। अतः साहित्यकार का मनोविज्ञान से अटूट सम्बन्ध है। साहित्य की इसी विधा के अन्तर्गत नाटक व नाट्यकाव्य भी है। इसलिए यह कहना सार्थक है, कि नाटककार और मनोविज्ञान एक दूसरे से जुड़े हैं। पात्रों को यथार्थ के धरातल पर अविस्थित करने के लिये वे यत्र—तत्र मनोविज्ञान का आश्रय अवश्य लेते हैं। मनोवैज्ञानिक भावभूमि पर नाट्य रचनाओं के पात्रों की दुर्बलताएं व सबलताएं उभारी हैं। पात्र जीवित और स्वाभाविक प्रतीत होते हैं।

इसी आधार पर पात्र अपना प्रभाव दर्शकों में छोड़ जाते हैं। एक नाट्यकाव्य व नाटक तभी सार्थक कहलाता है जब वह अपने पात्र के चरित्र द्वारा दर्शकों के मनोस्थिति को पढ़कर, ऐसा प्रभाव डाले, दर्शकों को ऐसा प्रतीत हो कि वह पात्र कहीं ना कहीं उनके मनोभाव को नाट्य रचना द्वारा प्रस्तुत कर रहा है। आधुनिक नाट्य काव्य व नाटकों में मनोवैज्ञानिक भाव अनुभव पात्रों के चरित्र चित्रण के द्वारा सफल रूप में व्यक्त किये गये हैं।

सन्दर्भ :—

- 1 Psychology may be most satisfactorily defined as the science of human behaviour -Pillsbury
- 2 Psychology is concerned with observable human behaviour Educational Psychology -Gar-rison Kingdon & Medonald Page 3
- 3 Psychology is the science of behaviour and experience. {Essentials of Educational psychology} Skinner Page 6
- 4 'Psychology today concerns itself with the scientific investigation of behaviour' Introduction to Psychology Crow & Crow Page 6
- 5 काव्य मिमांसा – पृ० 5
- 6 साहित्यमानयोः शोभाशालितां प्रति काव्ये सो। अन्यूनानति रिकतत्व मनोहारिण्य – वस्थितिः वक्रोक्ति जीवन 1 – 17
- 7 हंस पत्रिका अप्रैल (1932) – पृ० 40
- 8 सरस्वती पत्रिका जून 1912 पूर्व स्मृति मैथिलीशरण गुप्त पृ० 296
- 9 instinct is an unlearned form of activity Psychology :Woodworth -page - 272
- 10 Inborn tendencies in man-(Psychology :c.w.Valentine - page 0-55
- 11 नरेश मेहता : संशय की एक रात – पृ० 32
- 12 दुष्यन्त कुमार : एक कंठ विषपायी – पृ० 103
- 13 सुरेन्द्र वर्मा सेतुबन्ध पृ० 29
- 14 सेतुबन्ध सुरेन्द्र वर्मा पृ० 17
- 15 भस्माकुंर नागार्जुन पृ० 55
- 16 भारत भूषण अग्रवाल; अग्निलीक पृ० 14
- 17 कौन समझेगा कि मेरी भावना आज तक कुमारी है ... मे माँ बनी हूँ लेकिन पत्नी नहीं। सुरेन्द्र वर्मा : सेतुबंध पृ. 3
- 18 जयशंकर प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी, तृतीय अंक
- 19 सूर्य को अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक पृ. 54
- 20 सूर्य को अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक पृ. 53
- 21 कुछ के लिए विपिन जाहिल है , कुछ के लिए साहित्येतर और कुछ के लिए। यू ही यू ही है ...(विपिन कुमार अग्रवाल : तीन अपाहिज (नवरंग में संकलित – डा. सत्यव्रत सिन्हा की भूमिका पृ. 20)
- 22 जैसे-जैसे मान लो एक दुनिया है। जिसमें स्थिति टेन्सन है , रेल है समय सारणी और मुसाफिर है। और मान लो कि टेन्सन के नाम में और शहर के नाम में कोई आपसी सम्बन्ध नहीं है। ... (विपिन कुमार अग्रवाल : रेल कब आएगी। तीन अपाहिज

में संकलित पृ.74)

- 23 आखिरी जीत उसी की होगी —नन्हा चमकीला चिकना सड़ा सलिन गंदगी और अंधेरे में रहने वाला मासूम कीड़ा आखिरी जीत उसी की होगी जब कोई विरोध बेकार है , सड़न से बाहर अर चुका है वह ...(तिलचट्टा, चंद बातें पृ. 61,62)
- 24 सड़न सलिन और गंदगी से खतरे के अलावा और क्या बाहर आएगा ? कोई नहीं रोक सकता अब उसको (तिलचट्टा पृ. 60)
- 25 यह रिटायरमेंट आदमी की भीतर ही भीतर मार भी देता है... मेरा हर क्षण मेरे साथ चिपका रहता है। हर लमह मुझ पर सवार रहता है। (डा. सत्यव्रत सिन्हा : अमृत पुत्र पृ. 17)
- 26 नहीं मुर्दे से भी बदतर , दमिक चटी ,जैसे तुम्हारी ये तरखीरे। (अमृतराय : चिदियों की एक हजार झालर पृ0 57)
- 27 किसी चीज का आदी न हो पाना। उससे बड़ा और कोई दुर्भाग्य नहीं वे लोग जो आखिर तक आदी नहीं हो पाते ... मेरी तरह धूप के एक टुकड़े की खोज में एक बेंच से दूसरे बेंच का चक्कर लगाते है। (निर्मल वर्मा : रूपा का एक टुकड़ा — तीन एंकात में संकलित पृ. 21)
- 28 लगता है जैसे जितना—ऊपर से बढ़ती जा रही हूँ भतिर से उतनी ही मेरी जड़े कटती जा रही है। मैं। अपनी धरती से उखरती जा रही हूँ। (मन्नू भंडारी : बना दीवारों के घर पृ. 52)
- 29 पर हाँ। जयंत को देखकर मन की स्थिरता और घूमने लगी है। खालीपन और अधिका गहरा गया है। (मन्नू भंडारी : बना दीवारों के घर पृ. 69)

ATISHAY KALIT

Vol. 4, Pt. B

Sr. 8, 2015

ISSN : 2277-419X

दृश्य कला विभाग

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,

रोहतक, (हरियाणा)

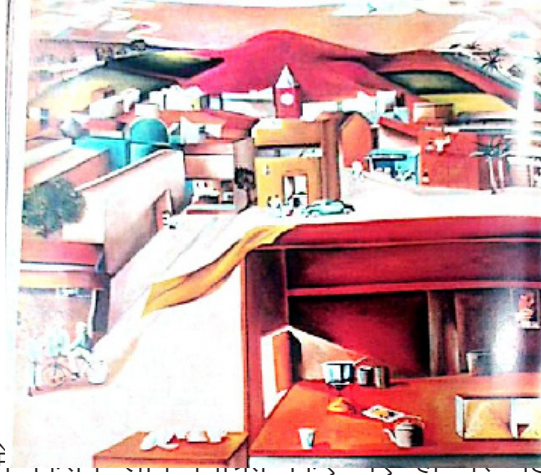
समय के द्वंद में फंसे लोग अक्सर छटपटाहट महसूस करते हैं। किन्तु निकलते वही है। जो उपचार करना जानते हैं। जीवन में यदि खुशी के मौके कम हो तो समय की परिवर्तनशीलता पर मुस्कुराया जा सकता है। ऐसे ही विचारों से जिन्दगी जीता एक कलाकार जो अपनी अलग पहचान बनाकर इस दुनिया से विदा ले गया। एक कलाकार, एक स्पष्ट इंसान भूपेन खक्खर।।

भूपेन का जन्म 10 मार्च 1934 को बम्बई के गुलालवाड़ी में हुआ⁽¹⁾। परिवार में विषम परिस्थितियों के बावजूद माता के स्नेह ने उन्हें सभांला। एक मार्गदर्शक के रूप में अपने जीवन के विभिन्न लोगों से उनका परिचय हुआ। जिनमें गुलाम मोहम्मद शेख, जे० स्वामीनाथन और शकराबाई का नाम प्रमुख है⁽²⁾। उन्होंने बड़ौदा से कला में M.A. की शिक्षा ग्रहण की। वही भूपेन जन-जीवन के चित्र सीधी-साधी शैली में अंकित करने लगे। भूपेन ने बाजार में बिकने वाली प्रतिभाओं, देवताओं की छपी हुई छवियों तथा कैलेण्डरों से कोलार्ज बनाना आरंभ कर दिया। अपनी कलाकृतियों में भूपेन ने पोस्ट-कार्ड, चार्ट, कैलेण्डर, लघु-चित्र, सिनेमा पेंटिंग तथा चाय की दुकानों में टंगे रहने वाले चित्रों आदि का प्रचुर उपयोग किया है⁽³⁾।

भूपेन ने पहले चित्रों में दैनिक जन-जीवन की घटनाओं का चित्रण किया। फिर निम्न मध्यवर्ग के जीवन का चित्रण करने लगे। 1970 के दशक में उनके चित्रों में वे भारतीय ग्रामीण सामान्य अथवा औसत जीवन का चित्रण करते हैं। जिसमें उस जीवन की त्रासदी और सौन्दर्य दोनों मौजूद हैं। बचपन में आर्थिक परिस्थितियाँ, अनचाही चार्टड एकाउटेंट की नौकरी और उससे मिलने वाले कई तरह के अनुभव उनके अंदर एक गहराई बुन रही थे। इस दशक के उनके चित्रों में मेरा ध्यान चाय की दुकान से दिखता दृश्य नामक चित्र पर केन्द्रित हुआ।

साधारण सा चाय की दुकान से दिखता नगर का एक दृश्य। जो दिखने

में जितना साधारण प्रतीत होता है। वास्तव में उसके मायने अधिक है। भूपेन के चित्रों में भारतीय मध्यवर्ग की गिरती स्थिति उसका नीरस जीवन प्रमुखता से चित्रित हुआ है। नगर का एक दृश्य, अपने-अपने कार्यों में व्यवस्थित लोग, दुकानें, मजदूर, साइकिल सवार, चर्च आदि दर्शाए गए हैं। चित्राकाश लोकप्रिय कैलेण्डर की तरह चित्रित किया गया है। तथा अनेक चीजों का अनुपात भी मनमाना है। यहां ध्यान चाय की उस दुकान पर केन्द्रित होता है। जो खाली है। “जहां स्टोव पर चाय रखी है।” साथ में चाय की केतली, खाली कप, दूध का मग, चीनी के तिकोने गोले, दूर खिड़की में एक व्यक्ति धुंधला सा अंकित है। यहां भूपेन शायद लोगों की व्यवस्था और उन छोटी-छोटी चीजों से उनकी दूरी को बयान करते हैं। चाय को स्टोव पर रखकर भी भूपेन उसमें उठे बुलबुलों और धुएं को चित्रित नहीं करते। वह घुटन की तरफ इशारा करते हैं। जो लोगों में भीतर भरी हुई है। पर दिखाई देने से डरती है। क्योंकि सुनने वालों की कमी है।



इस नगर में, चाय की दुकान खाली है। इस चित्र में भूपेन द्वारा लगाए गए रंगों से मैं बहुत प्रभावित हूँ। गहरे रंग, शाम का एक दृश्य, संतरी लाल, हरा, कहीं-कहीं नीले रंग का प्रयोग हुआ है। नारंगी रंग की सोच चित्र पर गहरा असर डालती है। भूपेन चित्रों में कई बार रंग बदल करते थे। परन्तु नीले रंग को उन्होंने अधिक प्राथमिकता दी है। अतंतः वह मानते थे कि रंग ही है जो पेंटिंग को अंतिम रूप देते हैं⁽⁴⁾। जिससे चित्रकला सफल बनती है।

भूपेन के चित्रों का यह द्वंद अनेक स्तरों पर चलता रहता है। वे कभी

लोगों के प्रति उदार भावनाएं रखत तो दूसरे ही क्षण उनके पाखंड के बारे में सोचकर उनके खिलाफ हो जाते⁽⁶⁾। उनके प्रारंभिक चित्रों में उनके जीवन का वक्तव्य दिखने को मिलता है। 1972 में बनी “जनता वॉच रिपेयर” उनकी उसी भावना से मिलती है। जिससे वह जीवन की सच्चाई को दिखाना चाहते थे। भूपेन इस चित्र में सघर्ष की बात करते हैं। छोटे रास्तों की नहीं। एक दुकान का दृश्य एक ऐसा कमरा जहां एक-एक हिस्से को जांचा व परखा जा रहा है। और जो बेहतर है। उसे चुन लिया जाएगा। कमरे में एक सीलिंग-फैन, एक सोफा, ट्यूब लाईट जिसकी तेज रोशनी से पूरे कमरे में जगमगाहट है। जो चीजों को स्पष्ट देखने में सहायक है। दिवारों पर कुछ घड़ियां लटकी हैं। यदि गौर करे तो सभी घड़ियों में आधा समय दर्शाया गया है। जैसे कलाकार यह बताना चाहता है। कि कुछ ही समय बचा है। कार्य पूर्ण करने का।

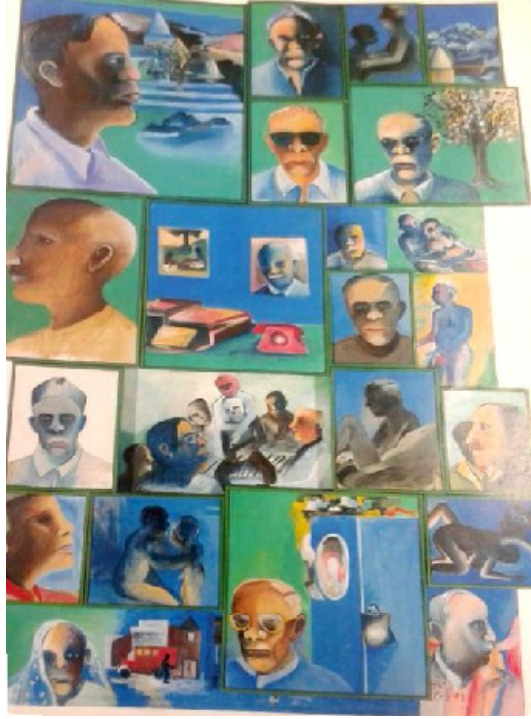
आधा वक्त निकल चुका है। कारीगर का सिगरेट पीना, उसकी चिंता व गंभीरता को दर्शाता है। ग्रे, नीले रंग की गहराई, व उदासीनता कमरे में छाई हुई है। यहां समय का एक और द्वंद दिखता है। कार्य को करने का कोई आधा रास्ता नहीं होता। वह उसी समय होना चाहिए जब वह किया जाए। इस चित्र से ज्यादा मैं इसके नाम से प्रभावित हुई। जनता वॉच रिपेयर।।



भूपेन के चित्रों में जीवन के प्रति उदासीनता अक्सर देखी गई। वह खुलकर जाहीर नहीं कर पाते थे। इसकी एक वजह उनका समलैंगिक होना भी था। जिसे वह लम्बे समय तक छुपाते रहे और जब जाहिर किया तो चित्रकला में एक नए विस्फोट के साथ दिखाई पड़ा। यह 80 का दशक था जब उनकी चित्रकला में व्यंग्य ने जगह ले ली। इस दौर का उनका चित्र "टू मैन इन बनारस" (1982) बहुत चर्चा में रहा। बनारस के घाट का एक दृश्य, रात्रि में निमग्न, खुले वातावरण, दूर तक फैला घाट जहां अग्रभाग और पिछले भाग में गंगा बहती दर्शायी गयी है। किनारों पर साधु, शरणार्थी का होना, पीपल के पेड़ के नीचे बैठे योगी, शिवलिंग को पूजते लोग जो कि धार्मिकता, आस्था को दर्शाता है। किन्तु चित्र के दाहिनी तरफ दो विवस्त्र पुरुष दर्शाए गए हैं। जिन्हें देखकर अचम्भा होता है। ऐसी धार्मिक स्थल पर ऐसे दृश्य का होना अस्वाभाविक प्रतीत होता है। वे दोनो पुरुष निवस्त्र अवस्था में एक दूसरे को बाहों में लेते हुए दिखाए है। जो सभोग की अवस्था में है। उनके लिंग को एक दूसरे के समीप दर्शाया गया है। एक पुरुष के बाल सफेद बनाए गए हैं। चेहरा छुपा होने पर भी यह स्वयं भूपेन के होने का अहसास होता है। वह अब अपनी समलैंगिकता को बताना चाहते थे। जिससे वह आम व्यक्तियों की तरह खुलकर और हक से जी सकें। यहां धार्मिकता का होना इंसान की बुनियाद को बनाना है। पर उसे बनाए रखने के लिए स्वयं को दबाना नहीं होता।



भूपेन का यह विस्फोट उनके चित्रों में निरन्तर जारी रहा जैसे वह अपने लैंगिकता को एक अडिाकार देना चाहते हो। भूपेन स्वयं को अक्सर मस्खरा, कहा करते थे। और उनका एक चित्र गैलरी ऑफ रॉग भी उनके इस मस्करे मिजाज का एक चित्र है। यह चित्र उनकी अतीत की यादों से जुड़े है। वह कहते है जिन लोगों के साथ अपने जीवन में मेरा रिश्ता रहा है। जो कि बहुत से लोग थे यह चित्र उनके लिए है⁽⁶⁾। इस चित्र को कई भागों में बाँटा गया है। छोटे-छोटे डब्बों में बने एक चश्म चेहरे, कहीं-कहीं पोर्ट्रेट भी दर्शाया गया है। एक भाग में भूपेन दोस्तो के साथ नजर आते है। तो दूसरे भाग में संभोग करते हुए जो काली स्याही में चित्रित है। कहीं मिलाप हो रहा है तो कहीं इच्छा नजर आ रही है। रंगों में भूपेन ने नीले व हरे रंग को प्रमुखता दी है। उनकी माता को भी एक भाग में चित्रित किया गया है। कमरे में मेज, टेलिफोन, दीवार पर पिता का फोटो यह उनके परिवार प्रेम को दर्शाता है। अनेक व्यक्ति चित्रित किये गये है। जिनमें शंकराभाई भी है। जो भूपेन की जीवन में सबसे अहम भूमिका रखते है। और जिनसे उनका आखिर तक प्रेम संबन्ध बना रहा। कई अन्य व्यक्ति भी हैं जिन्हे पहचाना नहीं गया पर जाहिर है उनका चित्र में होना भूपेन से सभीपता दर्शाता है भूपेन अपने जीवन को कपटी, बदमाश व मस्खरा मानते थे। और कहते थे मैं एक कलाकार हूँ। और एक कलाकार कभी एक शालीन व्यक्ति नहीं हो सकता⁽⁷⁾।



fu' d' lʒ

भूपेन खक्खर की कला में गहरे सवाल छुपे हैं। उनकी चित्रकला के प्रति

मेरी निजी सहानुभूति है। चित्रों का सुनापन अपनेपन की तलाश, उनके चित्रों को दूसरे से अलग दर्शाते हैं। दैनिक जन-जीवन की गतिविधियाँ निम्न मध्यम वर्ग की जरूरतें, और उन पर व्यंग्य करता हुआ उनका चित्रण एक सामाजिक व राजनीतिक टिप्पणी है। भूपेन के चित्रों में उनकी अपनी शैली के दर्शन होते हैं। उन्होंने किसी भी कलाकार का अनुसरण नहीं किया। वह अपनी कला को केवल एक नाम देना चाहते थे। और वह है। भूपेन खक्खर।

भूपेन अपने जीवन को जिस सरलता से जीकर चले गए उसी सरलता से उन्होंने अपने चित्रकला को बनाए रखा और हमें एक ऐसी कला से परिचय कराया जिसका कार्य केवल विचार करना नहीं, कदम उठाना भी है।

1 UnHZ xIFk 1 p10&

- 1) डॉ० जी के अग्रवाल, आधुनिक भारतीय चित्रकला, ललित कला प्रकाशन अलीगढ़, प्रथम संस्करण नवम्बर, पृ०स०-215
- 2) ID,,,,, ,,,,,, ,,,,,,
- 3) सम्पादक: कृष्णनारायण कक्कड़, समकालीन कला-संदर्भ तथा स्थिति, ललित कला अकादमी, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1980, पृ०स० 37
- 4) संपादक:- विनोद भारद्वाज, समकालीन कला, ललित कला अकादमी की पत्रिका, नवम्बर-1989, पृ०स०-26
- 5) ID,,,,, ,,,,,, ,,,,,, पृ०स०-24
- 6) Bhupen Khakhar- Timothy Hyman Chemould Publications and arts Mapin Publicatios, Jahangir art Gallary, Bombay, Page No. 46.
- 7) संपादक: विनोद भारद्वाज, समकालीन कला, ललित कला अकादेमी की पत्रिका नवम्बर-1989, पृ०स०-20

MWT; kfr 'leZ

व्याख्याता

(चित्रकला विभाग)

श्री सत्य साई पी.जी. महिला महाविद्यालय

ATISHAY KALIT

Vol. 4, Pt. B

Sr. 8, 2015

ISSN : 2277-419X

ukFk} kj k fi NokbZi sUVXI

वर्तमान संदर्भ में...

मेवाड स्कूल की प्रमुख शैलियों में नाथद्वारा का नाम जगत-विख्यात है। इस शैली का उद्भव और विकास नाथद्वारा में श्रीनाथ जी के स्वरूप की स्थापना (10 फरवरी, 1672 ई.) के बाद से माना जाता है।

नाथद्वारा बनास नदी के दक्षिणी किनारे पर उदयपुर से उत्तर दिशा की ओर लगभग 49 किलोमीटर दूर अरावली श्रृंखला घाटी के मध्य स्थित है।¹ नाथद्वारा में मुख्यतः कृष्ण लीला के चित्र अधिक बने हैं, उन पर कई पट एवं पिछवाईयाँ मिलती हैं।

श्री नाथ जी के स्वरूप के पीछे सज्जा के लिये बड़े आकार के जो पर्दे बनाये जाते हैं, उन्हें पिछवाई कहते हैं। नाथद्वारा शैली की मौलिक देन पि. छवाई है। पिछवाईया अधिकतर श्रीनाथ जी के उत्सवों तथा कृष्ण लीला सम्बन्धित किसी विषय को लेकर तैयार की जाती हैं आज भी राजस्थान की पिछवाई बनाने की कला के पीछे नाथद्वारा शैली की परम्परा प्रमुख है।

धर्मानुयायी या वैष्णव धर्म में विश्वास रखने वाले, भगवान के चित्रों को वस्त्रों पर बनवाकर धर्म प्रचार किया करते थे। राजस्थान में श्री नाथद्वारा वल्लभ संप्रदाय का गढ़ रहा है। नाथ द्वारा में धार्मिक पट चित्रों का निर्माण प्रचुर मात्रा में होने लगा। फलस्वरूप श्रीनाथ जी की छवि के चित्र, वैष्णव गुसाइयों के चित्र तथा कृष्ण लीला के चित्रों की मांग बढ़ने लगी। जिसने अन्य राज्यों के चित्रकारों को यहां आकर बसने के लिए प्रेरित किया। चित्रों के विषय वही मौलिक अर्थात् श्रीनाथ जी की छवि, गुसाइयों का दैनिक जीवन तथा उनको श्रीनाथ जी की पूजा करते हुए दिखाना और कृष्ण लीला ही रहे। 18 वीं शताब्दी में बने चित्रों में श्रीनाथ जी, यमुना स्नान हिंडौला (कृष्ण के बाल स्वरूप को झूले में दिखाना), जन्माष्टमी, अन्नकूट आदि उत्सवों के चित्र विषय विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ पट चित्रों को पिछवाई के नाम से सम्बोधित

त किया जाने लगा।

राजस्थान में अनेक यौगियों के मठ भी स्थापित थे । इन मठों में योग क्रियाओं को दिखाने हेतु भी यह चित्रण का कार्य हुआ । फलस्वरूप यह तथ्य भी पट चित्रों के निर्माण का कारण रहा है।

नाथद्वारा में सूती वस्त्रों पर छोटे बड़े आकार में पिछवाईयाँ अधिक मात्रा में चित्रित की गई । कई कलाकारों की जीविका इसी कार्य पर निर्भर करती थी । समाज में कई चित्रशालाएं विकसित हुई, जिसमें समाज का हर बच्चा अपने इन पट चित्रों के कार्य में कुशल एवं दक्ष होता था। आज भी नाथद्वारा में पट (पिछवाई) चित्रों को अधिक प्रधानता दी जाती है।

धीरे-धीरे नाथद्वारा शैली में कलात्मक उत्कर्ष होता रहा। तिलकायत श्री गोवर्धनजी के समय में यहाँ की चित्रकला का विकास चरम सीमा पर था। नाथद्वारा शैली के मूल पोषक वे हजारों यात्री तथा श्रीनाथ जी के भक्त रहे हैं, जो सज्जा हेतु चित्र खरीदते रहे हैं।²

नाथद्वारा शैली की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता पिछवाई चित्रण एवं भित्ति चित्रण परम्परा रही है। समय-समय पर सज्जा हेतु श्रीनाथ जी के स्वरूप के पीछे बड़ी-बड़ी कपड़े पर निर्मित पिछवाईयाँ लगाने की परम्परा के कारण पिछवाई कला अत्यधिक प्रसिद्ध हो गई। पिछवाई के माध्यम से बालकृष्ण का लीला-प्रसंग को जीवन्त कर लीला को आत्मसात किया जाता है। इस कला की यह विशेषता है कि उसके योग नहीं, परमानन्द की प्राप्ति का दर्शन निहित है। वैसे भी कला की पूर्णता ऐसे ही विचार में मानी गई है। शिव स्वरूप विभाषिणी में एक सूत्र है:-

विश्रान्तिर्यस्याः संभोगे का कला न कलामता।

लीयते परमानन्दे भ्यात्मा सा परा कला।।

अर्थात् जिसकी विश्रान्ति भोग मे है, वद्य कला नही है अपितु जिससे परमानन्द की प्राप्ति होती है, वही कला का निहितार्थ है। चित्र में शायद इसीलिए ईश्वरीय कला का दिग्दर्शन किया गया है। अपराजित पृच्छाकार भुवनदेव में भी माना है चित्र समस्त त्रैलोक्य और चराचर का मूल उद्भव है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सुर, असुर, नर और उरग हैं। इसी में स्थावट, जंगम, सूर्य, चन्द्रमा है। यह चित्र ही समस्त जीव प्राणियों की उत्पत्ति आधार है।³

पृष्ठि मार्ग में सेव्य स्वरूप के श्रृंगार दर्शनों के साथ-साथ तत्कालीन परिवेश को जीवन्त कर दिखाने के लिए पिछवाई के माध्यम से काम में लिया जाता है। पिछवाई की पूजा भी की जाती है। क्योंकि वह केवल पर्दे पर चित्रित लीला प्रसंग नहीं अपितु स्वयंमेव देवत्व का धारक हो जाता है, अचर में चर की कल्पना की साकार अभिव्यक्ति चित्रित पिछवाई में होती है।

इसी प्रकार चित्र स्वरूप में पूजा के लिए भी पिछवाई का प्रयोग किया जाता है। इस संप्रदाय की पेढियों अथवा हवेलियों में जहाँ पर सात, स्वरूप के अतिरिक्त कोई प्रतिमा छवि नहीं है, वहाँ पर पिछवाई की सेवा ही होती है उदयपुर, घसीयार आदि में श्रीनाथ जी का कोई स्वरूप नहीं है। किन्तु चित्र स्वरूप की सेवा सदियों से होती आई है।

इससे स्पष्ट होता है कि पृष्ठिमार्ग में पिछवाई का उपयोग दो प्रकार से होत है :-

1. परिवेश के निर्माण के लिए और
2. पूजन के लिए।

इन दोनों ही स्वरूप की लीलामय अभिव्यक्ति ही जीवन्त होती है। इनके दर्शनों का ध्येय व केवल नमन रंजन बल्कि आत्मरंजन है। इस रूप में यह कला अन्य कलाओं में वर्ण्य व पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) की सिद्धि कारक भी प्रतीत होती है और मंगल-मांगल्य की सृष्टि करता है जो कि विष्णु धर्मोत्तर पुराणकार को अपेक्षित है :-

कलानां प्रवटं चित्रं धमार्थ काम मोक्षकम्।

मांगल्य प्रथमं चेतक गृहे यत्र प्रतिष्ठितम्।⁴

नाथद्वारा में पिछवाईयां बनी। पुष्ठिमार्गीय मंदिरों में अवसरानुकूल चिन्तराम की पिछवाईयाँ स्वरूपों के पीछे धारण करवाते हैं। नाथद्वारा की चित्रांकित पिछवाई संग्रहालय में है जिसका केन्द्रीय भाग नहीं है किनारे-किनारे श्री नाथ जी के चित्र बने हैं। एक चित्र में पत्ते पर अंगूठा चूसते हुए दिखाया गया है जो कि मुकुन्द ध्यानमू के श्लोक का स्मरण कराता है :-

कराविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयनतम।

षटस्य पत्रस्य पुटेशयान बालं मुकुन्दं शिरसानमामि।⁵

राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित शाही सवारी नामक पिछवाई

6' x 5' के आकार में 18 वीं सदी में की एक महत्वपूर्ण कलाकृति है इसमें प्रासादों का बहुत ही उत्कृष्ट एवं मौलिक चित्रण हुआ है जो किसी अन्य शैली में देखना दुर्लभ है। इसी संग्रह में मुरलीधर नामक पिछवाई में कृष्ण का लयबद्ध अंकन विशेष आकर्षक है।⁶

श्री नाथ जी की धार्मिक, पिछवाईयों आदि के चित्रण हेतु इस केन्द्र में कई चित्रकार यहां पर बस गये हैं। ये चित्रकार वल्लभ सम्प्रदाय के कृष्ण भक्ति शाखा के अनुयायी हैं। जो श्री नाथ जी में विभिन्न उत्सवों एवं पर्वों पर छवियों एवं पिछवाईयों का चित्रण करते हैं।

fi NolkZ dk /kfeZl Lo: i %&

धर्म मूलतः उन मूल्यों का परिचायक है जो जीव मात्र के लिए सामान्य जीवन का बोध करवाने होते हैं। हर प्राणी और हर योनिक का अपना-अपना धर्म है, वे उसे अधर्म की संज्ञा दी है। इस अर्थ में धर्म बहुत गंभीर अर्थ वाला हो जाता है। सामान्यतया धर्म सदाचार का पर्याय माना जाता है। मनुष्य के लिए सदाचार उतना ही आवश्यक है जितनी की श्वास।

इसीलिए ऋषि प्रज्ञा से लेकर महापुरुषों ने भी जीवन की सफलता के लिए सदाचार को सभ्यता और संस्कृति के प्रधान मूल्य के रूप में विकसित किया है।

सदाचार की प्रवृत्ति के लिए देव आराधना को एक शीर्ष उपाय माना गया है। इसीलिए कहा गया है कि जिसका हार्दिक अनुराग जिस देवता के प्रति प्रकट हो, वह उसी का भजन, उपासना करें। इससे वह पाप रहित हो जाता है। स्कन्द पुराण का यही मत है :-

तस्माद्यस्य मनोरोगो यास्मिन् देवे भवेत् स्फुटम्।

त. भजेद्विपायः स्यान्ममेदं यत्रमुत्रयम्।।⁷

इस अर्थ में पिछवाई अपने आप में धार्मिकता की पुष्टि करने में हेतु है। परमात्मा की लीलाभिव्यक्ति के रूप में वह देवानुराग तो जागृत करती ही है, सदाचारण का मार्ग प्रशस्त करती हुई आस्था का राजमार्ग भी प्रगट करती हैं उसका स्वरूप इसी अर्थ में धार्मिक है कि नित्य सेवा से लेकर वार्षिक सेवा व्रत-नियम, उत्सव मनोरथ में पिछवाई की उपस्थिति और उसका प्रदर्शन लीला पुरुषोत्तम के प्रति अनुराग की अभिवृद्धि करता है और इसी नाते व्यक्ति को

असंगत वचन, झूठ, अप्रिय भाषण, निद-स्तुति से दूर भी करता है। प्रभु के प्रताप को आत्मा में धारण करते हुए शिष्टाचार का मार्गदर्शन करवाता है।

पिछवाई में जल-थल नभादि सहित सभी प्राणियों का चित्रण चर-अचर में ईश्वर के दर्शन की प्रेरणा देता है। महाभारत में स्कन्दपुराण में श्वेत दीप में नारद द्वारा नरनारायण के दर्शन का वर्णन आता है, इसमें यह संदर्भ भी है कि विष्णु ने चित्रार्या (प्रतिमा अथवा चित्र) में अपनी कला स्थापित की और उसी तीर्थ में निवास करने लगे। तब नारद ने विश्व पर अनुग्रह करने की इच्छा से उनके अर्चा-विग्रह की स्थापना की।⁸

इनमें शरद पूर्णिमा, दान लीला, रासलीला, अन्नकूट, गोपाष्टमी जल विहार सिंहासन आदि उल्लेखनीय है। इनमें श्री नाथ जी की आरती और नियमित मुद्राओं का अपना विशिष्ट ढंग है। मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, अत्यापन्न, भोग, संध्या और शयन की भाव-भंगिमाएँ बड़ी आकर्षक हैं इसमें अतिरिक्त नाथद्वारा में पिछवाई को वृहद चित्रों के रूप में पाते हैं।

fi NolkZ cukus dh fof/k &

¼½ iV Hfe cUku & ¼fi NolkZ½

राजस्थानी पट चित्रों हेतु सूती वस्त्रों को ही चयनित किया गया है। चित्र निर्माण प्रक्रिया से पहले सूती वस्त्र पर गेहूं के आटे को अथवा चावल को पकाकर उसके घोल का अस्तर किया जाता है। इस अस्तर से वस्त्र के छेद बन्द हो जाते हैं तथा अस्तर के सूखने के बाद इस वस्त्र को ऐगिट (अकीक) पत्थर के घोंटे से किसी संगमरमर पत्थर के समतल धरातल पर रखकर घोंटा जाता है, इसस वस्त्र में एक प्रकार की ओप (चमक) आ जाती है। अपभ्रंश शैली के पट चित्रण पेन्सिल के माध्यम से या फिर एक ही चित्र की पुनः अनुकृति करने हेतु चरबे के माध्यम से विषय सम्बन्धी विषयवस्तु का संयोजन की टिपाई की जाती है तथा इसको सही रूप देने हेतु ब्रश द्वारा किसी आरंग अथवा गेरू के रंग से अंकन किया जाता है।

¼½ iz ØRk o.kZ &

वस्त्र पर सची टिपाई हो जाने के बाद चित्रकार उसमें वर्णों को प्रयुक्त करना आरम्भ करता है। शुद्ध रंग या रंगों की विभिन्न रंगत तैयार कर वसली तल चित्रों की ही भांति एक ही रंगत को ब्रश के माध्यम से दो या तीन

बार सूखने पर क्रमशः लगाकर कर उसे सम बनाया जाता है। इस प्रक्रिया सं रंग सम होकर उनमें एक प्रकार की चमक आ जाती है व चित्र की खुलाई हेतु सूक्ष्म कार्य में ब्रश के माध्यम से रेखा को खींचने एवं छाया प्रकाश को दर्शाने में सुविधा समझी जाती है। राजस्थानी पट चित्रों में अधिकांशतः खनिज, वनस्पतिक एवं रसायनिक वर्णों को ही तैयार कर उन्हें मिट्टी के प्यालों में घोल कर रखता है। माध्यम हेतु गोंद आदि का प्रयोग किया जाता है। इन षट चित्रों में धातु वर्णों (स्वर्ण एवं रजत) को भी प्रयुक्त किया गया है।

¼ ½ [kykbZ &

वस्त्र चित्रों में वर्ण कार्य पूर्ण हो जाने के बाद चित्र की खुलाई कर उसे वास्तविक रूप दिया जाता है। वस्त्र चित्रों की खुलाई की तकनीकी भी वसली (कागज) चित्रों जैसी ही अपनाई गई है। चित्र में साया आदि लगाकर तथा अंत में वहीं स्वर्ण व रजत का प्रयोग कर चित्र में मोती माला व अलंकरण कर चित्र को अधिकतर काले रंग की रेखाओं से ही पूर्ण किया जाता है।

19 वीं 20 वीं में नाथद्वारा शैली में व्यापारिक बहुल चित्रण के कारण रंगों में बिखराव, रेखाओं में भद्देपन तथा फोटोग्राफी का प्रभाव आने लगा, जिससे यहां की कला पतनोन्मुख होती चली गयी, पर नाथद्वारा शैली की चित्रण-परम्परा आज भी प्रचलित है। श्री नाथ जी के स्वरूप और पिछवाईयों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण लगभग 35 कुटुम्बों के पुश्तैनी चित्रकार आज भी नाथद्वारा में चित्रांकन कर जीविकोपार्जन कर रहे हैं।

I UnHZ

1. राजस्थानी टेम्पल हैगिंग्स ऑफ दी कृष्ण कल्ट पृ. 23, रोवर्ट स्केलेटन।
2. राजस्थानी चित्रकला डॉ. जयसिंह नीरज।
3. अपराजित पृच्छा सूत्र, 224, 5-6।
4. विष्णुधर्मोत्तर, तृतीय खंड, 43-38।
5. राजस्थानी चित्रकला सुरेन्द्र सिंह चौहान पृ.सं. 63।
6. मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, डॉ. आर.के. विशिष्ट पृ.सं. 41।
7. स्कन्द पुराण माहेश्वर कुमारिका खंड 36, 14।
8. स्कन्द पुराण, माहेश्वर कुमारिका खंड, अध्याय 37।

अजय घांसिया
प्रवक्ता, चित्रकला
दिल्ली अधिनस्थ स्कूल,
दिल्ली

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

बाघ गुहा चित्रों का कलात्मक अध्ययन (416 से 466 ई.)

स्थिति : अजन्ता की चित्रकला परम्परा का निर्वाह बाघ की चित्रकला में सन्निहित है। अजन्ता की गुफा नम्बर 1 व 2 के ही समकालीन चित्तेरों का एक दल बाघ नामक स्थान पर मूर्ति और चित्रों की एक नई नगरी बसा रहा था। बाघ गुफाओं के चित्र बुद्ध जीवन व उनके दर्शन के घोटक है।

बाघ गुफायें मध्यप्रदेश के धार जिले में इन्दौर से लगभग 150 कि.मी. व अजन्ता से 400 कि.मी. दूर विंध्यश्रेणी के उस भाग में अवस्थित है, जहां आज घोर जंगल व भीलों की बस्ती है। निकट ही नर्मदा की सहायक नदी बाघिनी के किनारें 150 फीट की हरीतिमी विहीन चट्टान में यह खुदी है। बाघिनी नदी या दो-तीन मील की दूरी पर अवस्थित बाघ नामक गांव के पास होने के कारण इन गुफाओं का नाम बाघ पड़ गया। 1929 ई. में पुरातत्व विभाग ने इन गुफाओं की सफाई तथा जीर्णोद्धार करवाया। इसी समय पांडव गुफा से प्राप्त ताम्रपत्र से यह ज्ञात हुआ कि इन गुफाओं का नाम कलायन था।

खोज व प्रचार : 1818 ई. में बॉम्बे मिलेटी एस्टैबलिशमेन्ट के लेफ्टीनेन्ट डेंजर फील्ड ने इन गुफाओं का पता अजन्ता की खोज से कुछ समय पूर्व ही लगाया। और मुम्बई के साहित्यिक विनियम संघ के द्वितीय अंक में इस गुफा का संक्षिप्त विवरण छपवाया। इसके प्श्चात डॉ. इम्पे ने इस पर अपना शोधपूर्ण लेख मुम्बई के रायल एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका¹ में प्रकाशित करवाया। ओर 1907-08 में कर्नल सी.ई.लुआर्ड ने पुनः बाघ गुफाओं पर एक गवेषणात्मक निबन्ध लिखा और उपरोक्त पत्रिका में प्रकाशित करवाया। फर्गुसन और बर्गस ने इसका समय 50 ई. से 500 ई के बीच माना है।

काल निर्धारण – बाघ गुफाओं के निर्माण के विषय में यह अनुमान लगाया जाता है कि महाराजा सुबंधु के राज्यकाल में 416 ई. से 466 ई के

मध्य के समय यह बनकर तैयार हो गई थी। इसकी चित्रकारी का समय 620 ई. से 628 ई माना गया है। इन गुफाओं की सफाई के दौरान दूसरी गुफा में महाराजा सुबंधु का ताम्रपत्र मिला है जिससे इन गुफाओं के निर्माण काल का समय निश्चित हुआ।

विन्सेन्ट स्मिथ ने इन गुफाओं का समय छठीं शताब्दी के मध्य से सातवीं शताब्दी ई. तक माना है। कुछ वर्ष पूर्व एक खेत से 27 ताम्रपत्रों पर भूलुन्द प्रथम व द्वितीय शासक के नाम अंकित है। इतिहासकार आर.सी. मजूमदार के अनुसार ये दोनों राजा गुप्त शासकों के अधीन थे। अतः इस आधार पर इन गुफाओं को उत्तर गुप्तकालीन माना जा सकता है।

बाघ गुफाओं तक पहुंचने के लिये बाघिनी नदी को पार कर गुफाओं की सीढ़ियों तक पहुंचना कला मनिषियों के लिये दुष्कर कार्य था। फिर भी इसके पश्चात आरमीनियन चित्रकार श्री सारकिस कचडोरियरन ने भी बाघ के चित्रों की अनुकृतियां तैयार की। सन 1920 में चित्रकार मुकुल डे ने इन चित्रों की प्रतिलिपियां तथा स्केच तैयार किये थे। पुनः 1921 में असित कुमार हल्दर व नन्दलाल बसु ने भी इनकी प्रतिलिपियां तैयार की। अक्टूबर 1925 की बरलिंगटन पत्रिका में हल्दर ने बाघ पर एक लेख प्रकाशित किया। कुछ समय बाद बी.बी.जगताप, ए.वी.भौंसले, बी.ए.आप्टे, सुरेन्द्रनाथ काट, समरेन्द्रनाथ गुप्ता आदि कलाकारों के दल ने भी इन चित्रों की अनुपम प्रतिलिपियां तैयार की जो आज भी ग्वालियर दुर्ग के गूजरी महल की एक बारहदरी में सुरक्षित है। बाघ गुफाओं को राष्ट्रीय स्मारक घोषित कर दिया गया।

बाघ गुफाओं के नाम व संख्या : यहां पर नौ गुफायें और सभी विहार गुफायें हैं जिनकी लम्बाई 750 फुट है। लोक प्रचलित नामों में बाघ की पहली गुफा को गृह गुफा के नाम से जाना जाता है। दूसरी गुफा का नाम पंच पाण्डू, तीसरी गुफा का नाम हाथीखाना, चौथी गुफा का रंग महल, पांचवी का पाठशाला, छठी, सातवीं, आठवीं व नवीं गुफाओं का मार्ग अवरूद्ध होने से कोई नाम नहीं रखा जा सका।

गुफाओं का विवरण : पहली गुफा : इस गुफा को गृह गुफा कहते हैं। कमरे के समान बनी इस गुफा का क्षेत्रफल 23 ग 14 फीट लम्बा-चौड़ा है। इसमें चार स्तम्भ हैं। बाहरी बरामदा गिर चुका है जिस पर चित्र बने थे। वर्तमान में सभी चित्र नष्ट हो गये हैं। यह गुफा बौद्ध भिक्षुओं के निवास हेतु बनी लगती है।

दूसरी गुफा : यह गुफा गुसाईं अथवा पंच पाण्डू या पांडवों की गुफा के नाम से सम्बोधित की जाती है। यह गुफा अभी भी ठीक अवस्था में है। गुफा को देखने से लगता है कि यह गुफा किसी समय में पूर्ण रूप से चित्रित होगी। इसकी दीवारों पर मानवाकृतियों तथा छत पर बेलबूटों के आलेखन मिले हैं। यद्यपि धूये तथा चमगादड़ों के घोंसलों के कारण चित्र काफी धूमिल हो गये हैं। यह गुफा आकार में काफी बड़ी व काफी सुरक्षित अवस्था में है। यह एक वर्गाकार चैत्य गुफा है जिसके तीन ओर छोटी-छोटी कोठरियां काटकर बनाई गई हैं। बाहर की ओर एक स्तम्भ पर आधारित बरामदा है और पीछे एक स्तूप से वैष्टित चैत्य हॉल है। इसी गुफा में महाराजा सुबंधु का ताम्रपत्र भी मिला था जो ऐतिहासिकता एवं प्राचीनता की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है।

तीसरी गुफा : इसका स्थानीय नाम हाथीखाना है। गुफा की दीवारों पर बौद्ध पूजा एवं प्रतीकों का अंकन विद्यमान है। जिससे प्रतीत होता है कि यह गुफा चैत्य गुफा थी। यह सम्भवतः विशिष्ट अतिथियों के रहने के लिये बनी हो। गुफा का बाहरी बरामदा गिर चुका है। इस गुफा में दो हॉल हैं।

चौथी गुफा : रंग महल कहलाती है। बनावट में यह दूसरी गुफा के समान है। इसकी बरामदे की छत गिर चुकी है। इस गुफा का चैत्याकार गवाक्ष है तथा पद्मासीन बुद्ध प्रतिमा के बने होने से यह गुफा चैत्य हेतु ही प्रयोग होती होगी। किसी समय इसकी दीवार व छत सुन्दर चित्रों से सुसज्जित रही होगी। शायद इसी कारण इसे रंगमहल नाम दिया गया होगा।

पांचवीं गुफा : इस गुफा का नाम पाठशाला है। यह सम्भवतः भिक्षुओं के प्रवचन सुनने व बैठने के लिये बनाई गई थी। इसका क्षेत्रफल 95 ग 44 फीट लम्बा-चौड़ा है। इसके दोनों ओर स्तम्भों की पंक्ति विद्यमान है। चौथी तथा पांचवी गुफा के सम्मुख 220 फीट का एक बरामदा था जो अब गिर चुका है।

इसी क्रम में छठी गुफा में 46 फीट का एक वर्गाकार हॉल है जिसके साथ पांच कोठरियां भी काटी गई हैं। इस प्रकार इस क्रम में छठीं, सातवीं, आठवीं एवं नवीं गुफायें सम्भवतः भिक्षुओं के प्रवचन सुनने अथवा बैठने के लिये निर्मित थीं। ये गुफायें अब गिर चुकी हैं। चट्टानों एवं पत्थरों से इनके दरवाजे बन्द हो गये हैं इस कारण इनका विशेष विवरण अज्ञात है।

बाघ गुफाओं के चित्र : प्राप्त तथ्यों के आधार पर वर्तमान में केवल चौथी

एवं पाचवीं गुफा में ही कुछ चित्र शेष बचे हैं। इनके आधार पर ही यहां की चित्रकला परम्परा का ज्ञान प्राप्त होता है। प्रथम गुफा गृह गुफा के कोई चित्र प्राप्त नहीं है। द्वितीय गुफा पांडवों की गुफा किसी समय सम्पूर्ण चित्रित थी। गुफा की दीवारों पर मानवाकृतियों वाले संयोजन तथा छत पर बेल-बूटों के आलेखनों के कुछ स्फुट व बिखरे संदर्भ हैं। तृतीय गुफा हाथी खाने में भी चित्रों के अवशेष हैं। चौथी गुफा रंग महल के चित्र छठी शताब्दी में बने लगते हैं। इस गुफा के बाहर बरामदे में लगभग 45 फीट लम्बा और 6 फीट चौड़ा टुकड़ा शेष है जिस पर बाघ चित्रों की एक झलक के रूप में नयनाभिराम चित्र मिलते हैं। यह चित्रित टुकड़ा गुफा संख्या पांच के द्वार के समीप तक फैला है। इस टुकड़े में 6 चित्र हैं जो सुरक्षित अवस्था में हैं। दायें से बायें तरफ की ओर विविध दृश्यों का क्रमवार विवेचन प्रस्तुत है।

प्रथम दृश्य : वियोग का है। यहां दो स्त्रियों को एक मण्डप के नीचे बैठे दिखाया गया है। चित्रतल के मध्य एक स्त्री दाहिने हाथ द्वारा अपने सफेद आंचल से मुंह छिपायें रो रही है। उसके चेहरे पर अगाध पीड़ा का भाव स्पष्ट रूपेण विदित है और उसका बाया हाथ ऐसी मुद्रा में अंकित है मानो वे कुछ इशारा कर कोई बात बताना चाहती हो। दूसरी स्त्री इस शोकाकुल स्त्री को धीरज बंधा रही है और सहानुभूति से उसकी करुण कहानी सुन रही है। दोनों आकृतियां केवल कमर तक ही चित्रित हैं। छज्जे की छत पर दो नीले कबूतर चित्रित हैं जो किसी प्रणय प्रसंग का प्रतीक हैं। केश विन्यास व आभूषणों से युक्त स्त्री की छवि अभिजात्य परिवार की लगती है। चित्र में हस्तमुद्राओं एवं भावों का प्रस्तुतिकरण व रेखांकन काफी प्रभावशाली है।

द्वितीय दृश्य : में उद्यान जैसी पृष्ठभूमि में चार भद्र पुरुष सुखासन मुद्रा में नीली और पीली गद्दियों पर बैठे मंत्रणाकर रहे हैं। चारों पुरुषों ने धारीदार अधोवस्त्र पहन रखा है। गले तथा हाथों में आभूषण हैं। इनमें से बायी ओर की पुरुषाकृति के सिर पर मुकुट है जो किसी राजा या सम्प्रन्त व्यक्ति की प्रतीत होती है। लगता है राजा व मंत्रीगण किसी गम्भीर विषय पर विचार-विनिमय कर रहे हैं। पांचवा व्यक्ति बौना है। पुरुषों की हस्तमुद्राओं के सुन्दर संकेतों तथा नेत्रों की चितवन व रंगों के सुन्दर तालमेल से संयोजन में परिपक्वता स्पष्ट दर्शित होती है। पृष्ठभूमि में वृक्षादि का अंकन है जो उद्यान

होने का आभास देता है।

तृतीय दृश्य : चित्र में देवपुरुषों का आकाश में विचरण दर्शाया है। चित्र में छः व्यक्तियों को आकाश में उड़ते हुये दिखाया है। आकृतियों के दो दल हैं जो एक के उपर चित्रित हैं। इन आकृतियों को घुमावदार बादलों से निकलते दिखाया गया है। जिससे ये किसी नभचारी देवताओं की आकृति प्रतीत होती है। इनके उपर आकाश से पुष्प वर्षा हो रही है। सबसे आगे वाली आकृति धोती पहने हुये है तथा उसकी हस्त मुद्रा वरद-रूप में है। सम्भवतः ये कोई सिद्ध मुनि या धर्माचार्य जान पड़ते हैं।

चतुर्थ दृश्य : तृतीय चित्र दृश्य के नीचे दीवार में पांच गायिकाओं की आकृति है जिनका अब कमर तक का भाग शेष बचा है। बीच वाली स्त्री आकृति के हाथ में वीणा जैसा वाद्य यंत्र है। सभी स्त्रियों के केश जूड़े में बंधे हैं। कमर पर कसी चोली पहन रखी है। ये सभी आकृतियां सुन्दर एवं भावपूर्ण मुद्रा में बनाई गई हैं। इन आकृतियों में नीला रंग भरा गया है।

पांचवां दृश्य : यह चित्र नृत्यांगनाओं एवं वादिकाओं का है। यह दो समूह में है। प्रथम दृश्य में सात नृत्यांगनाएं एक आठवीं पुरुषाकृति के चारों ओर नृत्य में लीन हैं। पुरुष भी नृत्यरत मुद्रा में आकर्षक रूप से प्रदर्शित है। चित्र में प्रभाविता के सिद्धान्त का पालन किया है, वहीं पूरे संयोजन में तल-विभाजन को सूरजमुखी पुष्प के आधार पर संयोजित किया गया लगता है। पुरुषाकृति को पराग क्षेत्र में तथा स्त्रियां पुष्प पंखुड़ियों के समान फहराती दिखाई गई है। दूसरे के मध्य में दार्शनिक भाव-भंगिमा में खड़े व्यक्ति के चारों ओर स्थित छः वादिकायें उसके प्रभाव को द्विगुणित कर रही हैं।¹ नर्तक के बाल कन्धों पर लहरा रहे हैं। वह चुस्त कुर्ता तथा पतला पायजामा पहने है। छः गायिकाओं में से एक मृदंग, दो छोटे मंजीरे और शेष तीन डंडे बजा रही है। इनकी वेशभूषा पहले वाले दल के समान ही है। यहा भी प्रभाविता युक्त वर्तुलाकार संयोजन किया गया है।

छठा दृश्य : इस दृश्य में सत्रह घुड़सवरों का अंकन किया गया है। यह किसी राजा का जुलूस लगता है क्योंकि जुलूस में राजा व राज परिवार के लोगों तथा घोड़ों पर सिपाहियों को बैठे दिखाया गया है। घोड़ों को गतियुक्त मुद्रा में अंकित किया गया है। इनकी उन्नत ग्रीवाओं तथा अश्वारोहियों की

मुख-मुद्राओं से ऐसा प्रतीत होता है कि ये किसी विजयोल्लास में तल्लीन है।

सातवां दृश्य : यह हाथियों के जुलूस का दृश्य है। हाथियों को अजन्ता की तरह तिरछे रूप में प्रदर्शित किया गया है। चित्रकार ने हाथी के विशालकाय शरीर को रेखीय गति से सौन्दर्यवान बनाने का प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. पाण्डेय, सन्ध्या, गुप्तकालीन बौद्ध चित्रकला, दिल्ली
2. डॉ. प्रताप रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, जयपुर
3. रॉयल ऐशियाटिक सोसाइटी, खण्ड द्वितीय
4. द्विवेदी, डॉ. प्रेमशंकर, भारतीयचित्रकला के विविध आयाम, वाराणसी
5. अग्रवाल, आर.ए., कला विलास, मेरठ

दिनेश मीणा
प्रवक्ता, चित्रकला
केन्द्रीय विद्यालय, बेमेलनगर, के.जी.एफ.
कर्नाटका

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

कलासमूह – 1890, नई दिल्ली की समसामयिक पृष्ठभूमि : एक अध्ययन

भारत में स्वतंत्रता पश्चात् ललित कला अकादमियों की स्थापनोपरान्त क्षेत्रीयतावाद हावी होने लगा तथा कुछ कलाकार विदेश चले गये। इन दोनो स्थितियों के विरोध में 1962 ई. में दिल्ली व मुम्बई के कुछ कलाकारों की एक बैठक भावनगर में हुई जहाँ जे.स्वामीनाथन के सुझाव से ग्रुप 1890 की स्थापना हुई। इस ग्रुप की यह बैठक जे. पंड्या के मकान नं. 1890 पर हुई। मकान नं. पर ही ग्रुप का नामकरण कर दिया गया जिसे औपचारिक रूप से 1963 ई. में नई दिल्ली में स्वीकृति मिली। स्थापना के समय इस ग्रुप की कोई विचारधारा नहीं थी तथा सभी सदस्य पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर अपनी बात अपने ढंग से कला के माध्यम द्वारा अभिव्यक्त करना चाहते थे। सभी कलाकार पूर्णतः भिन्न शैलियों में कार्यरत थे। इसके 12 सदस्यों में – जेराम पटेल, राजेश मेहरा, जे. स्वामीनाथन, अम्बादास, गुलाम मोहम्मद शेख, एरिक बोवन, हिम्मत शाह, ज्योति भट्ट, एम.रेड्प्पा नायडू, राघव कनेरिया, एस.जी. निगम तथा बालकृष्ण पटले थे। इन सदस्यों की प्रथम व अन्तिम कला प्रदर्शनी 1963 में रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली में हुई तथा कुछ समय बाद यह ग्रुप समाप्त हो भी गया।

मद्रास तथा चोलामण्डल कला परिदृश्य (1966 ई.)

मद्रास के कलाकार प्रभाववाद के पश्चात अभिव्यंजनावाद से प्रभावित हुए। नित नवीन शैलियों का अन्वेषण करते हुए भावानात्मक स्तर पर पूर्ण उत्साह से कलाकार कला के सृजन में व्यस्त हो गये। इसी समय अमूर्तन की शैली का मूर्तिकला के क्षेत्र में प्रारम्भ हुआ जिसकी शुरुआत स्वयं पन्निकर ने की थी। प्रारम्भ में इस गतिविधि का विस्तार स्कूल ऑफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स तक ही सीमित रहा तथापित

कलाकारों ने पन्निकर के उद्देश्य को समझा और अचानक ही मद्रास, कला परिदृश्य में क्रियात्मक विस्फोट हुआ। कुछ कलाकारों के नाम अचानक प्रकाश में आने लगे यथा – सनथराजन, रामाराव, राजावेलु, हरिदासन, कुन्हीरामन, जानकीराम आदि। 1960 ई. तक कलाकार कला प्रदर्शनियों के माध्यम से जनता तक पहुँचने लगे। 1944 ई. में स्थापित “प्रोग्रेसिव पेंटर्स एसोसिएशन” तक 1946 ई. में स्थापित “साउथ इण्डियन सोसायटी ऑफ पेंटर्स” ने भी कलाकारों को समुदाय में बांधे रखा तथा मद्रास व देश के अन्य केन्द्रों में कला प्रदर्शनियाँ आयोजित की। प्रोग्रेसिव पेंटर्स एसोसिएशन ने भारतीय समकालीन कला की एक पत्रिका ‘आर्ट ट्रेन्ड्स’ का प्रारम्भ कर अपने उद्देश्यों तथा विचारों को जनता तक पहुँचाया। मद्रास कला परिदृश्य की यह क्रियात्मकता 1964 ई. तक चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुकी थी। जिसका आभास, 1960 ई. के मध्य 16 कलाकारों को राष्ट्रीय पुरस्कार मिलने से होता है। इनमें पन्निकर, सनथराजन, रेडप्पा नायडू, वासुदेव, अनिता जैकब, जानकीराम, राजावेलु, एन्थनीदास, विश्वनाथन, अनुस्वामी तथा नन्द गोपाल सम्मिलित थे। मद्रास में राज्य ललित कला अकादमी की स्थापना तथा केन्द्र सरकार द्वारा बुनकर सेवा केन्द्र की एक शाखा भी स्थापित हुई जिससे कलाकार समाज से अधिक जुड़ने लगे।

पन्निकर ने उक्त परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए कला विस्तार को हस्तशिल्प की ओर ले जाने का प्रयास किया तथा हस्तशिल्प संघ की स्थापना की जिसके माध्यम से विक्रय एवं वितरणद्वारा प्राप्त लाभ कलाकार सदस्यों को पहुँचाया तथा इटली में निर्यात की गयी बातिक (Batik) कलाकृतियों की आय से 1964 ई. में मद्रास से कुछ दूर महाबलिपुरम नवीन राजमार्ग पर 8.5 एकड़ भूमि क्रय की। धीरे-धीरे यह भूमि एक आबादी में बदलती गयी तथा 1966 ई. में पन्निकर ने यथावत ‘कलाकार ग्राम’ (Artista Village) की स्थापना की जिसे चोलामण्डल आर्टिस्ट्स विलेज (Cholamandal Artist Village) के नाम से जाना जाता है। यह कलाकारों का पहला ग्राम तथा देश का एक महत्वपूर्ण रचनात्मक केन्द्र है। यहाँ कलाकारों के योग्य स्टूडियो, एक स्थायी कला दीर्घा, एक धातु कार्य (Metal Work Shop) तथा बातिक (Workshop) कार्यशाला, अतिथि गृह, कलाकारों के कार्यालय, हैण्डिक्राफ्ट्स एसोसिएशन तथा कलाकार आवास उपलब्ध है। यह ग्राम युवा कलाकारों की आवश्यकता

के अनुरूप (सृजनात्मक कलाकार के रूप में कार्य करने के लिए पूर्णकालिक आवास की आवश्यकतानुरूप) निरन्तर विकसित होता गया। ये कलाकार अतिरिक्त समय में एनोपार्जन हेतु हैण्डिक्राफ्ट में सृजनात्मक कार्य भी करते हैं। पन्निकर ने मृत्युपर्यन्त अपने निकटवर्ती साथियों के साथ चोलामण्डल में ही कार्य किया। पन्निकर की मृत्योपरान्त मद्रास आन्दोलन के साथ भारतीय समकालीन कला को जो महत्वपूर्ण परिदृश्य मिला था वह यकायक धाराशायी होने लगा तथा प्रादेशिक शैली में बदलने लगा। किन्तु कुछ कलाकारों ने पन्निकर की तकनीक (तान्त्रिक तत्व, ज्योतिष रेखाचित्र, बीज गणित के आकार, लेखन-कला तथा अकारगत अमूर्तवाद) को आगे बढ़ाया।

यहाँ एक तथ्य महत्वपूर्ण है कि ऐसे स्वच्छन्दतावादी वातावरण में कलाकार की प्रतिभा तथा वैयक्तिक शैली का विकास होता है तब विविध निजी शैलियाँ परिलक्षित होती हैं। ऐसे में किसी एक केन्द्रिय बोध को लेकर कार्य नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त चेन्नई में देवीप्रसाद राय चौधरी (जहाँ से मद्रास आन्दोलन प्रारम्भ हुआ) के चारों ओर अवनीन्द्रनाथ जैसा कलाकारों का समुदाय तथा प्रभामण्डल भी नहीं था। मद्रास में बंगाल जैसा कला आन्दोलन नहीं था। राय चौधरी की स्वच्छन्द विचारधारा ने कला में रोमांस तो उत्पन्न किया किन्तु किसी प्रकार की विचारधारा नहीं बन पाई। पन्निकर ने एक कला धारा चलाने का अवश्य प्रयास किया जो उनके साथ ही धाराशायी हो गयी थी। यही कारण है कि मद्रास कला परिदृश्य एक आन्दोलन न होकर वैयक्तिक कला धाराओं को लेकर उपस्थित हुआ। यह प्रगतिशील दृष्टिकोण ही था।

वर्तमान में 20वीं शताब्दी के कलाकार समूहों की महत्ता नगण्य हो गयी है। तत्कालीन समय में भारत स्वतंत्र हुआ ही था। फलतः भारतीय कला की अस्मिता बचाते हुए, नवीनता को ग्रहण करते हुए तथा अन्तर्राष्ट्रीय समकालीन कला के साथ चलने के लिए कलाकारों को एक समुदायिक भावना तथा मंच की आवश्यकता थी। आज कलाकार निजी शैली के विकास के साथ स्वयं की पृथक पहचान व अस्तित्व बनाने में व्यस्त हैं। हाँ, उसे सृजन करने के लिए आज के मशीनी युग में एक स्थान की आवश्यकता अवश्य है और इसी कारण वह किसी संस्था या गुप से जुड़ना चाहता है। आज ऐसे अनेक केन्द्र, संस्थाएँ तथा गुप हैं जिनके अपने भवन हैं, स्टूडियो हैं जो

कलाकारों को स्थान उपलब्ध कराते हैं। इनमें चोलामण्डल ग्राम, चेन्नई; भारत कला भवन, भोपाल; जवाहर कला केन्द्र, जयपुर; बिड़ला अकादमी ऑफ फाईन आर्ट्स, कोलकाता, टखमण-28, उदयपुर आदि प्रमुख हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. आधुनिक चित्रकला का इतिहास – र.पि. सांखलकर
2. भारत की समकालीन कला का परिप्रेक्ष्य – प्राणनाथ मागो
3. आधुनिक यूरोपीय चित्रकला, डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल
4. आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तम्भ, डॉ. प्रेमचन्द गोस्वामी



उदयपुर क्षेत्र के तीर्थ स्थल : एक अध्ययन

मेवाड़ राजस्थान के दक्षिण भाग में पंक्क; खंखत्र उंारी अक्षांश एवं ख्रपंक व ख्रभू- पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। मेव अथवा मेर जाति के चिरकाल तक इस क्षेत्र के निवास करने के कारण इसे 'मेवाड़' या 'मेदपाट' कहा जाता है। यह दोनों शब्द क्वीं शताब्दी से प्रचलित रहे हैं। अरावली पर्वत शृङ्खलाओं के मध्य स्थित मेवाड़ भूखण्ड जो सन् क-भ्र में राजस्थान प्रदेश में विलय हुआ, आज उदयपुर, चिणौड़, भीलवाड़ा जिलों में वर्गीकृत है।'

उदयपुर जिले का नाम उदयपुर नगर पर पड़ा। जिसका निर्माण कभ- में राजा उदयसिंह ने करवाया। राज्य के दक्षिणांचल में स्थित उदयपुर जिले का विस्तार ख'ब' से ख'ख' उंारी अक्षांश व ख्रफ'' से ख्रब'पभ' पूर्वी देशान्तर के मध्य है। इसकी सीमाएँ उंार में अजमेर, पाली, राजसमन्द, दक्षिण में डूँगरपुर, बांसवाड़ा, पूर्व में भीलवाड़ा, चिणौड़गढ़ पश्चिम में पाली, सिरौही जिले हैं।

क. श्री एकलिंगजी - मेवाड़ की परम पुण्यमयी धरा पर विद्यमान प्रसिद्ध चार धामों में से एक एकलिंगजी प्रमुख शैव तीर्थ है। यह उदयपुर से ख्र कि.मी. दूर अवस्थित है। इतिहास प्रसिद्ध वीर शिरोमणी मेवाड़ के महाराणाओं के आराध्यदेव भगवान एकलिंग है। मेवाड़ के शासक स्वयं को राजा न मानकर दीवान मानते हैं। उनकी मान्यता रही है कि मेवाड़ का राज्य भगवान् एकलिंग का है। अतः यहाँ के राजाओं के पदवी महाराणा है। पर परा के अनुसार महाराणा बड़े-बड़े उत्सवों पर अपने इष्टदेव के दर्शनार्थ पधारते हैं और स्वयं भी कभी-कभी पूजा करते हैं। अपनी कुल पर परा के अनुसार ज्यों ही महाराणा मन्दिर के प्रवेश द्वार पर पहुँचते हैं, सोने की छड़ी धारण कर लेते हैं। कभी-कभी ग्रीष्म ऋतु में चाँदी

के घड़े में पास की बावड़ी से पानी भरकर जलहरी में उड़ेलते हैं। इस प्रकार जब से मेवाड़ का इतिहास प्रारंभ होता है तब से ही भगवान् एकलिंग यहाँ के आराध्यदेव माने जाते हैं। यहाँ के राज्य के संस्थापक बप्पा रावल थे, जिन्होंने कठ वर्ष पूर्व मेवाड़ राज्य की स्थापना की थी।

जनश्रुति के आधार पर सर्वप्रथम मन्दिर का निर्माण 'बप्पा रावल' ने करवाया। उनका राज्यकाल विक्रम संवत् १-व से त्व तदनुसार ईस्वी सन् १-व से १-व तक निर्विवाद है। अतः यही समय एकलिंग की पुनर्प्रतिष्ठा का माना गया है। बप्पा रावल की एकलिंग के प्रति भावित का परिचय अनेक सिद्धियों, रसिया छतरी चिह्नौड़ (संवत् १-व), एकलिंग द्वार प्रशस्ति (वि.सं. १-व), राजप्रशस्ति (१-व) से मिलता है। अपने अन्तिम दिनों तक वे अपने इष्ट देव की सेवा में लगे रहे।

स पूर्ण कैलाशपुरी ही मन्दिर का गाँव है। यहाँ अनेक मन्दिर कुण्ड हैं। भगवान् एकलिंग नाथ का वर्तमान मन्दिर १ फीट के करीब ऊँचा है। मन्दिर का व्यास १ फीट है, इसका सुन्दर, सुदृढ़ तथा श्वेत पाषाण का बना शिखरबन्द दूर से ही दृष्टि को आकृष्ट कर लेता है।

प्रारंभ में यहाँ केवल शिवलिंग था। वर्तमान स्वरूप में इसका निर्माण महाराणा रायमल द्वारा करवाया गया है। श्यामपाषाण निर्मित भगवान् एकलिंग की मूर्ति चतुर्मुखी है, इनका पश्चिम मुख ब्रह्मा का, उत्तर मुख विष्णु का, पूर्व मुख सूर्य का, दक्षिण मुख रुद्र का मानकर पूजन किया जाता है। इन चारों मुखों के बीच शिवलिंग है। चारों मुखों की ओर चार द्वार बने हुए हैं। पूर्वीय द्वार की ओर पार्वतीजी की प्रतिमा, समीप ताक में गणपतिजी, उसी के सामने दक्षिण द्वार पर गंगाजी की मूर्ति व समीप कार्तिकेयजी की मूर्ति है। भगवान् शिव का स पूर्ण परिवार इस मन्दिर में विद्यमान है।

मन्दिर के भीतर प्रकाश आने के लिए पूर्वी द्वार के बाहर दीवारों में पत्थर की जालियाँ बनी हुई हैं, जिसके नीचे यमुनाजी तथा सरस्वतीजी की मूर्तियाँ प्रस्थापित की हुई हैं। किवाड़ों पर ही एक ओर स्वामी कीर्तिकेयजी तथा दूसरी ओर गणपतिजी चंवर हाथ में लिये हुए हैं जो उनकी पितृभक्ति के रूप को प्रकट करती हैं। मण्डप के बीच में चाँदी की नन्दी बनी हुई है।

मन्दिर के आगे-पीछे अ बाजी, गणपति, कालिका, नाथों का मन्दिर है। कुलगुरुओं के समाधि स्थल, गिरधर गोपाल का मन्दिर, करमरियाजी का मन्दिर है। मु य मन्दिर के पास स्थित महँवपूर्ण स्थलों का भी धार्मिक दृष्टि से अतीव महँव है। इनमें मु य मन्दिर के पीछे की ओर 'तुलसी कुण्ड' व 'करज कुण्ड' के नाम से दो कुण्ड हैं। इनमें वर्ष भर जल रहता है। करज कुण्ड को पार्वती कुण्ड के नाम से भी पुकारा जाता है।

ख. परशुराम महादेव - चारभुजाजी से लगभग दस मील, उदयपुर से लगभग पचास मील पश्चिमोत्तर व मारवाड़-मेवाड़ की सीमा पर पाली से लगभग एक सौ दस कि.मी. दूर अरावली की छोटी-छोटी किन्तु बीहड़ सघन शृंखलाओं के मध्य तीन हजार नौ सौ फीट की ऊँचाई पर कु भलगढ़ का अजेय अभेद्य दुर्ग है। इसी कु भलगढ़ से कुछ आगे सघन वन से आच्छादित पर्वत शृंखलाओं के मध्य प्राकृतिक रूप से निर्मित एक सकरी सी कंदरा में स्थित है 'परशुराम महादेव का प्राचीन मन्दिर'।

पौराणिक मान्यता के अनुसार हैहयवंशीय क्षत्रियों के विनाश के पश्चात् शिव आराधना के लिए परशुराम यहाँ आए थे। अपने परशु के प्रहार से शैलशिखर को काटकर उन्होंने कन्दरा का निर्माण कर प्रस्तर रूप में उभरे 'स्वयंभू-शिवलिंग' के समक्ष बैठकर तपस्या की।

भौगोलिक दृष्टि से इस क्षेत्र में भी परशुराम के इस स्थल से जुड़े होने के कई साक्ष्य मौजूद हैं। 'महर्षि जगदग्नि की तपोभूमि', जहाँ परशुराम का जन्म हुआ, यहाँ से मात्र क कि.मी. दूर है। 'मातृकुण्डिया', जहाँ परशुराम ने मातृवध का पाप धोया था, यह स्थल यहाँ से कुछ ही माल की दूरी पर स्थित है।

फ. गंगोद्भव कुण्ड - दशमी शताब्दी तक आहाड़ तीर्थस्थल के रूप में लोकमान्य हो गया था। यहाँ कई मन्दिर, स्मारक और कुण्ड आदि बने। इस क्षेत्र के सुप्रसिद्ध तीर्थों के रूप में गंगोद्भव अग्रगण्य है। लोक में गंगुभेक अथवा 'गंगोद्भेद' नाम से यह कुण्ड आज भी प्रसिद्ध है। यहाँ गंगा अपने आप प्रकट हुई इसी कारण इसे गंगोद्भव कुण्ड कहा जाता है। यह कुण्ड बहुत ही प्राचीन माना जाता है। गुहिल शासक भर्तृभट्ट द्वितीय के विक्रम संवत् क्व के लेख में भी

इसे तीर्थ स्थल माना गया है-

“गंगोद्भेद इति स्फुटं तदवने तीर्थं तटस्थ.....।”

आहाड़ के उक्त धराशायी मन्दिरों की क्षत-विक्षत प्रतिमाओं को कुण्ड की दीवार से लगाया गया है, इन प्रतिमाओं का अलंकरण, शारीरिक सौष्ठव, रूप विन्यास अनूठा है। लोगों की मान्यता है कि आहाड़ की ऐसी प्रतिमाएँ जो पूजान्तर्गत नहीं रही, इस कुण्ड की जलराशि में पधरा दी गई।

इस कुण्ड के दक्षिण में भी एक कुण्ड है, जहाँ पर शिवालय बना है। पश्चिम में पाँच लघु शिवालय हैं, जिनमें सभी जलहरी पर शिवलिंग हैं। एक में तपस्यारत पार्वती है। इस कुण्ड के ऊपर शिवालय है, जिसके समक्ष षोडश स्तंभों वाला सभामण्डप है। मध्य में करीब तीन फुट ऊँचा शिवलिंग है, जिसके केशसज्जा में गंगावतरण का शिल्पांकन स्तुत्य है। एक जलहरी पर पाँच-पाँच शिवलिंगों को मिलाकर निर्मित सात शिवलिंगों की योजना अनुपम है।

ब. इन्द्र सरोवर - बृहस्पति के कथनानुसार इन्द्र ने स्तुति कर विन्ध्यवासिनी को प्रसन्न किया। तप करते समय अपने बल से कुटिल गंगा की घाटी को खोदकर इन्द्र ने सुन्दर तालाब का निर्माण किया जो इनके नाम से इन्द्र सरोवर कहलाया। तत्पश्चात् तालाब का नाम 'इन्द्रसरोवर' रखकर स पूर्ण फल देने का गौरव भगवान् एकलिंग ने प्रदान किया। सरोवर के ऊपर श्वेत पाषाण के सुन्दर घाट बने हुए हैं।

भ. तक्षक कुण्ड - उदयपुर से एकलिंग के मार्ग में कैलाशपुरी की ओर पूरी घाटी अपनी रमणीयता, कुण्डों एवं मन्दिरों के लिए प्रसिद्ध है। इनमें एक प्राचीन कुण्ड है- 'तक्षक कुण्ड'। ऐसा कहा जाता है कि नागराज तक्षक ने जिस स्थल पर एकलिंग की आराधना की थी वहीं पर वह कुण्ड है इस कुण्ड के जलपान व स्नान करने वाले को सर्पदंश का भी भय नहीं रहता।

म. कुटिला नदी - एकलिंगजी के समीप कुटिला नदी बहती है इसमें मातृ-पितृ तर्पण करने से पितृगण तुष्ट होते हैं और जो फल गंगा-सागर संगम में स्नान का होता है वही फल इस नदी में स्नान से होता है।

न. विन्ध्यवासिनी - एकलिंगजी के समीप विन्ध्यवासिनी का प्राचीन मन्दिर है। अपने वचनानुसार देवी ने भी भगवान् एकलिंग के समीप पर्वत शृंखला पर

अपना निवास बनाया। यह देवी विन्ध्यवासिनी के नाम से वि यात है। एकलिंग-माहात् य में देवी ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि मैं वहीं विन्ध्यवासिनी के रूप में निवास करूँगी। यह चतुर्वर्ग फल प्रदाता है- पाश, अंकुश, धनुष, बाण एवं आभरण से सुशोभित है। देवी के स्वरूप के विषय में एकलिंग माहात् य में विवेचन किया गया है-

“स्थास्यामि भूतलोकस्य चतुर्वर्गफलप्रदा।

पाशांकुशधनुर्बाणासर्वाभरण भूषिता ॥

रत्नवस्त्रपरीधाना सदा शो (षो) दशवार्षिकी।

अपरां मूर्तिमास्थाय विन्ध्यवासेति विश्रुता ॥

सर्वकामप्रदा देवी कुटिला तीरवासिनी।

तथेत्युक्त्वा प्रण यैनां देवा जग्मुर्यथागताः ॥

सापि देवीमेदपाटे स्थानं चक्रेति सुंदरं।

शापस्थानुग्रहं कृत्वा प्रत्येकं सा दिवोकसः

विन्ध्यवासाभवद्देवी भूतमुत्तफलप्रदा ॥^१

विन्ध्यवासिनी के लिए प्रसिद्ध है कि देवताओं के राजा इन्द्र ने ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त करने के निमित्त पहले विन्ध्यावासिनी देवी की भी उपासना की थी। उसी से प्रसन्न होकर देवी ने उन्हें दर्शन दिये तथा भगवान् एकलिंग की उपासना करने का निर्देश दिया। समीप में ही भैरव का बाणमाता का लघु मन्दिर है तथा पहाड़ी पर हारीत गुफा है।

डॉ. सरला चौधरी
व्याख्याता – हिन्दी,
राजकीय महाविद्यालय,
कालाडोरा – जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

छायावाद काल में पर्यावरण चेतना

छायावाद का समय 1919 ई. से 1936 ई. माना गया है। दो महायुद्धों के बीच की स्वच्छन्दतावाद की कविता को सामान्यतः छायावाद के नाम से अभिहित किया जाता है। यह समझना गलत होगा कि प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर सन् 1918 में कविता की यह धारा सहसा फूट पड़ी और द्वितीय विषय युद्ध के आरम्भ पर अर्थात् 1939 में एकदम विलीन हो गई। छायावाद कविता की धारा सन् 1918 से पूर्व ही प्रवाहित होने लगी थी और 1939 के बाद भी बल्कि आज भी प्रवाहित हो रही है। दो महायुद्धों के बीच की कविता में तात्पर्य इस अवधि में छायावादी काव्यधारा प्रमुख रूप से रही है।

छायावाद क्या है? इस विषय में हिन्दी-साहित्य के विद्वानों ने इतना अधिक लिखा है कि कदाचित् एक साधारण पाठक विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं को पढ़कर असमंजस में पड़ जाता है। डॉ. रामकुमार वर्मा कहते हैं— “छायावाद वास्तव में हृदय की एक अनुभूति है वह भौतिक संसार की क्रोड में प्रवेश कर अनन्त जीवन के तत्व गृहण करता है और उसे हमारे वास्तविक जीवन से जोड़कर हृदय में जीवन के प्रति गहरी संवेदना और आशावाद प्रदान करता है। कवि को ज्ञात होता है कि संसार में परिव्याप्त एक महान दैवी सत्ता का प्रतिबिम्ब जीवन के प्रत्येक अंग पर पड़ रहा है और उसी की छाया में जीवन का पोषण हो रहा है। एक अनिर्वचनीय सत्ता कण-कण में समाई हुई है। फूलों में उसी की हंसी, लहरों में उसका बाहुबंधन, तारों में उसका संकेत, भ्रमरों में उसका गुंजार और मुख में उसकी सौम्य हंसी छिपी हुई है। इस संसार में उस दैवी सत्ता का दिग्दर्शन कराने के कारण ही इस प्रणाली की कविता को छायावाद की संज्ञा दी गई है।” आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छायावाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है—“छायावाद नाम उस आधुनिक कविताओं के लिए बिना विचारे ही दे दिया गया है, जिसमें —

(1) मानवतावादी दृष्टि की प्रधानता थी, (2) जो वक्तव्य विषय को कवि की व्यक्तिगत चिंता और अनुभूति के रंग में रंगकर अभिव्यक्त करती थी (3) जिनमें मानवीय आचारों, क्रियाओं, चेष्टाओं और विश्वासों के बदलते हुए अलंकार, मूल्यों को अंगीकार करने की प्रवृत्ति थी (4) जिसमें छन्द, रस, ताल, तुक आदि सभी विषयों में गतानुगतिकता से बचने का प्रयत्न था और जिनमें शास्त्रीय रूढ़ियों के प्रति कोई आस्था नहीं दिखाई थी।" डॉ. नगेन्द्र ने एक ओर तो छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह माना है और दूसरी ओर इसे जीवन के प्रति एक भावात्मक दृष्टिकोण कहा है। महादेवी जी का कहना है—“छायावाद तत्त्वतः प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीथ है। छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीनकाल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था जिनके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी।”

उपर्युक्त परिभाषाओं और दृष्टिकोण के आधार पर हम कह सकते हैं कि छायावाद एक दार्शनिक अनुभूति है, यह एक भावात्मक दृष्टिकोण है, यह प्रकृति में मानवीयकरण है, स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है, यह एक गीतिकाव्य है जिसमें प्रेम और सौन्दर्य का अंकन होता है, इसमें युगानुरूप सौन्दर्य की विवृत्ति होती है और यह बाद एक सांस्कृतिक चेतना का परिणाम है। इसमें आधुनिक औद्योगिकता से प्रेरित व्यक्तिवाद है, जिसमें चिंतन और अनुभूति का प्राधान्य है तथा इसमें मानवीय जीवन के नवमूल्यों का अंकन है। यह एक थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामंती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह है, इसका मूलाधार सर्वात्मवाद है।

हिन्दी की छायावादी काव्यधारा का उद्भव तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों में देखा जा सकता है। इन परिस्थितियों का अध्ययन इस कविता की धारा सम्यक् विश्लेषण के लिए आवश्यक है।

जहाँ तक काव्य प्रयोजन का सम्बन्ध है हमारे काव्य समीक्षकों ने उसके दो प्रयोजन बताये हैं, हमारे बाह्यान्तर और आभ्यान्तर की शुद्धि। वस्तुतः काव्य का रसास्वादनकर जहाँ परिवेश के कल्मष को हम धोने में सक्षम होते हैं वहीं काव्य हमारे अन्तर के मैल को यानि स्वार्थ, घृणा, द्वेष, क्रोध आदि को गलाकर मनः शुद्धि के महत्व कार्य में यत्नित होता है और भाव शुद्धि के रूप में सफलता का वरण करता है। काव्य की इस भावयुद्धि की प्रदोष्टता को आचार्य

रामचन्द्र शुक्ल ने 'कविता क्या है' निबन्ध में भली प्रकार समझाया है। निबन्ध के प्रारम्भ में वे कहते हैं—'कविता में मनुष्य भाव की रक्षा होती है। कविता की रचना हृदय की मुक्त अवस्था में ही संभव है यानि हृदय सांसारिक प्रवृत्तियों, सुख—दुःख, राग—द्वेष के संकुचित दायरे से मुक्त होकर अहम्—इदम् के भावों को भूलकर जब असीमित, अपरिमित सत्ता में आ जाता है तथा भावविह्वल होकर जब कोई रचना करता है तो वह काव्य होता है।'

आशय यह है कि काव्य रचना के लिए अनुभूति के उदात्त रूप में उपस्थिति आवश्यक है। साधारणीकरण की स्थिति से भी इन्कार करना हमारी भूल होगी। इस प्रकार जब सांसारिक राग द्वेष से उपर उठकर यदि हम अनुभूति को अभिव्यक्ति का चोला पहनायेंगे तो निश्चय ही उदात्त सृजना हमारे सामने आयेगी और उसी उदात्त अनुभव से अवतिरत अभिव्यक्ति काव्य अमिद्या धारण कर मनुष्य भाव की रक्षा करने में सक्षम होती है। "प्रायः कवि प्रकृति के संवेदन को अपने व्यक्तित्व के प्रसार में समाहित कर लेता है और अपने व्यक्तित्व के सामाजिक परिवेश की अनेक विषम परिस्थितियों के व्यंग्य को उसमें व्यंजित करता है।"³ न केवल बाहरी प्रवृत्ति की शुद्धता का प्रश्न है कवि की चेतना शुद्ध होना भी नितान्त आवश्यक है। इस तथ्य को डॉ. नरेन्द्र भानावत ने अपने एक आलेख में हमें परिचित कराया है—'काव्य जीव, जगत और ब्रह्म के एकात्म बोध और रागात्मक सम्बन्ध को अभिव्यक्ति देता है। यह अभिव्यक्ति तभी स्वस्थ, निर्मल और सर्वहितकारी सिद्ध होती है जब कवि की चेतना शुद्ध होती है।' इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्य की अपनी सार्थकता तभी है जब वह बाह्य शुद्धि के साथ—साथ आन्तरिक शुद्धि के महत् कार्य को सम्पन्न करता हुआ अपनी महत्ता व अस्तित्व को बनाये रखे।

हिन्दी का छायावादी काव्य स्थूल सौन्दर्य को ही महत्त्व नहीं देता बल्कि वह प्रकृति को एक चेतन सत्ता के रूप में स्वीकार करता है इस दृष्टि से प्रकृति की विविध वस्तुओं को छायावादी कवियों ने प्राणवान, स्पंदनशील और गतिमूला दृष्टि से देखा, परखा तथा काव्य में चित्रित किया है। इस प्रकार जहाँ छायावादी काव्य को हम प्रकृति काव्य की अभिधा देने में सकोच नहीं करते वहाँ हमें छायावादी काव्य को सचेतन काव्य कहने में भी संकोच नहीं होना चाहिए। पर्यावरण के प्रति सजगता इन कवियों की सहजवृत्ति में देखी जा सकती है।

भूमि चेतना — छायावादी काव्य की इसी चेतना के परिप्रेक्ष्य में विवेचना करते समय सर्वप्रथम जो तत्त्व कवियों के चिन्तन, मनन की पृष्ठभूमि बना वह भूमा अथवा भूमि है। इस धरा को एक सचेतन इकाई के रूप में छायावाद के प्रायः सभी कवियों ने चित्रित करते हुए सचेतन धरा सुषमा के माध्यम से मनुष्य को जहाँ कार्यरत रहने की प्रेरणा दी है, वहीं सहजशीलता और धीरता जैसे सद्गुणों के विकास की प्रेरणा देकर काव्य के आन्तरिक बुद्धि ध्येय को भी पूर्णता प्रदान की है। प्रकृति पुत्र सुमित्रानन्दन पंत 'ग्रामश्री' कविता की निम्न पंक्तियाँ देखिये—

“रोमांचित सी लगती वसुधा
आयी जो गेहूँ में बाली।
अरहर सनई की सोने की
किंकणियाँ है शोभावली।।”

हरित क्रांति होने पर 'ग्रामश्री' द्वि-गुणित हो जाती है। धरा के सचेतन रूपा चित्रों का बाहुल्य छायावाद की प्रमुख काव्य कृति 'कामायनी' में भी देखा जा सकता है—

“धीरे धीरे हिम आच्छादन हटने लगा धरातल से
जगी वनस्पतियाँ अलसाई, मुख धोती शीतल जल से।
नेत्र निमिलन करती मानो प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने
जलधि लहरियाँ की अंगडाई, बार बार जाती सोने।।”⁴

यह भूमि करुणा जैसी मानवीय गुणवत्ता से भी व्यक्ति का नाता जोड़ती है, यद्यपि प्राणियों की विपदा को सहना इसकी नियति है पर धरा के अन्तर में करुणा का सागर है। इस सच्चाई को कवि ने अनुभूत किया है—

“नीचे विपुला धरती है
दुःख भार वहन सी करती,
अपने सारे आँसू से
करुणा सागर को भरती।।”

'भूमि' अपने सचेतन रूप में किस प्रकार पर्यावरण शुद्ध करती है, उस

धरा के इस चेतन रूप की महत्ता के प्रति डॉ. नरेन्द्र भानावत के विचार बड़े ही महत्वपूर्ण हैं— “भूमि सदा से पवित्र मानी जाती रही है, धरती हमारी माँ है और हम इसके पुत्र हैं, वही हमारा लालन पालन करती है, वातावरण में व्याप्त विकार को नष्ट करती है। अपनी उर्वरा शक्ति से सबको पालती पोसती है, श्रान्त और कलान्त क्षणों में सबको विश्राम देती है।”⁵

वास्तव में धरती का यह सौन्दर्य कवि को भीतर तक सुवासित करता है, तभी तो उसका मन कभी-कभी हरियाली में अपने व्यक्तित्व को डुबोने की चाह पालता है तो कभी अपने अन्तर ताप को सोखकर बरबस सुनहले स्वप्नों में खो जाता है—

“हंसमुख हरियाली हिम आतप सुख से
अलसाये से सोये।
भीगी अधियाली में निशि की
तारक स्वप्नों में से खोए।
मरकत डिब्बे सा खुला ग्राम
जिस पर नीलम नभ आच्छादन
निरूपम हिमान्त में स्निग्ध
शान्त निज शोभा से हरता जन मन।”⁶

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि छायावादी काव्य ‘भूमि चेतना’ से भरा पड़ा है। भूमि के प्रति इस चैतन्य कवि दृष्टि ने जहाँ मनोभावों की शुद्धि में सहायता पहुँचाई है, वही धरा के उर्वर, ममतालू तथा सहनशीलता स्वरूप पर भी प्रकाश डालते हुए आन्तरिक सत्ता (व्यक्ति) के कल्मष को धोने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

जल चेतना — मानव जीवन को सरस व शुद्ध बनाने में जल तत्त्व की भी अपनी विशेष भूमिका रही है। अपने सूक्ष्म अर्थ में जल करुणा का पर्याय हो जाता है, छायावादी काव्य का अनुशीलन करने पर यह तथ्य उजागर होता है कि इस जल तत्त्व की महत्ता को छायावादी कवियों ने स्वीकारा और अपनी काव्य वृत्तियों में यथेष्ट स्थान दिया है।

छायावाद के शीर्षस्थ कवि जयशंकर प्रसाद ने अपने ‘आँसू’ खण्ड काव्य में घनीभूत पीड़ा को ही आँसू के रूप में बहाया और मन की शुद्धि का

विधान किया—

“जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छायी,
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई।।”⁷

जल जहाँ निर्दोष होता है वहीं वह शांति का प्रतीक बन जाता है। अग्नि के ताप को जल ही शान्त करता है ठीक इसी अनुभूति को केन्द्र में रखकर शीतलता के धनी जल से यह उपेक्षा की गई है कि वह अपने स्वभावानुसार धरा की इस सारी कलुषता को समाप्त कर दें—

“जगती का कलुष अपावन
तेरी विदग्धता पावे
फिर निरख उठे निर्मलता
यह पाप पुण्य हो जावे।।”⁸

इस प्रकार हम देखते हैं कि ‘जल’ से अपने सूक्ष्म रूप में करुणा का संवेदना का पर्याय इस छायावादी काव्य से हो चला है। कहीं रजत पारावर चाँदनी सा जल कवि को दिखाई देता है तो कहीं संसार रूपी सागर तरल मोती की तरह काँपता प्रतीत होता है—

“अवनि अम्बर की रूपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि जब काँपता
तैरते घन हिम के पुंज से
ज्योत्सना के रजत परावार में।।”⁹

हम कह सकते हैं कि कवियों ने जल को सरलता, तरलता, सहृदय और करुणा का प्रतीक मानकर वैयक्तिक स्वार्थों से ऊपर उठकर परोपकार करने की प्रेरणा जन समुदाय को दी है ताकि यह जो जली सूखी सी रसा है उसके प्राण सरस हो सके और करुणा, संवेदना, सरसता का साम्राज्य चतुर्दिक व्यापे।

वायु चेतना — वायु को प्राणशक्ति कहा गया है, शुद्ध हवा यानि ऑक्सीजन अभाव में मनुष्य का जीवित रहना संभव नहीं ठीक इसी प्रकार पेड़ पौधों को

पर्याप्त कार्बन डाई आक्साइड उपलब्ध हो तथा पेड़ पौधों की विद्यमानता भी वांछनीय है किन्तु यांत्रिकता के फैलाव व आबादी के विस्फोट ने वायु के इस सन्तुलन पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है, ठीक इसी प्रकार जब हम मानसिक प्रदूषण में साँस लेंगे तो घृणा, क्रोध, वैमनस्य, वैर की हवा का बाहुल्य होगा तब मानवता का कमल कहाँ खिलेगा?

छायावादी कविता में 'वायु' के प्रति कवियों की संवेदना पहुँची है पवन को भी उन्होंने चेतन सत्ता के रूप में स्वीकारा है। 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से विख्यात कवि माखनलाल चतुर्वेदी को 'हवा' लोगों के लिए जागरण का सन्देश लेकर आती हुई प्रतीत होती है। हवा की सन सन आवाज को सुनकर प्रकृति में क्या परिवर्तन हुआ यह द्रष्टव्य है—

“जग उठा तरु वृन्द जग, सुन घोषणा
पंछियों में चहचहाहट मच गयी
वायु का झोंका जहाँ आया वहाँ
विश्व में क्यों सनसनाहट फैल गई?”¹⁰

छायावादी कवियों ने प्रकृति को मानव की गतिविधियों के अनुकूल ही चित्रित करने में सफलता प्राप्त की है। इस दृष्टि से महाप्राण 'निराला' की गीतिका की ये पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण बन पड़ी है—

“बह चली अब अलि शिखिर समीर
बन देवी के हृदय हार से
हीरक झरते हर सिंगार के
वेध गया उर किरन तार के
विरह राग का तीर।”¹¹

'पवन' को वैयक्तिक दृष्टिवाली या स्वार्थी न दिखाकर दूसरों के दुःख को बाँटने वाली चित्रित किया है। जब तक वैचारिक पवन निर्मल नहीं होगी तब तक बहिर्मुखी वातावरणमत् निर्मलता का महत्त्व नगण्य ही रहेगा। सच है कि प्रकृति काव्य के प्रणेता छायावादी कवियों ने 'वायु' को भी बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी दोनों व्यक्तियों को पहचाना और वातावरण शुद्धि में 'पवन' को भी सहायक मानकर उसे भी कविता का वर्ण्य विषय बनाया।

आकाश चेतना – जहाँ तक आकाश चेतना का सवाल है छायावादी काव्य इससे अछूता नहीं है। आकाश अनन्त होता है उसकी असीमितता को भी नकारा नहीं जा सकता। अपने स्वभाव से आकाश शुद्धता का पर्याय है। वस्तुतः निर्मल स्वभाव वाला व्यक्ति भी आकाश तुल्य हो जाता है। इस दृष्टि से आकाश को चैतन्य मानकर छायावादी कवियों ने अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति का रूप प्रदान किया है। महाकवि प्रसाद आकाश में प्राप्य ग्रह नक्षत्रों द्वारा उस अव्यक्त सत्ता के खोज की कल्पना कर यह रहस्यात्मक जिज्ञासा व्यक्त कर देते हैं—

“महानील उस परम व्योम में
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह नक्षत्र और विद्युतकण
किसका करते हैं संधान?”¹²

यह वही अव्यक्त सत्ता है, जिसे खोजने में महादेवी वर्मा भी पीछे नहीं रही। एक ओर वे ‘प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन’ कहकर अपने अस्तित्व को उस विराट शक्ति से सम्पृक्त करती है दूसरी ओर उस विराट को वह नीले नभ में भी पाकर वह कह उठती है—

“स्थिर अव्यक्त नील नभ में है
चंचल व्यक्त सिन्धु मंथन में
सौरभ में अरूप रहते पर
पाते रूप सुमन के दल में।”¹³

आकाश जो शुद्धता का पर्याय है, आकाशवत जीवन यापन करना गहन तपस्यायुक्त जीवन जीने का अर्थ अपने में लिए हुए हैं। हमारा निष्कर्ष इस आधारभूमि पर अवस्थित है कि छायावादी काव्य में आकाश तत्त्व को सचेतन रूप में स्वीकार करके पात्रों के लोकोपकारी व्यक्तित्व के चित्रण में आकाश तत्त्व की प्रतिच्छाया के दर्शन तद्युगीन कवियों ने किये गये आकाशवत जीवन जीने को तपस्या का पर्याय स्वीकारा।

अग्नि चेतना – अग्नि को तपोयोगी की संज्ञा मिली है। व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह अग्निवत् जीवन यापन कर अपने भौतिक मानसिक और आत्मिक, विकारों को स्वाहा कर दे। इसी परिप्रेक्ष्य में छायावादी कवियों ने भी

अग्नितत्त्व को अपनी काव्य कृतियों में स्थान दिया है। 'कामायनी' में मनु यज्ञ सम्पन्न करते हैं, पर इसके पीछे भी समष्टि हित को प्राथमिकता मिली है। परिवेश प्रखर हो, यह भाव भी इसमें अन्तर्निहित है—

“पाक यज्ञ करना निश्चित कर लगे शालियों को चुनने
उधर ज्वाला भी अपना लगी धूम पट थी सुनने।”
शुष्क डालियों से वृक्षों की अग्नि अर्चियाँ हुई समिद्ध,
आहूति के नव धूम गंध से, नग्न कानन हो गया समृद्ध।”¹⁴

जीवन परिवर्तनशील है, यहाँ अनेक विचित्रताओं का सम्मेलन हुआ है। तभी दार्शनिकों ने इस जीवन को अबूझ पहेली बताया है। कभी समुद्र में अग्नि लगती है तो मरुभूमि कभी उदधि के रूप में अपनी कोमलता गम्भीरता का परिचय देती है। व्यक्ति के भीतर भी इसी अग्नि की दौड़ को प्रसाद ने इन शब्दों में समझाया है—

“तरल अग्नि की दौड़ लगी है सबके भीतर,
गलकर बहते हिम नग सरिता लीला रचकर।”¹⁵

अग्नि का धर्म जलाना है, परन्तु इस असन्तुलन से भरे विश्व में विषमता को जलाना आवश्यकता बना गया है। मन के कूड़े करकट यानि दूषित विचारों को जलाकर ही हम अग्निवत जीवन यापन में अपने को सक्षम बना सकते हैं। छायावादी कवि इस 'सत्य' से अनभिज्ञ न थे तथा उन्होंने अग्नि एक जीवन शक्ति के रूप में तथा राग द्वेषादि मनोविकारों को जलाने वाली अग्नि को ही अपनी कविताओं में स्वीकारा है।

वनस्पति जगत — प्रकृति के चितेरे छायावादी कवियों को पेड़ पौधों तथा कुसुम विशेष प्रिय रहे हैं, किन्तु इस प्रस्तुति में भी उन्होंने जीवन में वरेण्य, त्याग तपस्या, सहनशीलता आदि गुणों को प्रकृति की इन शक्तियों पर आरोपित करके देखा है। 'सोनजुही' को चित्रित करते हुए पन्त उस अन्तर्मुखी सुवास से सुवासित होते हैं और गा उठते हैं—

“सोनजुही की बेल
समर्पित करती अन्तर्मुख विकास को
उस सुवास को।”¹⁶

पेड़-पौधे ग्राम सुषमा में श्री वृद्धि करते हैं, इस सत्य को भला कौन नकार सकता है? जहाँ फलों से लदी डालियाँ (पेड़ों की) जीवन में विनम्रता का सन्देश देती है वहीं हमारे अभ्यान्तर के कलुष को दूर कर उसे परोपकार उन्मुख करती दिखाई देती है। वनस्पति जगत का इस प्रकार केवल भौतिक महत्त्व ही नहीं बल्कि भावनात्मक महत्त्व भी है—

“अब रजत स्वर्ण मंजरियों से लद गयी आम्र तरु की डाली
झर रहे ढाक पीपल के दल, हो उठी कोकिला मतवाली।
महके कटहल मुकुलित जामुन जंगल में झरबेरी झूली
फूले आडू नींबू दाडिम आलू गोभी बैंगन मूली।”¹⁷

यह बात निश्चित है कि वातावरण मन को प्रभावित करता है, संगति के असर को कोई झुठला नहीं सकता, ठीक इसी प्रकार यह वानस्पतिक जगत जहाँ परिवेश को पावन बनाता है, वहीं हमारे भीतर अन्तर तक को उल्लास से सरोबार कर देता है। इस वानस्पतिक श्री सुषमा से न केवल दृश्य जगत ही सुवासित श्री सम्पन्न होता है वरन वह हमारी अन्तवृत्तियों का शोधन कर प्रफुल्लता जैसे मनोभावों को जन्म देकर जीवन को प्रसन्नता का पर्याय बना देता है, यह भी एक कोटि को पर्यावरण शुद्धि ही है।

छायावादी काव्य सचेतन काव्य है। यहाँ भूमि, जल, अग्नि, आकाश तथा वायु जैसी प्राकृतिक शक्तियों को चैतन्य भाव से जाना पहचाना है। इस युग के काव्य में हमें सर्वत्र ही मानवता की सुवास मिलेगी। आज की इस बुद्धिवादी पीढ़ी को यदि भावना का आसव पिलाना है तो कविता की मदद से ही यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। मुख्य बात यही है कि सन्तुलन के अभाव में व्यक्ति की प्यास बढ़ती ही जा रही है उसे चैन नहीं है, आवश्यकता ‘समरसता’ को जीवन मूल्य बनाने की है तभी आनन्द की सिद्धि संभव है—

“ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की?
एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की।”¹⁸

आन्तरिक पर्यावरण चेतना — बाह्य प्रकृति के इस चेतन रूप का साक्षात्कार करने के बाद प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या प्रकृति का कोई आन्तरिक स्वरूप भी है, तो स्वीकारोक्ति में यही कहा जा सकता है कि मानवीय जीवन

का यह जो भावनागत सौन्दर्य है यह आन्तरिक प्रकृति की ही सुषमा है। इस दृष्टि से मानव प्रेम को सर्वाधिक वरीयता कवियों ने दी है। मानवतावाद ही दुहाई देते हुए कवि पन्त कहते हैं—

“प्रभु का अनन्त वरदान तुम्हें
उपभोग करो प्रतिक्षण नव—नव,
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में,
यदि बने रह सको तुम मानव।”¹⁹

कवि को अहसास है कि जबसे मानव बुद्धि का अहम् के साथ गठबन्धन हुआ, उसका मन तभी से विवेकशून्य हो गया—

“अहंकार के साथ बुद्धि की जबसे हुई सगाई,
हीन विवेक हुआ मानव मन, नैतिकता बिसराई।”²⁰

कवि ‘प्रसाद’ का मानना है कि मानव मंगल गायन को भुला देना कवि कर्म के प्रति अन्याय होगा। इन कवि की वैचारिकता उदारता स्तुत्य है। एक ओर वे ‘विजयिनी मानवता हो जाय’ का उद्घोष करते हैं वहीं प्रेम की सत्ता में आस्था रखने वालों में छायावादी कवि मानव एकता के पक्षधर रहे हैं—

“हम अन्य न और कटुम्बी
हम केवल एक हमीं है,
तुम सब मेरे अवयव हो,
जिसमें कुछ नहीं कमी है।”²¹

करुणा — आज किसी कष्ट में पड़े प्राणी को देखकर हमारा हृदय द्रवित होने लगे तो करुणा की उत्पत्ति होती है, इस दृष्टि से करुणा को हम केवल मनोभावों की सूची में स्थान दे सकते हैं। छायावादी कवियों के काव्य का अनुशीलन करने पर हमें लगता है कि इस आन्दोलन के प्रायः सभी कवियों ने करुणाभाव को अपने काव्य बिम्बों से उकेरा है। महादेवी वर्मा तो इसी करुणा से अपने जीवन की सार्थकता का अनुभव करती हैं—

“सुख से भीनी दुःख से गीली
वर्ती सी साँस अशेष रही।”

महादेवीजी वेदना के एक पूँजी मानती है, पर इस करुणा में सार्वजनीकता की सुवास है, इस सत्य से हम इन्कार नहीं कर सकते। कवि पंत ने भी दुःख के अभाव में सुख को निस्सार बताया है, जीवन में करुणा, आँसू तो आवश्यक है—

“बिना दुःख के सब सुख निस्सार

बिना आँसू के जीवन भार।”²²

करुणा मनोभाव का प्रसार यदि अन्तर्मन से होता रहा तो स्वार्थपरता और संघर्ष से मुक्ति संभव है। यदि हमारी आत्म चेतना में करुणा का भाव उत्पन्न होकर हमारी आत्मिक चेतना को सामाजिक में परिणत कर देगा तो स्वार्थ, हिंसा आदि कहाँ टिक पायेंगे और इसी अनुपात में हमारी वैचारिक शुद्धि होगी। वैचारिक शुद्धि के साथ हम मानसिक प्रदूषण से लोहा लेते हुए भव्य सुसंस्कृति को, सन्तुलित जीवन के स्वप्न को साकार कर सकेंगे जिसकी महती आवश्यकता इन कवियों ने महसूसी थी। आज के इस बुद्धि संकुल समाज को भी साहचर्य व विश्व मानवता का पयःपान कराने के लिए भाव शुद्धि वांछनीय है जो करुणा प्रसार से ही सम्भव है।

सौन्दर्य — जब हम काव्य सौन्दर्य की चर्चा करते हैं तो सुन्दरता का अर्थ विस्तार हो जाता है। सामान्यतः सुन्दर हम उसे कहेंगे जिसे देखकर हमारे नेत्रों को आनन्द की अनुभूति हो, किन्तु कविता सौन्दर्य का जहाँ तक प्रश्न है कविता पढ़कर आँखों की तृप्ति के अतिरिक्त मनःतृप्ति होना भी वांछनीय है।

“शान्त सरोवर का उर

किस इच्छा से लहराकर

हो उठता चंचल चंचल।”²³

समग्र सृष्टि में सौन्दर्य देखने की प्रवृत्ति छायावादी कवियों की रही है। छायावादी कवियों के बाहरी तथा आन्तरिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए नारी को शक्ति पथ प्रदर्शिका और प्रेरिका के रूप में वर्णित किया गया है। केवल नारी सौन्दर्य के चितेरे बनकर छायावादी कवि अपने कविकर्म को यति नहीं दे पाते, उन्होंने पुरुष सौन्दर्य का भी पूरे मनोयोग से वर्णन किया है। कविवर पंत की चेतना समतामूला हो चली। उन्हें निम्न स्तर के बालक के प्रति अपनापन हो चला है तभी तो उस नग्न देह में कवि सौन्दर्य दर्शन करता है—

“सुन्दर लगती नग्नदेह मोहती नयन मन,
मानव के उर में भरता अपनापन।”

छायावादी काव्य में यत्र-तत्र सर्वत्र ‘मानवतावादी’ सौन्दर्य का ही दर्शन होता है। जब हम अपनी दृष्टि की, जो सुन्दरता की ओर सहज आकृष्ट होती है मानवीयता बंधुता और अपनापन के परिप्रेक्ष्य में सृष्टि सुषमा को देखेंगे, प्राणियों के साथ तदनुरूप व्यवहार करेंगे तो एक शुद्ध सात्विक मानवीय लोक का स्वप्न साकार हो जायेगा, भौतिक पर्यावरण शुद्धता के साथ-साथ सांस्कृतिक बोध पैदा करने वाली हमारी दृष्टि की शुद्धता भी वांछनीय है जिसे छायावादी काव्य में देखा जा सकता है।

सहानुभूति – यद्यपि सहानुभूति सह + अनुभूति यानि जैसी अपनी अनुभूति है वैसी ही अन्य की अनुभूति हो के अर्थ में प्रयुक्त होती है किन्तु अपने रूढ़ अर्थ में सहानुभूति हर्ष व दुःख दोनों की एकानुभूति न रहकर केवल कष्ट, विपत्ति शोक आदि पर होने वाली अनुभूति मात्र रह गई है।

छायावादी काव्य इस सहानुभूति जैसे मानवीय गुण से अछूता नहीं है। महाप्राण निराला ने ग्रीष्म की दोपहरी में श्रमजीवी महिला को पत्थर तोड़ते हुए दिखाते हुए अपनी काव्यात्मक सहानुभूति इन शब्दों में अर्पित की है—

“नहीं छायादार पेड़ वह
जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन पर बंधा यौवन
नत नयन प्रिय कर्म रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार।”²⁴

इसी तरह कवि निराला ने ‘भिक्षुक’ तथा ‘भारत की विधवा’ नामक कविताएँ लिखकर दीन-हीन व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति दर्शायी है।

संवेदना – संवेदना और सहानुभूति को यदि हम स्थूल अर्थ में देखे तो इनका एक ही अर्थ है। कोषकारों ने संवेदना का अर्थ वेदन यानि अनुभूति का ज्ञान होना बताया है। विपत्ति या शोक में ही इस ‘संवेदना’ की व्याप्ति देखी गई है। क्षमा, उदारता, धीरता एवं इसी श्रृंखला में इन कवियों ने दया,

ममता, करुणा आदि मानवीय मूल्यों को समाज में स्थापित करने की कोशिश की साथ ही समाज में फैले हुए धार्मिक प्रदूषण व सामाजिक प्रदूषण को दूर करने का प्रयास किया। कवि पंत ने सामाजिक कुरीतियों की धारा को तोड़कर नवीनता का आह्वान किया है—

“जाति पांति की कडिया टूटे मोह द्रोह मत्सर छूटें
जीवन के नव निर्झर फूटें, वैभव बने, पराभव,
युग प्रभात हो अभिनव।”²⁵

कवियित्री सुभ्रदा कुमारी चौहान ने समाज में फैले हुए छुआछूत का बहुत ही सहजता से वर्णन अछूत बालिका के हृदय के अन्तर्नाद के माध्यम से किया है—

“मैं अछूत हूँ मंदिर में आने का मुझको अधिकार नहीं है
किन्तु देवता यह न समझना तुझ पर मेरा प्यार नहीं है।”²⁶

देश में फैली हुई राजनैतिक अव्यवस्था पर भी गहरा असंतोष व्यक्त किया है। राजनैतिक प्रदूषण को दूर करने के लिए इन कवियों ने हमें जागृत करने की कोशिश की—

“ऊँची काली दीवारों के घेरे में,
डाकू, चोरों, बटमारों के डेरे में,
जीने को देते नहीं पेट भर खाना
मरने भी देते नहीं तड़प रह जाना।”²⁷

समाज में फैले हुए धार्मिक प्रदूषण, नैतिक प्रदूषण, सामाजिक प्रदूषण के बावजूद ये कवि कभी निराश नहीं हुए। ये हमेशा हमें अन्याय के विरुद्ध लड़ने की प्रेरण देते रहे—

“छिड़ा आज यह पाप—पुण्य का, युद्ध अनोखा एक सखी।
मर जायेंगे पर साथ न देंगे, पापों का, हे टेक सखी।
दो विजये। वह आत्मिक बल दो, वह हुँकार मचाने दो।
अपनी निर्बल आवाजों से, दुनियाँ को दहलाने दो।”²⁸

जब हम छायावादी काव्य का समग्र अनुशीलन करते हुए मूल्य निर्धारण की

स्थिति में पहुँचते हैं तो पता चलता है कि इस युग के कवि क्षमा, उदारता, धीरता, प्रायश्चित्त जैसे मानवीय गुणों से परिचित थे तथा कविता के माध्यम से समाज में ऐसी भावभूमि निर्मित करना चाहते थे जहाँ हिंसा, क्रोध, मोह आदि मन के शत्रु अपने प्रभाव में न हो। कवि ने केवल युगीन परिवेश का ही चित्रण कर कवि कर्म से विराम नहीं लिया बल्कि उनका भावलोक इन काले बादलों को लुप्त करने हेतु चिन्तन के कई जाल बुन रहा है और इसीलिए उनकी चिन्तना यों मुखर हुई है—

“क्या नहीं कोई कहीं ऐसा अमृत धन
जो धरा पर बरस भर दे भव्य जीवन
जाति वर्गों से निखर जन
अमर प्रीति प्रतीति में बंध
पुण्य जीवन करे यापन
और धरा हो ज्योति पावन।”²⁹

निष्कर्ष—

अन्त में यही निष्कर्ष निकलता है कि छायावादी कविता मात्र बहिर्मुखी सौन्दर्य को प्रस्तुत करने वाली कविता नहीं है, काव्य का उद्देश्य ‘आन्तरिक शुद्धि’ भी इस काव्य से होती है।

वस्तुतः जब तक मानव हृदय पवित्र नहीं होता क्षमा, सहानुभूति, दया, ममता, करुणा के सात्विक भावों का जनमन में प्रसार न होगा तब तक यह मानसिक प्रदूषण अपनी कालिमा से मानव को प्रज्ञा चक्षु विहीन ही रहने देगा, अतः आवश्यकता आज जीवन के हर क्षेत्र में समन्वित जीवन दृष्टि की है। हम ज्ञान विवेक के साथ-साथ यांत्रिक विकास की ओर अग्रसर हो तभी विकसित मानव कहलाने के अधिकारी होंगे।

छायावादी कवियों ने इस सत्य से साक्षात्कार किया तभी तो ‘समरसता के सिद्धान्त’ को व्यावहारिक बनाने पर बल देते हुए जीवन में आनन्दवाद की सिद्धि की थी।

सन्दर्भ:

- 1 साहित्य समालोचना : डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 14
- 2 यामा – महादेवी वर्मा

- 3 अज्ञेय (सं.) रूपाम्बरा : आलेख डॉ. रघुवंश – आधुनिक काव्य में प्रकृति की परिकल्पना, पृ. 403
- 4 जयशंकर प्रसाद: कामायनी, आशा सर्ग, पृ.7
- 5 डॉ. नरेन्द्र भानावत : पर्यावरण शुद्धि व गुप्त जी की काव्य चेतना, स्मारिका, पृ. 26
- 6 सुमित्रानन्दन पंत : ग्रामश्री संग्रह ऋतुम्बरा, संपादक अज्ञेय, पृ. 140
- 7 जयशंकर प्रसाद : आँसू, पृ. 17
- 8 जयशंकर प्रसाद : आँसू, पृ.83
- 9 महादेवी वर्मा : रश्मि 'काव्य संग्रह'
- 10 माखनलाल चतुर्वेदी : हिम किरीटनी, रूपाम्बरा – संपादक, अज्ञेय, पृ. 108
- 11 निराला : गीतिका
- 12 जयशंकर प्रसाद : कामायनी, चिन्तासर्ग
- 13 महादेवी वर्मा : आत्मकथ्य, पृ.99
- 14 जयशंकर प्रसाद: कामायनी, आशासर्ग, पृ.10
- 15 जयशंकर प्रसाद: कामायनी, आशासर्ग, पृ. 77
- 16 सुमित्रानन्दन पंत : अतिमा से, रूपाम्बरा, संपादका अज्ञेय, पृ. 145
- 17 सुमित्रानन्दन पंत : ग्रामश्री, संकलन ऋतुम्बरा
- 18 जयशंकर प्रसाद : कामायनी, रहस्यसर्ग
- 19 सुमित्रानन्दन पंत : युगान्त
- 20 नरेन्द्र शर्मा : हंसमाला, पृ.19
- 21 जयशंकर प्रसाद : कामायनी, सर्ग, पृ.287
- 22 सुमित्रानन्दन पंत : परिवर्तन
- 23 सुमित्रानन्दन पंत : गुंजन
- 24 निराला : वह तोड़ती पत्थर, अनामिका
- 25 सुमित्रानन्दन पंत : स्वर्णधूलि, पृ.42
- 26 सुभद्रा कुमारी चौहान : मुकुल, पृ.93
- 27 माखनलाल चतुर्वेदी : कैदी और कोकिला, हिम किरीटनी, पृ.15

डॉ. रीता प्रताप
एसोसियेट प्रोफेसर, चित्रकला विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

भारतीय इतिहास के संरक्षण में महती भूमिका निभाते राजस्थान की मस्जिदों से प्राप्त फारसी भाषा के लेख

इतिहास उन घटनाओं के आधार पर रचा जाता है जो वास्तव में घटी हो और उनके घटने के प्रामाणिक तथ्य या साक्ष्य हों। उसको इतिहास कहा जाता है। इतिहास के ये स्रोत कई रूपों में मिलते हैं। बीते युग की घटनाओं के संकेत बीते युग की वस्तुओं, स्थानों, स्मारकों आदि से मिलते हैं।

भारत में इस्लाम के प्रवेश और मुसलमानों की सत्ता स्थापित हो जाने के पश्चात् तुर्क एवं मुगल शासकों द्वारा कई स्थापत्य स्मारकों का निर्माण करवाया गया था। भारत में शासन करने वाले ऐसे तुर्क या मुगल शासकों ने भारतीयों की नकल में उनके द्वारा बनवाये जाने वाले स्मारकों पर अरबी अथवा फारसी भाषा में निर्माण कार्य के उद्देश्य, अपने धर्म प्रचार के आदेश और इसी तरह की अन्य बातों को पत्थर पर खुदवाकर लगवाया। तुर्क अथवा मुगल शासकों द्वारा स्मारकों पर लगवाये गये ऐसे कई अभिलेख सल्तनत काल अथवा मुगलकाल के स्मारकों में मिलते हैं। इन अभिलेखों का भी भारत के सम्पूर्ण इतिहास की रचना में पर्याप्त महत्त्व है। ऐसे अरबी-फारसी भाषा के अभिलेखों से मध्ययुग के भारत की राजनीति, शासकों की मानसिकता और मनोवृत्ति तथा उस युग के समाज और संस्कृति को जानने, समझने में काफी सहयोग मिलता है। यही नहीं अरबी-फारसी भाषा के अभिलेखों से सल्तनत काल और मुगलकाल के भारतीय प्रशासन के विभागों, पदों, पदाधिकारियों, विशिष्ट व्यक्तियों, कलाकारों लेखकों आदि के नामों की जानकारी भी मिलती है। जिससे भारत के इतिहास और संस्कृति से संबंधित विवरण को क्रमिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने में पर्याप्त सहयोग मिलता है।

भारतीय इतिहास की जानकारी के लिए सबसे अधिक विश्वस्त इतिहास बतलाने वाला एक साधन फारसी शिलालेख है। जहां कई अन्य साधन मूक

अथवा अस्पष्ट है। वहां इतिहास निर्माण में हमें इनसे बड़ी सहायता मिलती है। हालांकि इनकी संख्या सहस्त्रों में है जिनके बारे में हमें जानकारी है। परन्तु वर्तमान में भी सहस्त्रों की संख्या में ऐसी फारसी अभिलेख हैं जो भूगर्भ या खण्डहरों में दबे पड़े हैं। ये शिलालेख शिलाओं, प्रस्तर पट्टों पर मस्जिदों, दरगाहों, कब्रों, राजप्रासादों, सरायों, बावडियों, तालाबों के घाटों एवं चबूतरों पर बहुधा उत्कीर्ण मिलते हैं। इन लेखों का ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्व है। यहां दी गई सूचनाओं से राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर प्रभूत प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त इन अभिलेखों द्वारा तुर्की एवं मुगली विजयों एवं राजनीतिक प्रभाव क्षेत्रों का समुचित अध्ययन कर सकते हैं।

ये लेख सांभर, नागौर, जालोर, सांचोर, अलवर, तिजारा, अजमेर, मेड़ता, टोंक, कोटा, जयपुर आदि क्षेत्रों में अधिक मिलते हैं क्योंकि इन स्थानों पर मुस्लिम सत्ता का प्रभाव या शासन रहा।¹

यहां के हाकिमों द्वारा समय समय पर दरगाहों—मस्जिदों आदि का निर्माण करवाया गया। प्रसंगवश इन लेखों में शासन की इकाइयों, इक्ता परगाने, शिक कस्बे आदि की सूचना भी प्राप्त होती है। शासन व्यवस्था की जानकारी के लिए पदाधिकारियों के नाम भी मिलते हैं जिनमें मुक्ति आमिल, हवलदार, हाकिम, नाजिम, नायब हाकिम, रसालदार प्रमुख हैं। कहीं—कहीं मुसलमान अधिकारियों की नामावली के साथ उनकी प्रारम्भिक जाति का भी उल्लेख मिलता है जिससे प्रमाणित होता है कि वे पहले हिन्दू जाति के चौहान, गहलोत आदि वर्ग के थे। सम्भवतः परिस्थितिवश उन्हें धर्म परिवर्तन करना पड़ा।

अनेक अभिलेख स्थानीय शासकों एवं सुल्तानों तथा मुगल सम्राटों की उदार नीति पर प्रकाश डालते हैं। कई अभिलेखों से विद्वानों, सन्तों, शिल्पियों, लेखकों आदि के नामों का भी बोध होता है। यही नहीं कई नये एवं पुराने करों की भी जानकारी इनके द्वारा प्राप्त होती है।²

मैंने अपने इस लेख में राजस्थान के मस्जिदों पर पाये जाने वाले फारसी अभिलेखों का संग्रह किया है जिससे भारतीय इतिहास को क्रमबद्ध रूप से आलेखित किया जा सकता है।

अजमेर का ढाई दिन के झोपड़े का लेख³

1200 ई. का यह अभिलेख ढाई दिन के झोपड़े की दूसरी गुंबज की दीवार के पीछे है। जिसमें अबूबक्र नामक व्यक्ति का उल्लेख है, जिसके निर्देशन

में इस मस्जिद का निर्माण करवाया था। इसी इमारत में इल्तुतमिश के समय के अल अभी, अली अहमद आदि व्यक्तियों के नाम अलग अलग समय के भी मिलते हैं जिन्होंने इसके बनाने या जीर्णोद्धार के काम का निर्देशन किया होगा।

अजमेर स्थित घीसूखां की मस्जिद को लेख

यह लेख मस्जिद के केन्द्रीय महाराब में लगा हुआ है। इसमें गोसूखां पुत्र इमरान द्वारा जलाशय बनाने का उल्लेख है। इस लेख को दरवेश मुहम्मद अल हाजी ने लिखा था।⁴

अजमेर की शाहजहानी मस्जिद का लेख (1637 ई.)

इस लेख में यह वर्णित है कि जब खुर्दम, राणा पर विजय प्राप्त कर यहां आया तो उसके अजमेर में एक मस्जिद बनाने की बाधा भी थी। बादशाह बनने पर उसने इसको पूरा किया। यहां मस्जिद का बखूबी वर्णन भी है।⁵

नागौर की कनाती मस्जिद का लेख (1641 ई.)

इस मस्जिद में जमालशाह द्वारा मस्जिद के निर्माण करवाने का उल्लेख है। जमालशाह जुमीशाह का प्रपौत्र था और जुमीशाह चौहानवंशीय था। इसका लेखक कादिर अब्दुराहीम था। इस अभिलेख से चौहानों से मुस्लिम बनाने की स्थिति पर प्रकश पडता है। यही पर एक दूसरे लेख में जुमीशाह को भी चौहान कहा गया है।⁶

जोधपुर की एक मीनार मस्जिद का लेख (1679 ई.)

यह लेख टूटी अवस्था में है, जिसमें वर्णित है कि निर्माणकर्ता ने मस्जिद की व्यवस्था के लिए 6 दुकारों का अनुदान किया है।⁷

अजमेर में दरगाह बाजार की मस्जिद का लेख (1652 ई.)

यहां पर वर्णित लेख से ज्ञात होता है कि मियों तानसेन कलावन्त की पुत्री बाई तिलोकदी ने इस मस्जिद का निर्माण 1652 ई. में करवाया था। निर्माणकर्ता का नाम बाई से सम्बोधित है।⁸

नागौर में अमरपुर की मस्जिद का लेख (1655 ई.)

यह लेख मस्जिद के महाराब पर उत्कीर्ण है। इसमें वर्णित है कि दीन जावारा के मउडा गांव में मुहम्मद के द्वारा एक मस्जिद का निर्माण करवाया

गया। यह मुहम्मद, उथमान चौहान का लड़का था। राजस्थान में चौहानों के धर्म परिवर्तन होने का यह एक उदाहरण है। इस लेख से यह भी पुष्टि होती है कि शाहजहां के समय में नागौर और इसके आस पास इस्लाम का प्रभाव फैल गया था।⁹

मेड़ता का गादीतान की मस्जिद का लेख (1636 ई.)

इसमें अलावत के पुत्र फिरोजशाह के द्वारा मस्जिद बनाने का उल्लेख है। अलावल के नाम को उर्फ राठौर भीर अंकित किया गया है। जिससे प्रमाणित होता है कि अलावल राठौड़ था जिसका धर्म परिवर्तन हो गया। इस लेख को काजी मुहम्मद ने लिखा था।¹⁰

मेड़ता की जामी मस्जिद का लेख (शाहजहां कालीन)

यह लेख मस्जिद के महाराब पर है और खण्डित है। इसमें वर्णित है कि राजा सूरजसिंह की मृत्यु पर मेड़ता परगाना शाही जागीर के अधीन हो गया था और उसे अबू मुहम्मद के अधिकार में दे दिया गया। इसने उक्त मस्जिद को बनवाया। इस समय इसके साथ शेखताज मजधूब था।¹¹

मेड़ता का जामी मस्जिद का लेख

इस मस्जिद के लेख के अनुसार यह मस्जिद हाजी मुहम्मद सुलतान पुत्र पायन्दा मुहम्मद बुखारी ने बनवाई। बुखारी जोधपुर सरकार का मुतावल्ली तथा मुहस्सिब था। इसमें खोजा शाह अली और उस्ताद नूर मुहम्मद शिल्पी का नाम भी दर्ज है। यह लेख मुहम्मद दीया द्वारा लिखा गया है।¹²

हिण्डोन की कचहरी मस्जिद का लेख (1659-60 ई.)

इसमें उल्लेखित है कि आका कमाल ने शाह जफर की दरगाह में एक मस्जिद बनवाई। शाह जफर मक्का से यहां तशरीफ लाये थे और उनको यहीं दीक्षा प्राप्त हुई थी। इस लेख से प्रमाणित होता है कि जहां जहां मुस्लिम सत्ता की स्थापना होती थी वहां इस्लाम के बन्दे भी प्रचारार्थ पहुंच जाते थे।¹³

डीडवाना स्थित लौहारों की मस्जिद का लेख (1665-66 ई.)

लौहारों की मस्जिद के लेख में वर्णन है कि यह मस्जिद नूरा, ईदू एवं फीरोज लौहारों द्वारा बनवाई गई। उस समय मिर्जा मुहम्मद आरिफ गवर्नर था और यह लेख हाफिज अब्दुल्ला अन्सारी द्वारा लिखा गया था।¹⁴

डीडवाना स्थित शेखों की मस्जिद का लेख (1675 ई.)

यह मस्जिद फीरोज जहान नामक स्त्री एवं मिय्यांगा की निगरानी व मालिकाना अधिकार में बनवाई गई थी। ये व्यक्ति तैली वर्ग के थे।¹⁵

डीडवाना स्थिति मोचियों की मस्जिद का लेख (1686 ई.)

यह मस्जिद दरिया मोची के निरीक्षण में बनी थी। इस लेख में पीरू, बिल्लू एवं इंदू मोची के नाम भी अंकित हैं।¹⁶

गागरोन स्थित मस्जिद हजरत मिट्टेशाह की दरगाह के भीतर का लेख

यह लेख जामी मस्जिद का है, जो हजरत मिट्टेशाह की दरगाह के अन्दर है। उक्त मस्जिद को नवाब आजमखां के पौत्र इरादत खां ने बनवाया था और उसने पांच बहलोली इसके खर्चे के लिए अनुदान के रूप में दिये थे। इनमें से तीन इमाम के लिए, एक मेहतर के लिए व आधे आधे पानी व रोशनी के खर्चे के थे। इसमें यह भी दर्ज था कि जो भी हजरतशाह की खिदमत करेगा उसकी मुरादे पूरी होंगी। इस में शेख फिरोज का नाम है जिसके निरीक्षण में यह कार्य हुआ था और जो इस किले के अधिकारी पद पर नियुक्त था।¹⁷

गागरोन की हजरत मिट्टेशाह का लेख (1694-95 ई.)

उक्त दरगाह के महराब में लेख अंकित है कि इरादतखां जो सरकारी सेवक था उसने चौकिया (गांव) का लगान वार्षिक उर्स के लिए अर्जित किया और यह भी उल्लेख किया कि इस संबंध में कोई हस्तक्षेप न करें।¹⁸

मेडता की जामी मस्जिद का लेख (1807-8 ई.)

उक्त मस्जिद के दालान में घुसते हुए यह लेख मिलता है। इसमें दर्ज है कि यह मस्जिद औरंगजेब द्वारा बनवाई गई थी। बंद पड़ी रहने से इसकी हालत खराब हो रही थी, अतः एव मारवाड के राजा ढोलकसिंह ने इसकी मरम्मत करवाई और यह आदेश दिया कि भविष्य में कोई राजा इसमें हस्तक्षेप न करे और इसकी दुकानों के भाडे का जो मस्जिद के लिए है दुरुपयोग न करें। यहां ढोकलसिंह के रहने का भी संकेत इस लेख से मिलता है।¹⁹

भरतपुर की जामी मस्जिद का लेख (1845 ई.)

इस मस्जिद वाले लेख में दर्ज है कि वृज महाराज बलवन्तसिंह ने आदेश दिया कि नगर में मस्जिद बनवाई जाये। इस आदेश से भरतपुर की मुस्लिम प्रजा तथा सैनिकों ने अपने चंदे से यहां यह मस्जिद बनवाई। इससे भरतपुर

के शासकों की सहिष्णुतापूर्ण नीति पर प्रकाश पड़ता है।

इस प्रकार उपरोक्त मस्जिदों के अभिलेखों में भारतीय इतिहास से संरक्षण में फारसी स्रोतों का अत्यन्त महत्त्व दर्शित होता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान के इतिहास के स्रोत (रा.हि.ग्र. अ.) जयपुर, 1995, पृ. 216
2. डॉ. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान के इतिहास के स्रोत (रा.हि.ग्र.अ.) जयपुर, 1995, पृ. 216-217
3. एप्रिग्राफिया इण्डो मोस्लेमिका, 1911-12, पृ. 15, 30, 33 आदि
4. एप्रिग्राफिया इण्डिका 1957-58, पृ. 45
5. एप्रिग्राफिया इण्डिका 1957-58, पृ. 63-64
6. एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी 1966-67, न.डी. 204
7. एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी 1955-56, न.डी. 153, पृ. 15
8. एप्रिग्राफिया इण्डिका 1957-58, पृ. 69
9. एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी 1966-67, न.डी. 204
10. एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी 1964-65, न.डी. 338
11. एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी 1962-63, न.डी. 210
12. एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी 1969-70, न.डी. 211
13. एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी 1969-70, न.डी. 210
14. एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी 1969-70, न.डी. 152
15. एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी 1969-70, न.डी. 139
16. एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी 1955-56, न.डी. 141
17. एपिग्राफी इण्डियन अरेबिक व पर्शियन (सप्लिमेन्ट) 1968, पृ. 75-76
18. एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी 1965-66, न.डी. 324

सुश्री मनजीत कौर
व्याख्याता
श्री आत्म वल्लभ जैन कॉलेज,
श्रीगंगानगर

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

आत्मविश्वास बढ़ाने में प्रेक्षाध्यान की भूमिका

आज की भागदौड़ भरी जिदंगी में मनुष्य की मानसिक शांति कहीं खो गई है। वह रोज सुबह जिस जोश ओर उत्साह के साथ अपने दिन की शुरुआत करता है, लेकिन जब उसे अपने कार्य में सफलता नहीं मिलती तो वह बहुत निराश हो जाता है जिसके कारण वह तनाव में आ जाता है। इस प्रकार बार-बार हाने वाली असफलताओं और तनाव के कारण व्यक्ति का आत्मविश्वास धीरे-धीरे कम होने लगता है। व्यक्ति के आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए योग एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। योग का शब्दिक अर्थ है— जुड़ना। योग एक ऐसा अनुपम साधन है जो मानव के व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन का कायाकल्प कर सकता है। योग पर वैज्ञानिक शोध कार्यों से अब यह विश्वास दृढ़ होता चला जा रहा है कि योगाभ्यास से रोगों का निवारण व तनाव मुक्ति होती है। इससे योगाभ्यास की आवश्यकता को महत्त्व दिया जाने लगा है। जब व्यक्ति तनाव से मुक्त हो जाता है तो वह पूरे उत्साह से अपना कार्य करता है और सफलता प्राप्त करता है और वहीं सफलता आगे चलकर उसके आत्मविश्वास को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होती है। आत्म-विश्वास वह विश्वास है जो व्यक्ति की स्वयं की योग्यता और ज्ञान पर आधारित है। यही वही विश्वास है जिसमें व्यक्ति कहता है कि 'मैं यह कर सकता हूँ', 'मुझमें यह कार्य करने की योग्यता है'। आत्मविश्वास वह गुण है जो अन्य सभी गुणों और योग्यताओं से बढ़कर है क्योंकि बिना आत्मविश्वास के किया गया कोई भी कार्य फलदायक नहीं होता। आत्मविश्वास एक व्यक्तिगत गुण है। आत्मविश्वास व्यक्ति की सकारात्मक सोच की ओर एक मूल संकलपना है। सकारात्मक सोच के कारण व्यक्ति सफलता की सीढ़ियां चढ़ता जाता है। आत्मविश्वास वह अद्भूत शक्ति है जिसके बल पर अकेला मनुष्य हजारों विपत्तियों का सामना कर लेता है। निर्धन व्यक्तियों की सबसे बड़ी पूंजी और

सबसे बड़ा मित्र आत्मविश्वास ही है। संसार में जितने भी सफल व्यक्ति हुए हैं, यदि हम उनका जीवन इतिहास पढ़ें तो पाएँगे कि इन सभी में एक समानता थी और वह समानता थी आत्मविश्वास की।

आजकल के प्रचलित माहौल में आसनों को ही योग समझा जाता है जबकि आसन तो योग का एक अंग मात्र है। जिससे शरीर को निरोग रखा जाता है। योग के आठ अंगों का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है यथायम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि।

यम:—

मन, वचन व कर्म से प्रकृति के नियमों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य) का पालन करना यम है।

नियम:—

मन, वचन एवं कर्म से स्वयं के शरीर एवं मन पर अनुशासन (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान) का पालन करना नियम है।

आसन:—

शरीर को निरोग रखने के लिए आसन एक साधन है।

प्राणायाम:—

प्राणों पर नियंत्रण रखना प्राणायाम है।

प्रत्याहार:—

इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करना प्रत्याहार है।

धारणा:—

ध्येय पर मन को एकाग्र करना धारणा है।

ध्यान:—

मन एकाग्र हो जाये तो ध्यान है।

समाधि:—

स्थिरता आ जाये तो समाधि है।'

प्रेक्षाध्यान :—

तेरापंथ के नौंवे अनुशास्ता आचार्य श्रीतुलसी का विचार था कि वास्तविक आजादी तभी प्राप्त हो सकती है जब व्यक्ति का नैतिक उत्थान हो। इस उद्देश्य को लेकर 2 मार्च 1949 में अणुव्रत आन्दोलन जीवन मूल्यों के विकास के लिए प्रस्तुत किया गया। अणुव्रत के अंतर्गत छोटे-छोटे नियमों की एक आचार-संहिता के संकलन के माध्यम से व्यक्ति को नैतिक दृष्टि से बलवान बनाने का उद्देश्य था। सैद्धांतिक संकल्पों को व्यक्ति अपनाने का पूरा मन बना तो लेता है पर सभी लम्बे समय तक उन पर दृढ़ रहते हुये आचार नहीं कर पाते, अतः सैद्धांतिक उपक्रम के साथ प्रायोगिक योग साधना की प्रक्रिया का भी सम्मिश्रण हो जाये तो प्रयास निश्चित ही अधिक सफल हो जाते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में प्रायोगिक प्रक्रिया के रूप में प्रेक्षाध्यान प्रवृत्ति प्रसिद्ध दार्शनिक एवं आध्यात्मिक आचार्य श्री महाप्रज्ञ की विश्व को अनुपम देन है। यह प्रवृत्ति उनकी दीर्घकालीन साधना, आर्चा श्री तुलसी की प्रेरणा एवं शोध का परिणाम है। प्रेक्षाध्यान आगम और आगमेतर स्रोत (1996) में आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने आशीर्वचन के अन्तर्गत कहा है, 'प्रेक्षाध्यान का आकार नया है, प्रकार पुराना है। पुराना और बहुत पुराना। प्रेक्षाध्यान प्रवृत्ति धर्म, सम्प्रदाय, जाति के भेदभाव के बिना सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास एवं भाव परिवर्तन में सहायक है।'

इस दृष्टिकोण को मानते हुए प्रेक्षाध्यान के विभिन्न प्रयोग आध्यात्मिक व वैज्ञानिक स्वरूप में 1975 में अभ्यास हेतु मार्गदर्शित किये गये। अब तक लाखों व्यक्ति प्रेक्षाध्यान से लाभान्वित हो चुके हैं।²

प्रेक्षाध्यान से आशय:-

प्रेक्षाध्यान में प्रेक्षा शब्द का संधि रूप है-प्र + ईक्षा। प्र से आशय है गहराई व ईक्षा से आशय है देखना। प्रेक्षा शब्द का अर्थ है- देखना अर्थात् गहराई तक देखना। स्थूल से सूक्ष्म की ओर देखना।

ध्येय:-

प्रेक्षाध्यान का ध्येय समग्र व्यक्तित्व एवं चेतना का विकास उच्चतम स्तर तक करने के लिए चित्त को शुद्ध करना आवश्यक है। मुनि धर्मेश (1996) प्रेक्षाध्यान आगम और आगमेतर स्रोत के अनुसार प्रेक्षाध्यान के निम्न प्रयोजन हैं:- सत्य की खोज, अनासक्ति का विकास एवं आत्म साक्षात्कार ।

प्रेक्षाध्यान के साधक को अपनी दैनिक चर्या में निम्न पांच संकल्प सूत्रों के आचार के अभ्यास को अपेक्षित माना गया है:—

1. भाव क्रिया:—

साधक को अपनी प्रत्येक क्रिया में वर्तमान क्षण के प्रति सजगता को बनाए रखते हुए अपने शरीर व मन को वर्तमान क्रिया से जोड़ना चाहिए तथा इसके साथ अपने ध्येय चित की शुद्धि का सदैव स्मरण रखना चाहिए।

2. प्रतिक्रिया—विरति:—

साधक अपने लक्ष्य के अनुरूप क्रिया करे एवं बाह्य वातावरण, परिस्थितियों, आवेगों, उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रिया से बचे।

3. मैत्री:—

साधक के स्वभाव व व्यवहार में मैत्री का भाव होना चाहिए।

4. मित—भाषण:—

अनावश्यक नहीं बोलना चाहिए। जब अपेक्षा हो तभी बोलना चाहिए।³

5. मिताहार:—

भोजन का ज्ञान होना चाहिए कि किस भोजन का क्या प्रभाव होगा। शरीर की प्रवृत्ति, कार्य की प्रकृति, मौसम व मन की वृत्ति से निरन्तर तालमेल बैठते हुए स्वाद मूर्छा को हरने का प्रयास करना चाहिए।

प्रेक्षाध्यान का ध्येय है: समग्र व्यक्तित्व एवं चेतना का विकास उच्चतम स्तर तक करने के लिए चित शुद्ध करना। इसके लिए सतत् जागरूकता व अप्रमत्ता की आवश्यकता होती है। प्रेक्षाध्यान के ध्येय को प्राप्त करने के लिए इस ध्यान विधि के अन्तर्गत आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने प्रेक्षाध्यान प्रयोग प)ति के अन्तर्गत अभ्यास के लिए तीन अंग बताए हैं:—

1. मुख्य अंग 2. सहायक अंग 3. विशिष्ट अंग

1. प्रेक्षाध्यान के मुख्य अंग:—

ये आठ हैं यथा—कायोत्सर्ग, अन्तर्यात्रा, श्वासप्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा,

लेश्याध्यान, भावना, अनुप्रेक्षा।

1. कायोत्सर्गः—

प्रेक्षाध्यान का पहला चरण कायोत्सर्ग है। यह प्रेक्षाध्यान के सभी अंगों के साथ प्रारम्भ में किया जाता है तथा स्वतंत्र रूप से भी किया जा सकता है। काया + उत्सर्ग अर्थात् काया के ममत्व का विसर्जन व चैतन्य का अनुभव करना। कायोत्सर्ग अभ्यास के अन्तर्गत शरीर को स्थिर, शिथिल और तनाव मुक्त करते हैं, सभी मांसपेशियों को शिथिल कर देते हैं तथा शरीर की पकड़ को छोड़ते हैं और उसके प्रति पूरी जागरूकता बनाए रखते हैं। इस अभ्यास से शरीर के सम्पूर्ण ऐच्छिक तंत्र शिथिल होने लगते हैं व चयापचयी दर कम हो जाती है। इससे शरीर की कार्यप्रणाली के संचालन में व्यय ऊर्जा संचित होने लगती है। आन्तरिक व बाह्य तनाव घट जाते हैं। शरीर की चंचलता कम हो जाती है। इस प्रक्रिया से शरीर में शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक संतुलन बढ़ता है।

2. अन्तर्यात्राः—

यह प्रेक्षाध्यान का दूसरा चरण है। मुनि धर्मेश (2005) के अनुसार "इसके द्वारा व्यक्ति अपनी शक्तियों को उर्ध्वगामी करता है।" शरीर में मेरुदण्ड के भीतर सुषुम्ना स्थित है। मेरुदण्ड के ऊपर से नीचे तक निकलने वाली नाड़ियां सम्पूर्ण शरीर में फैली होती हैं। अतः हमारे तंत्रिका तंत्र द्वारा ही ज्ञानवाही व क्रियावाही तंतुओं की कार्यप्रणाली संचालित होती है। तंत्रिका तंत्र का मुख्य भाग सुषुम्ना है। आध्यात्मिक दृष्टि से सुषुम्ना मार्ग को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। इसके निचले सिरे के आसपास के क्षेत्र को कुण्डलिनि का स्थान माना जाता है। अन्तर्यात्रा के अभ्यास से मनुष्य में चेतना स्तर का विकास होने लगता है।

2. श्वास प्रेक्षाः—

साधारणतः ऑक्सीजन को ग्रहण करना व कार्बन डाई ऑक्साईड को बाहर निकालना श्वास माना जाता है। ऑक्सीजन के ग्रहण से शरीर संचालित होता है व कार्बन डाई ऑक्साईड शरीर की दूषित वायु है जो बाहर निकल जाती है। श्वास का सम्बन्ध हमारे शरीर में मन व प्राण से जुड़ा हुआ है। श्वास प्रेक्षा से आशय—श्वास को गहराई से देखना अर्थात् श्वास के साथ भाव क्रिया की कला है। जो व्यक्ति वर्तमान क्षण में

जीता है उसे भूत व भविष्य की स्मृतियाँ नहीं सताती परिणाम स्वरूप व्यक्ति के कार्य में सृजनात्मकता, कुशलता व पूर्णता स्वतः ही आने लगती है। मन शांत व एकाग्र हो जाता है।

4. शरीर प्रेक्षा:-

मुनि धर्मेश (1991) के अनुसार इस प्रयोग में प्रिय-अप्रिय संवेदनों के प्रति तटस्थता का विकास ही साधक का उद्देश्य होता है। इससे चित्त पटु व दक्ष बनता है। अपने भीतर की सूक्ष्म घटनाओं को देखने में भी सक्षम हो जाता है। अन्ततः शरीर में बहने वाली चैतन्य की धारा को अनुभव करना शरीर प्रेक्षा है। अपने शरीर को खुली आंखों के माध्यम से नहीं देखकर चित्त के माध्यम से वर्तमान क्षण में द्रष्टा भाव से देखने की प्रक्रिया शरीर प्रेक्षा है।

5. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा:-

प्रेक्षाध्यान के इस अंग के अन्तर्गत शरीर के सुप्त चैतन्य केन्द्रों को प्रेक्षा के माध्यम से जगाया जाता है। शरीर में विभिन्न ग्रंथियों के स्थान पर इस चैतन्य केन्द्रों की उपस्थिति मानी गई है। इन चैतन्य केन्द्रों पर अपेक्षानुरूप चित्त को केन्द्रित किया जाता है। यह चित्त का केन्द्रियकरण शरीर के किसी एक स्थान विशेष पर भी हो सकता है या क्रमबद्धता से शरीर के विभिन्न केन्द्रों पर एक साथ किया जा सकता है। यह प्रयोग खड़े-खड़े भी किया जा सकता है। इस प्रयोग में स्थान विशेष पर दृष्टा भाव से प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करते हैं।

प्रेक्षाध्यान प्रयोग पद्धति (1999) के अनुसार मनुष्य शरीर में 13 चैतन्य केन्द्रों की उपस्थिति मानी जाती है, यथा-शक्ति केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र, तैजस केन्द्र, आनन्द केन्द्र, विशुद्धि केन्द्र, ब्रह्म केन्द्र, प्राण केन्द्र अप्रमाद केन्द्र, चाक्षुष केन्द्र, दर्शन केन्द्र, ज्योति केन्द्र, शंति केन्द्र, ज्ञान केन्द्र।

6. लेश्याध्यान:-

प्रत्येक मनुष्य के शरीर के चारों ओर एक आभामण्डल होता है जिसका रंग भाव परिवर्तन के साथ बदलता रहता है। भाव शुद्धि के द्वारा आभामण्डल को विशुद्ध बना सकते हैं और आभामण्डल की विशुद्धि से भाव विशुद्धि को जाना जा सकता है।

7. भावना:-

भाव्य विषय पर चित्त को बार-बार लगाना भावना है।

8. अनुप्रेक्षा:-

परिचित श्रुत का मर्म समझने के लिए जब उसकी पुनरावृत्ति की जाती है। यह अनुप्रेक्षा है। दूसरे अर्थ में ध्यान से विरत होने पर भी उससे प्रभावित मानसिक चेष्टा अनुप्रेक्षा है।

2. प्रेक्षाध्यान के सहायक अंग:-

ये चार हे यथा- आसन, प्राणायाम, मुद्रा तथा ध्वनि।

1. आसन:-

ध्यान के लिए शरीर को साधना आवश्यक माना जाता है। आसनों के अभ्यास से शरीर को स्वस्थ बनाए रखा जा सकता है।

2. प्राणायाम:-

शरीर की प्रकृति के अनुरूप कई प्रकार के प्राणायामों द्वारा इडा ओर पिंगला नाडियों में प्राण प्रवाह संतुलित बनाया जाता है। श्वसन की सम्पक् क्रिया के अभ्यास से शरीर का नाड़ी ग्रन्थि तंत्र संतुलित होता है इससे ध्यान में सहायता मिलती है।

3. मुद्रा:-

मन के भावों के अनुरूप ही शरीर की मुद्रा बन जाती है। आवश्यकता इस बात की है कि जीवन यात्रा में विधेयात्मक भावों की अधिकता बनी रहे। यदि इन भावों के अनुरूप मुद्राओं का अभ्यास किया जाये तो इन भावों में स्थिरता आने लगती है जो लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होती है। शारीरिक मुद्रा द्वारा भावों में परिवर्तन लाया जा सकता है।

4. ध्वनि:-

विशेष ध्वनियों के उच्चारण से शरीर में प्रकम्पन होते हैं व सुप्त शक्तियां जागृत होती हैं। ऐसा माना जाता है कि इन ध्वनियों के उच्चारण से व्यक्ति का नाड़ी ग्रन्थि तंत्र संतुलित होता है।

3. प्रेक्षाध्यान के विशिष्ट अंग:-

ये तीन हैं यथा— वर्तमान क्षण की प्रेक्षा, विचार प्रेक्षा, अनिमेष प्रेक्षा।

1. वर्तमान क्षण की प्रेक्षा:—

इसके अन्तर्गत वर्तमान क्षण को जागरूकता से देखा जाता है।

2. विचार प्रेक्षा:—

इस प्रक्रिया में अपने विचारों के प्रति जागरूक रहने का अभ्यास किया जाता है। इससे बुरे संस्कारों से मुक्त होने में सहायता मिलती है।

3. अनिमेष प्रेक्षा:—

इस प्रक्रिया में पलक झपकाये बिना केवल जागरूकता का अभ्यास किया जाता है। इसमें चेतना की शक्ति जागृत होती है। दृष्टा का बोध विकसित होता है।⁴

अग्निहोत्री (1986) द्वारा किये गये शोध अध्ययन में विलगाव या विमुखीकरण और आत्मविश्वास की कमी के बीच सकारात्मक सम्बन्ध पाया गया। विलगाव या विमुखीकरण का भाव उच्च होने से आत्म-विश्वास में कमी पाई गई।

अग्निहोत्री द्वारा लैंगिक भिन्नता के आधार पर यह पाया गया है व्यस्क लड़के और लड़कियों के आत्मविश्वास में ज्यादा अंतर नहीं था। पूर्व संस्कृति सम्बन्धता के प्रभाव पर भी शोध कार्य हुआ, जिसमें मुस्लिम लड़कियों में बहुत आत्म विश्वास पाया गया एवं वैश्य लड़कियों में उच्च स्तर का आत्म विश्वास पाया गया। वहीं दूसरी तरफ लड़कों में वैश्य ओर अन्य पिछड़ी जातियों के लड़कों की तुलना में मुस्लिम व ब्राह्मण लड़कों में अच्छा आत्मविश्वास पाया गया।

जोशी, गौड़ एवं माथुर ने अपने एक शोध अध्ययन में पाया कि भावातीत ध्यान का नियमित अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों की कण्ठाओं में सार्थक कमी होती है तथा इसके सकारात्मक मूल्यों में सार्थक वृद्धि होती है।

मनावैज्ञानिक विश्लेषण एवं संश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जहां एक ओर समाज में लैंगिक भिन्नता ने आरम्भ से ही समाज को दो विपरीत धाराओं में बाँट दिया वही वर्तमान परिदृश्य में समानता के अधिकार ने युवाओं को, विशेषतः स्त्री वर्ग को एक नवीन आत्मविश्वास दिया है। पैतृक नामांकन की अनिवार्यता ने भी इस संघर्ष में व्यक्ति विशेष को स्थायित्व प्रदान किया है। हालांकि समाज से

जाति वाद समाप्त करना अगली एक सदी तक स्वप्न जैसा ही है।

हीन भावनाओं से ग्रसित व्यक्ति को भावातीत ध्यान का नियमित अभ्यास कृण्ठाओं से निकलने में सहायक हो सकता है और वह जीवन संघर्ष के लिए अधिक सकारात्मक ऊर्जा के साथ सक्षम हो जाता है।

आपी सद्भाव रिश्तों में सकारात्मक, चाहे वह घर हो या कार्यस्थल, दोनों स्थानों में प्रेम एवं सौहार्दपूर्ण व्यवहार से हम अपने आस-पास के वातावरण में सकारात्मक ऊर्जा को प्रवाहित कर सकते हैं। इस प्रकार योग एवं प्रेक्षाध्यान से हम एक नवीन आत्मविश्वास से ओत-प्रोत पीढ़ी का मार्गदर्शन कर सुखी समाज और देश की कल्पना सार्थक कर सकेंगे।

संदर्भ

1. योग: सिद्धान्त एवं साधन, हरिकृष्ण शास्त्री, शिवम प्रिन्टर्स, वाराणसी-2, भारत
2. प्रेक्षाध्यान: आधार और स्वरूप, आचार्य महाप्रज्ञ प्रकाशक: जैन विश्व भारती, लाडनूं
3. प्रेक्षाध्यान: आगम ओर आगमेत्तर, मुनि धर्मेश कुमार, प्रकाशक- जैन विश्व भारती, ला. डनूं
4. जीवन विज्ञान की रूपरेखा, मुनि धर्मेश, प्रकाशक: जैन विश्व भारती, लाडनूं



मुगल लघुचित्र – विशेष संदर्भ कलाकार

संक्षिप्त – लघु चित्रों के अंकन का अभ्युदय प्रमुखतः मध्यकाल में हुआ। प्रारम्भ में पाण्डुलिपि चित्रों के लिए प्रयोग होने वाला यह शब्द वर्तमान में छोटे आकार के व्यक्ति चित्रों के लिए प्रयुक्त होता है। इस विधा के अनेकों उदाहरण विभिन्न शैलियों में दृष्टव्य होते रहे हैं। गुजरात शैली में वसन्त विलास जैन शैली में महावीर का वैराग्य, अपभ्रंश में बालगोपाल स्तुति, बीजापुररागिनी, गोलाकुण्डा शैली में महावीर का वैराग्य, अपभ्रंश शैली में रागिनी मधुमाधवी, मवाड़ शैली में चौर पंचाशिका तथा जोधपुर में दशहरा जैसी अनेक शैलियाँ लघुचित्रों के उदाहरण से ओत-प्रोत हैं।

ईरानी-फारसी मुगल कला का जन्म समरकन्द एवं हिरात था। यही ईरानी शैली मुगल शासकों के साथ भारतवर्ष में आई। मुगल शासक अति कला प्रेमी थे। जिन्होंने कला के अधिकांशतः पहलूओं जैसे स्थापत्य कला वास्तुकला लघु-चित्रण अलंकरण आदि पर ध्यान दिया एवं उन्हें पल्लवित पुष्पित होने का भरपूर अवसर दिया गया।

मूल लघु चित्रों का अंकन की परम्परा बाबर हूमायूँ, अकबर, शाहजहाँ आदि के पश्चात् तक यह परम्परा चलती रही जिसमें इस लघु चित्रण को बनाने के पश्चात् तक यह परम्परा चलती रही जिसमें इस लघुचित्रण को बनाने में कलाकारों को संरक्षण दिया गया। जिन चित्रकारों में मीर सैयद अजी जुदाई और कमालउद्दीन बिहजाद अकबर कालीन बासान, ख्वाजा अब्दुलस्समद (शिराजी) दसवन्त, मनोहर, फारुखबेग, मीर सैयद अली, जहांगीर कालीन अबुलहसन, मोहम्मद नादिर तथा मोहम्मद मुराद विशनदास, गोवर्धन, मनोहर मिस्किन मंसूर आदि प्रमुख थे। जिन्होंने मुगल कालीन चित्रकला के स्वर्णिम इतिहास को रचने में प्रमुख भूमिका निभाई। उपरोक्त तथ्यों पर विस्तृत विवरण आगे वर्णित है।

कीवर्ड –

1. पाण्डुलिपि सज्जा :- मध्ययुगिन काल में हस्तलिखित पुस्तकों को विशेषतया धार्मिक पुस्तकों को, आलंकारिक चित्रों, अक्षरों या परिकल्पनाओं से सजाने की प्रथा जिससे पाण्डुलिपि – सज्जा कला का उदय हुआ।
2. चैत्य :- वह स्थल जिसमें बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा पूजा एवं ध्यान का कार्य किया जाता था।
3. विहार :- वह स्थल जिसको बौद्ध भिक्षु अपने निवास के लिए प्रयोग किया करते थे।
4. नक्काश :- जो नक्काशि करने में निपुण हो।
5. चवर :- जानवरों के बालों से निर्मित एक प्रकार का हवा करने वाला पंखा होता है।
6. जामा एवं साफा :- जामा से तात्पर्य पैजामा या सलवार से है तथा साफा का तात्पर्य दुपट्टा या पटका है।
7. उस्ताद :- किसी भी कार्य में दक्षता रखने वाला व्यक्ति।
8. बस्तान :- फलोंदान।
9. मुरक्का :- एलबम अर्थात् वह पुस्तक जिसमें चित्रों का संग्रह हो।
10. चितेरा :- कलाकार।
11. शबीह :- व्यक्ति चित्र या मुखाकृति।

प्रारम्भिक परिचय – भारत की प्रारम्भिक लघु चित्रों का उदाहरण बौद्ध एवं जैन धर्म ग्रन्थों से प्राप्त होता है तथा लघु चित्रों एवं पटचित्रों के चित्रण परम्परा को जीवित रखने का श्रेय पाल, जैन, गुरात एवं अपभ्रंश को जाता है। पाल शैली जो भारत में 730–1197 ई. तक जीवित रही इसमें सचित्र पोथियों को बड़ा ही रोचक अंकन किया गया था। इन पर भगवान बुद्ध की जीवनी तथा अनेक शिक्षा सम्बन्धी चित्र अंकित हैं, जो जातक कथाओं पर आधारित हैं। इस शैली के चित्रों पर अजन्ता शिल्प का प्रभाव है। पाल कालीन प्राप्त सचित्र पोथियाँ साधनमाला, गन्धव्यूह, करनदेवगुहा, पंचशिखा, महायान बौद्ध पोथियाँ हैं। “बुद्ध योगमुद्रा में कमल पर आसीन” नामक चित्र पाल कालीन प्रमुख चित्रों में से है किन्तु इसके चित्रकार का नाम प्राचीन साक्ष्यों से प्राप्त

नहीं होता है।

जैन शैली का जिन भद्रसूरी के समय का जैन शास्त्रों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने वाला एक बहुमूल्य वृहद पट चित्र है जिसको मुगल राजपूत शैली के पूर्व का सर्वोच्च पट चित्र कहा जाता है तो ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है। श्वेताम्बर जैन धर्म से सम्बन्धित अपभ्रंश शैली के ताड़पत्रीय ग्रन्थ में अंगसूत्र आधनियुक्त जिष्ठिशलाका पुरुष चरित, कथा सरित्सागर उत्तराध्ययन सूत्र, कल्पसूत्र, नेमिनाथचरित, निशीथचूर्णी, दशवैकालिकलधुवृत्ति, संग्रहणीयसूत्र, श्रावकप्रतिक्रमणचूर्णी उल्लेखनीय हैं। इन सचित्र पोथियों का लिपिकाल 1100–1500 ई. के मध्य माना जाता है। ये सभी पोथियां आज भारत के बड़ौदा, पाटन, खंभात, अहमदाबाद तथा जैसलमेर के निजी संग्रहालयों तथा बोस्टन संग्रहालय में सुरक्षित है।

ये सभी पोथी चित्र मुगल लघु चित्रण से पूर्व की भारतीय शैली का परिचायक है किन्तु इन पोथियों के चित्रण का नाम गन्थों से तो प्राप्त नहीं होता है किन्तु विद्वानों का विचार है कि इन चित्रों का अंकन बौद्ध एवं जैन भिक्षुओं ने अपने धर्म के प्रति आस्था को अभिव्यक्त करते हुए चित्रित किया था।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य –

(1) महाविहार चित्रकार (प्रारम्भिक 12वीं शताब्दी, बंगाल)

(2) शाहनामा के चित्रकार (1425–40 पश्चिमी भारत मालवा)

(1) महाविहार चित्रकार (प्रारम्भिक 12वीं शताब्दी बंगाल) – पाल युग बौद्ध मठों में ताड़पत्रों पर पाण्डुलिपि लेखन परम्परा के कारण जाना जाता है जिसके साक्ष्य न्यूयार्क से लेकर लहासा तक संग्रहित एवं दृष्टव्य होते हैं। अष्टासहस्रिका प्रजनाप्रमिला पाल कालीन महाविहार चित्रकारों के द्वारा चित्रित पाण्डुलिपि का श्रेष्ठतम उदाहरण है। इन चित्रों को देखकर स्वतः यह अनुमति हो जाती है कि ये चित्र अपने लेख अंकन से पाण्डुलिपि चित्रण को परिपूर्णता बना देते हैं।

मानव आकृतियों में लयात्मक रेखाएं एवं आंखों को आकर्षित करने वाले रंग का प्रयोग चित्रों में रोचकता प्रदान करता है। चित्रों में विभिन्न मुद्राओं में रंगों का प्रयोग प्रतीकात्मक रूप से किया जाता था। जैसे देवताओं का श्वेत, भक्तों को पीले तथा तारा को हरित वर्ण से सुसज्जित किया गया है। चित्रों

का विषयबहुत उच्च श्रेणी का है जैसे बौद्ध धर्म के संरक्षकों द्वारा दान-पुण्य करना तथा दया करुणा तथा बुद्ध एवं तारा के द्वारा वरदान देते हुए तथा धर्म का प्रचार-प्रसार करते हुए तथा अपने आस्थिकों की रक्षा करते हुए विषयों पर अंकन किया गया है।

3" के ताड़ पात्रों पर चित्रित यह दृश्य बौद्ध धर्म को उसकी लावण्य गुरुत्व के साथ एक कीर्ति स्तम्भ के रूप में उल्लेखनीय रूप से प्रस्तुत करने की क्रिया है।

उदाहरण- भावातिरेक भक्तियों को दण्ड से मुक्त कर वदान प्रदान करती हरति वर्णित तारा - यह कलाकृति हर्षोन्मादित भारतीय धार्मिक पूजा पद्धति का आह्वान करती हुई है। जो भक्ति की दृश्यात्मक रूप से सशक्त अभिव्यक्ति है। इस चित्र में तारा को हरे रंग से प्रतिबिम्बित किया गया है तथा तारा अनेकानेक मोतियों एवं स्वर्णाभूषणों से सुसज्जित एवं अलंकृत है जिसमें लाल वर्ण की लथु धोती अपनी कटि पर लपेटी हुई है तथा तारा के दोनों ओर एक एक दैवीक परिचारिका भक्ति में लीन अंकित है तथा तारा के पश्च भाग में एक स्वर्णिम सिंहासन अंकित है जिस सिंहासन के अलंकृत सतह पर तारा विराजमान है तथा चित्र के पृष्ठभाग में ऊपर की ओर पुष्पों एवं लताओं को बड़ा ही लयात्मक एवं रमणीय रूप में प्रस्तुत किया गया है।

जैन पाण्डुलिपियों से प्रभावित शाहनामा के चित्रकार - परिवर्तन के प्रत्येक चरण पर चित्रकार अपनी उत्पत्ति को अपने परम्परात रूप में प्रकट करता है उसी तरह पाश्चात्य भारतीय चित्रण पद्धति बड़ी ही निकटता से जैन एवं हिन्दू पोथी चित्रों में परलितक्षित होती है। उन्होंने अपनी इस क्षमता को प्रसिद्ध इस्लामिक कथाओं पर चित्रण कार्य किया। फिरदौसी कृत शाहनामा जो एक साहसिक एवं चुनौतीपूर्ण घटना है इस कथा का चित्रात्मक अंकन करना इस्लाम शासकों का उद्देश्य रहा। जिसका हल उन्होंने सिद्ध स्थानीय कलाकारों द्वारा चित्रण कार्य किया। इस काल के संरक्षकों का पारसी साहित्य को उच्च कोटि के पद शैली में लिखवाने में अत्यधिक रुचि थी। इसीलिए उन्होंने महत्वपूर्ण ईरानी चित्रात्मक पटचित्रात्मक साहित्य को पुस्तकालय में स्थान दिया। इस तरह के पट चित्रों में चित्रांकन का प्रमुख उद्देश्य ईरानी चित्रों के समझ के लिए दृश्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करना था। इस चित्र में घोड़े पर सवार योद्धाओं युद्ध पोषाक से सुसज्जित बनाया है तथा चित्र के पृष्ठ को लाल रंग

से रंगा है तथा पश्च भाग में वृक्षों का अंकन है। इस चित्र में व्यक्तियों के चेहरे तीन चश्म में अंकित है। इन चित्रों में चौर पंचासिका चित्रों की झलक दिखाई देती है।

उदाहरण – “जिहुन के तट पर युद्धाभिमुख सियावास एवं अफरासियावः”

यह चित्र लगभग 1425 से 1450 के मध्य मालवा में अंकित किया गया था। जिसका माध्यम अपादर्शीय जलरंग तथा स्याही द्वारा कागज पर अंकन है। चित्र फिरदोशी के शाहनामा का अंकन है। इस चित्र में सियावास तथा वृद्ध अफरासियाव को आपस में वार्तालाप करते दिखाया गया है इस चित्र में लाल रंग का पश्चभाग दूर के परिदृश्य को दिखा रहा है तथा हरा भाग ६ रातल को तथा दोनो राजाओं के मध्य भदूशियों से युक्त मोटी रेखा जिहुन नदी को दर्शा रही है। इस चित्र में अंकित नदी भारतीय लोक शैली को आत्मसात किये हुए है। तथा सैनिकों के द्वारा धारण किये हुए चवर तथा छत का अंकन ईरानी शैली में प्रथम बार हुआ है।

मुगल वंश के शासकों के समय चित्रकला एवं चित्रकारों का स्थान— मुगल वंश के संस्थापक बाबर के शासन काल से ही कला के प्रति रुझान एवं उसके महत्व का साक्ष्य मिलता है। बाबर भारत के नवस्थापित साम्राज्य का अधिकारी होने कारण अपने उच्च कला व्यसन को मूर्त रूप न दिलवा सका किन्तु उसकी आत्मकथा तुजुक—ए—बाबरी से उसके कला के प्रति दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। इस ग्रन्थ में “बगीचे में दावत करते हुए बाबर” नामक चित्र प्रमुख है उसने पारसी कला की समीक्षा करते हुए बिहजाद की आलेखन शैली की समीक्षा की है तथा बिहजाद के विषय में लिखा है कि वह कुशल चित्रकार था परन्तु दाढ़ी रहित युवा चेहरे ठीक तरह चित्रित नहीं करता था। बाबर ने शाह मुजफ्फर के विषय में लिखा है कि वह अच्छा चित्रकार था, जो सादृश्य बनाने में निपुण था परन्तु उसकी जल्दी ही मृत्यु हो गई।

हुमायूँ एक कला, धर्म, साहित्य इतिहास तथा चित्रकला का प्रेमी शासक रहा जिसने चित्रकारों को अपने राज्यभवन में संरक्षण दिया तथा उसके साथियों में चित्रकार भी थे। वे अपनी यात्राओं के दौरान भी चित्रकारों एवं चित्रित पुस्तकों को साथ ले जाता था। एक बार उसके यात्रा के पड़ाव के दौरान उसके खेमे में आकर बैठे एक एक कबूतर को पकड़ कर उसके पंखों को कांटा

तथा चित्रकारों से उसकी तस्वीर बनाकर उसे छोड़ दिया। यह घटना उसके जीवन में कला को उच्च पद प्रदान करती है। उसने अब्दुलस्ममद शीराजी एवं मीर सैयद अली जुदाई दोनों उसके दरबारी चित्रकार बने। अब्दुलस्ममद शीराजी पशु चित्रण करने तथा मीर सैयद अलीग्राम्य चित्रण करने में निपुण था। हुमायूँ के संरक्षण में 'दास्तान-ए-अमीरहज्ज' हम्जानामा का निर्माण हुआ। 'हम्जानामा' चित्रावली मुगल कला का उद्गम ग्रंथ माना जाता है। इसके अतिरिक्त 'नादिर-उल-मूलक-हुमायूँ शाही' नामक ग्रन्थ मीर सैयद अली 'जुदाई' ओर कमालउद्दीन बिहजात आदि मुसव्विरों की चित्रित की हुई है।

अकबर के शासन काल में शिक्षा, संस्कृति व कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ। अकबर ने प्रारम्भ से ही चित्रकारों एवं चित्र कला के विशेष रुचि ली। 'अबुल फजल' ने 'आइने-ए-अकबरी' में लिखा भी है कि बादशाह अकबर स्वयं अपनी मुखाकृति या शहीब बनावाने के लिए बैठा था और अपने दरबारियों के चित्र भी बनवाता था। उसके दरबार में 100 से अधिक चित्रकार फतेहपुर सिकरी के एक भवन में चित्रांकन किया करते थे। इन चित्रकारों में प्रमुख रूप से केशव, महेश, मुकन्दलाल, मिसकिन, फारुखबेग, माधो, जगन्नाथ, ख्वाजा अब्दुलस्समद, मीर सैयद अली शीराजी, तारा, सांवाला, हरिवेश, राम एवं ठोमकरन, दसवन्त एव बसावन आदि प्रमुख चित्रकारों में थे। जिन्होंने रज्मनामा का चित्रण किया।

जहांगीर : सन् 1605 ई. में जहांगीर ने मुगल साम्राज्य की बागडोर संभाली और अकबर की सभी मान्यताओं एवं परम्पराओं को आगे बढ़ाया। मुगल चित्रकला के इतिहास में जहांगीर का काल 'स्वर्ण युग' के नाम से प्रसिद्ध है। जहांगीर के समय में चित्रकारों की स्थिति बहुत अच्छी थी। जहांगीर ने युवावस्था में ही चित्रशाला को संरक्षण दिया एवं चित्रकार नियुक्त किये। जहांगीर ने अपने मुम्बिरों को 'नादिर उल-असर' (युग शिरामणि) नादिर उज-जमां तथा उस्ताद अल-मुसब्बरीन (चित्रकारों शिरोमणि आदि उपाधियों से नवाजा उसके शासनकाल में अबुल हसन बिशनदास, मंसूर, मोहम्मद नादिर, आकारिजा प्रमुख चित्रकार थे।

शाहजहां कला में पाण्डुलिपि-चित्रण की परम्परा अवरुद्ध नहीं हुई किन्तु उनका स्थान गौण हो गया। शाहजहां के अन्तिम शासन काल में सम्पूर्ण हुआ

चित्रितग्रन्थ 'पादशाहनामा' रॉयल लाइब्रेरी विण्डसन में संग्रहीत शाहजहां कालीन सर्वोत्तम कृतियों में से एक है। शाहजहां ने एक चित्र निर्माण से ज्यादा वास्तु निर्माण पर बल दिया। जहांगीर कालीन चित्रों का प्रमुखतः विषय वैभव सम्बन्धी चित्र, राजदूतों का चित्र, पूर्वजों एवं सम्मानितों काचित्र, गोष्ठियों का चि तथा युवतियों एवं बेगमों के चित्र प्रमुख रहे।

औरंगजेब : कट्टर मुसलमान शासक एवं चित्रकला का विरोधी शासक था किन्तु फिर भी उसके युवराज काल से लेकर वृद्धावस्था तक के चित्रि प्राप्त होते हैं। औरंगजेब की युवावस्था का एक व्यक्ति चित्र ब्रिटिश संग्राहलय लंदन में हैं। गोलकुण्डा पर विजय औरंगजेब का वृद्धावस्था का चित्र है। औरंगजेब कालीन चित्रों में मंगल विशेषताएं नगण्य है। चित्रों में सजीवता के स्थान पर स्तब्धता अधिक है ओर कारीगरी की शेष दिखाई देती है।

बसावन (1556–1600 मुगल दरबारी चित्रकार तथा मनोहर का पिता) – बसावन अकबर की चित्रशाला में एक युवा भारतीय चित्रकार के रूप में दाखिल हुआ तथा अपने राज्य में चित्रित होने वाले सभी महत्वपूर्ण पोथी चित्रण के निर्माण में अपना योगदान दिया। अबुल फजल ने अपनी कृति में बसावन की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हुए कहा है कि "बसावन बिलक्षण प्रतिभा का धनी था उसके चित्रों में संयोजन रेखांकन रंगों का चुनाव, व्यक्ति चित्रण आदि का रोचक प्रयोग किया गया है।" मुगल काल के पहले चितरे दसवन्त ने भी बसावन की प्रशंसा की है। चित्रों की परिपक समझ रखने वाले अकबर ने बसावन को उसके चित्रण के उत्तरदायित्व को कुशलता पूर्वक निभाने तथा मुगल कालीन चित्रकला को उसके उत्कर्ष तक पहुँचाने के लिए उसको अनेक पुरस्कार एवं उपहारों से नवाजा। बसावन ने अपने चित्रों में परिप्रेक्ष्य तथा यूरोपीय कला का भी प्रयोग किया।

बसावन 1560ई. में तूतीनामा के चित्रण तक एक सिद्धहस्त चित्रकार के रूप में कार्यरत था। उसने अपने चित्र "संगीत की उत्पत्ति" में अपनी प्रतिभा का कुशलता पूर्वक परिचय दिया है। बसावन ने हम्ज़ानामा के श्रृंखला चित्रण में अक्षुण भूमिका निभाई जिसमें व्यक्ति अंकन, पहाड़ एवं पहाड़ियों वृक्षों को सुव्यवस्थित रूप से चित्रों में प्रयोग किया।

बसावन के चित्रण का सबसे अभूतपूर्व परिणाम यूरोपीय कला को मुगल शैली में प्रयोग करना था। अपने चित्रों में उसने वातावरणीय दृश्यों को रेखीय

परिप्रेक्ष्य के रूप में अतुलनीय प्रयोग किया गया है।

उदाहरण "संगीत की उत्पत्ति" नामक यह चित्र तूतीनामा में चित्रित हैं। इस चित्र में वृक्ष के नीचे पत्थरबैठे चिड़ियाँ मोरठी कर है। ईरानी मिथक कथाओं के अनुसार इस चिड़ियाँके मुख से निकले स्वर संगीत की उत्पत्ति माने गये हैं जो इस चित्र के निर्माण को भी प्रेरणा रहे है। किन्तु इस चित्र के आकर्षण का केन्द्र यह पंक्षी ना रह कर चित्र के मध्य में अंकित वीणा वादक है जो बड़े आकर्षक कालीन पर बैठा है यह चित्र दर्शक के सौन्दर्यानुभूति को जागृत करता है तथा इस चित्र का चित्रकार बसावन है इस बात का परिचय 1976 में प्रमोद चन्द्र ने दिया क्योंकि चित्रों में तीर तरकस, तलवार तथा ढाल का अंकन बसावन के चित्रों का प्रतीक रहे हैं।

अब्दुल समद : यह एक ईरानी चित्रकार था किन्तु हुमायूँ के शासक काल में यह भारत आ गया और इसने अकबरके शासनकाल तक चित्रण कार्य किया। अबुलफजल ने अकबरनामा में लिखा है। अब्दुल समद के निर्देशन में दस संस्करणों में कुल हजारों चित्रों का अंकन हुआ जिसके निर्माण में सात साल की समयाविधी लगी तथा इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए अब्दुल समद ने पूरे भारत में कलाकारों की नियुक्ति की। अकबर ने उसके कार्य भार से प्रसन्न होकर उसे सिरिनकलम की उपाधि प्रदान कीं।

लड़ाई करते दो ऊँट -

इस चित्र का अंकन मुगल कोर्ट लाहौर या फतेहपुर सिकरी में किया गया है। इस चित्र के बायें कोने में चित्रकार का हस्ताक्षर अंकित है जिसमें चित्रकार ने स्वयं के बारे में लिखा है कि इस चित्र को उसने अपने पुत्र सरीफ खान के लिए अपनी स्मृती के आधार पर पिच्चासी वर्ष की आयु में अंकित किया। इस समय तक चित्रकार ही शारीरिक अवस्था जीर्ण तथा नैत्र की रोशनी क्षीण हो चुकी थी। अतः आयु की इस अवस्था में भी अंकित यह चित्र किसी भी मायने में विहजाद के युवावस्था में अंकित दो ऊँटों के चित्रों से कम नहीं है।

फारुख बेग - फारुख बेग सन् 1580 में काबुल आया था। इसके चित्रों पर मध्य ऐशियाई प्रभाव था, पर शनैः शनैः इसने निजी शैली विकसित कर ली थी, उसके बाद में चित्रों पर दक्षिण का प्रभाव दिखाई देता है। फारुख

बेग ने अकबर के काल में चित्रण को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया तथा अकबरनामा के प्रथम चित्रण का श्रेय भी फारुख बेग को जाता है। उसके द्वारा चित्रित “सूरत में अकबर का प्रवेश” नामक चित्र उसकी कला क्षमता का अनूपम उदाहरण है। फारुख बेग द्वारा चित्रित प्रमुख कृतियाँ नौकाविहार केबाद कैंप की ओर लौटता बाबर, घुड़ सवारी करते सुल्तान इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय इब्राहिम आदिल शाह अपने बहुमूल्य हाथी की सवारी करते हुए, सूफी संत तथा फारुखबेग का स्वव्यक्ति चित्रण है।

सूफी संत – यह कृति फारुख बेग की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से एक है। जिसका अंकन 1615 ई. तक आगरा के मुगल कोर्ट में हुआ था। इस चित्र का अंकन फारुख बेग ने अपादर्शीय जल रंगों एवं स्वाही से स्वर्णिम पेपर पर की थी। यह कृति फारुख बेग के चित्रण जीवन का अन्तिम अध्याय है जो उसे विलक्षण स्थान प्रदान करती है। यह चित्र उच्चचित्रकार राफेल सडलर के चित्र की अनुकृति है जो आज भी मेट्रोपोलिटियन म्यूजियम ऑफ आर्ट न्यूयार्क ने संग्रहित है।

केशवदास – केशवदास भारतीय मूल का चित्रकार था। संभवतः अकबर के चित्रशाला में उसकी नियुक्ति ढवाजा अब्द अल समद ने हम्जानामा के चित्रण के समय की होगी। केशव दास ने अपनी सृजनशीलता का परिचय देने के लिए हम्जानामा तथा अन्य रचनाओं में कम सेकम पचपनचित्रों की श्रृंखला तैयार की तथा उसके द्वारा चित्रित व्यक्ति चित्रों ने उसे अकबर के दरबार में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। केशवदास के प्रमुख चित्रों में संत जिरोम का व्यक्ति चित्रण है। यह चित्र यूरोपीय साक्ष्यों से अनुशीलीत है जो 1564 में मेरओकारटोरो द्वारा इंग्रेविंग कार्य है। यह चित्र मुगल काल के चित्रों पर पड़े यूरोपीय प्रभाव का उत्कृष्ट उदाहरण है।

अबुल हसन – जहांगीर ने अबुल हसन को अपने दरबार का सर्वोत्कृष्ट चित्रकार होने का उल्लेख किया है। जहांगीर ने तुजकेबाबरी में उसके समय में अबुल हसन के समान कोई चित्रकान न होने का उल्लेख किया है तथा उसे नादिर उल जमाँ की उपाधि से सम्मानित था। यह उपाधि अबुल हसन को जहांगीर ने उसके द्वारा चित्रित जहांगीर के सिंहासनारोहण में जहांगीर के मुखचित्र को देख कर प्रदान की।

अबुल हसन को बचपन से ही रुचि थी। उसने यूरोपीय चित्रों का गहन अध्ययन किया था। उसने 13 वर्ष की अल्पायु में 'संत जान का सूली पर चढ़ना' वाश पद्धति में अनुकृत किया था। सन् 1610 ई. में उसे अन्य सुन्दर चित्र का निर्माण किया। जिसका शीर्षक 'चिनार वृक्ष पर गिलहरियाँ' है। यह कृति अबुल हसन एवं उत्साद मंसूर की सम्मिलित कृति है।

जहांगीर के सिंहासनारोहणका उत्सव चित्र संख्या (7) यह चित्र दो पेर को जोड़ कर की गई एक बड़ी संयोजन चित्रण है इस चित्र में अनेक व्यक्तियों को एक समूह में बड़ी ही कुशलता के साथ चित्रित किया गया तथा जन समूह के द्वारा अनेकानेक घोड़ों एवं हाथियों का अंकन बड़ा ही रोचक दृश्य प्रस्तुत करता है।

मंसूर: — उस्ताद मंसूर को जहांगीर के चित्रशाला में श्रेष्ठ पद प्राप्त था। जिसे जहांगीर ने नादिर-अल-अस की उपाधि से विभूषित किया। मंसूर के द्वारा चित्रित पुष्पों एवं जीव जन्तुओं का जीवन्त अंकन जहांगीर कालीन चित्रों को सम्पूर्ण मुगल काल के चित्रों से अलग श्रेष्ठ स्थान प्रदान करती है।

अकबर के शासन काल के उपरान्त मंसूर एक श्रेष्ठ कलाकार के रूप में उभरा जो अकबर के शिल्पशाला में कान्हा, मिस्किन एवं बसावन के निर्देशन में कार्यरत थे। मंसूर के चित्रों में नक्काशी के कार्य की अधिकता होने के कारण उसे मंसूर नक्काश के नाम से सम्बोधित किया गया है।

अकबर के द्वारा अनेकानेक प्रकृति अंकन किया जिसमें मोर एवं मोरनी, जेब्रा, दो हिरण, बहुरूपी या गिरगिट, दो बतख आदि प्राकृतिक अंकन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

हार्नवील पंक्षी तथा गिरगिट का अंकन मंसूर ने इतना सहज एवं स्वभाविक किया है जिससे उसका स्थान मुगल शासन के चित्रकारों से सर्वोपरि हो जाता है।

इन चित्रकारों ने मुगल कला को उत्कृष्ट स्थान प्रदान करने के लिए अहम् भूमिका निभाई। जिसमें आर्विद, अबुल-उल-हसन, बालचन्द, बसावन, भूरा, बिचित्र, बिसनदास, धर्मदास, फज़ल, गोवर्धन, हसीम, हीरानन्द, हनहार, जगनाथ, कान्हा, केशवदास, लालचन्द, माधव, महेश, मंसूर, मिस्किन, नरसिंह, पयाग, सूरदास गुजराती आदि प्रमुख रहे।

पयाग बालचन्द का भाई था जिसके कारण पयाग का अकबर के चित्रशाला में प्रवेश किया । पयाग द्वारा चित्रित घोड़ सावारी करते शाहजहाँ, नीलगायों का शिकार करते दाराषिकोह तथा बगीचे में बैठे हूमायुँ आदि श्रेष्ठतम चित्र है। बगीचे में बैठे हूमायू की पगड़ी तथा उसके हाथों में सुशोभित मणि जड़ित कलकी मुगल कालीन वस्त्राभूषण का समृद्ध परिचय प्रदान करना है।

मोहम्मद नादिर भी पेड़ पौधो एवं पुष्पों का चित्रण करने में सिद्धहस्त था। इसकी कृति नरगिस के पुष्प, प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम मुम्बई में सुरक्षित है। विशनदास शबीह बनाने में निपुण था जहाँगीर काल का श्रेष्ठ नमूना एवं विशनदास का नूरजहाँ का शबीह वाला चित्र भी इस कलाकार का श्रेष्ठ चित्र माना जाता हैं। भारत कला भवन, वाराणसी में संगृहीत शेख सूफी संत का चित्र भी विशनदास का बनाया हुआ है जो आज भी विश्व में प्रसिद्ध है।

भारत वर्ष को चित्रकला रूपी सांस्कृतिक धरोहर प्रदान करने में मुगल शासकों का योगदान अक्षुण रह्य है जिन्होंने अपने शासन काल में अनेकानेक चित्तेरो को अपनी प्रयोगशाला में स्थान दिया एवं सृजनशीलता की गुणकारी श्रृंखला को बनाये रखा किन्तु यह कार्य सिद्धहस्त, कला गुणों को जानने वाला तथा सौन्दर्या आदि गुणों से परिपूर्ण चित्रकारों के द्वारा ही संभव हो पाया है जो भारतीय ईरानी एवं यूरापीय प्रभाव को आत्मसात किये हुए मुगल शैली को विश्व पटल पर स्थान प्रदान करने में प्रशंसनीय भूमिका निभाई है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. Suhag shirodkar - Captured in Miniature Mughal lives through Mughal Art, Mapil publishing
2. Milo cleveland Beach - The imperial image painting forthe mughal court. (Freer Gallery of Art Arthur M.Sacker Gallery Maphin Publication)
3. John Gey and Jorrit Brits Chgi - Wonder of the Age, Master Painter of India I100-I900

चन्द्रकला स्वामी
शोधार्थी
पेसेफिक यूनिवर्सिटी,
उदयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

राठौड़ों की ऐतिहासिक धरोहर : नागौर दुर्ग

राजस्थान के ऐतिहासिक दुर्गों में अधिकांश दुर्ग या तो पहाड़ियों पर अथवा बहुत ही ऊंचे स्थानों पर बने हुए हैं लेकिन धरातल परबने दुर्गों में नागौर का दुर्ग ही सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। चाहे मध्यकालीन युग रहा हो या मुगलकालीन, नागौर का किला अनेक कारणों से महत्वपूर्ण रहा। मुगलकाल में यह स्थल दिल्ली एवं सिन्ध के मध्य का व्यापारिक तथा युद्धों की दृष्टि से भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता था। यही कारण था कि नागौर क्षेत्र को जहां मुगल शासकों ने एक सैनिक छावनी के रूप में काम में लिया वहीं यह मारवाड़ के राठौड़ वंशजों के लिए युद्धों एवं राजनैतिक कर्मस्थली के रूप में रही।

ख्यातों में महाराज पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के एक सामन्त कैमास द्वारा इस क्षेत्र की धरती को वीरभूमि जानकर वैशाख सुदी 3, विक्रम संवत् 1211 में नागौर की स्थापना का उल्लेख मिलता है। फारसी इतिहास "तवकतनासिरी" में मिले उल्लेख के अनुसार 1118 ईस्वी सन् में जब महमूद गजनवी के पोते बहरामशाह ने भारत पर चढ़ाई की और मोहम्मद वहलीम को राज्य सौंप कर गजनी चले गये और वहलीम ने ही नागौर का किला बनवाया। चौहानों के उपरान्त कुछ समय नागौर शाहबुद्दीन गौर के तथा दिल्ली के बादशाह बलबन और शमसुद्दीन अल्तमश के अधीन रहा। तुर्कों के साथ अनेक युद्ध झेलता नागौर व मेड़ता आखिर जोधपुर नरेश मालदेव के कब्जेमें आ गया। संवत् 1588 में मेवाड़ के राजा मालदेव उस समय के सबसे शक्तिशाली शासक माने जाते थे। उन्होंने मेड़ता (नागौर) के मालकोट किले का निर्माण करवाया।

विक्रम संवत् 1617 में अकबर के शासकाल में हुए युद्ध में नागौर पर बीकानरे

के तत्कालीन राजा रायसिंह ने अपना कब्जा कर लिया। बीकानेर शासकों के पास नागौर अधिक समय तक नहीं रहा और पुनः मुगलों ने इसे अपने कब्जे में ले लिया। संवत् 1620 में मारवाड़ के राजा गजसिंह के समय नागौर एक परगने के रूप में पुरस्कार रियासत बन गया। शाहजहां के समय राव अमरसिंह राठौड़ की मृत्यु के उपरान्त यह परगना अमरसिंह के पुत्र रामसिंह, रामसिंह के पुत्र हरिसिंह, इनके पुत्र अनूपसिंह, इन्द्रसिंह व मोहकमसिंह को मिलता गया। संवत् 1726 में मारवाड़ के राजा जसवंतसिंह की मृत्यु के पश्चात औरंगजेब के शासन में नागौर का परगना पुनः जसवंतसिंह के पुत्र पृथ्वीसिंह के अधिकार में आ गया। संवत् 1737 में एक बार पुनः मारवाड़ के राठौड़ों पर संकट आया और आसपास के राजा आपस में बंट गये।

संवत् 1742 में राठौड़ राजा आपस में मिलकर मुगलों के खिलाफ युद्ध करने की तैयारी में जुट गये और इस युद्ध के बाद संवत् 1744 में पुनः मारवाड़ का अधिकांश भाग राठौड़ों के पास आ गया तथा मारवाड़ राज्य पर अजिसिंह का राज्याभिषेक हुआ। संवत् 1763 में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् शक्तिशाली राजा अजितसिंह ने मुगल सेना को चारों ओर से घेर लिया और उन्हें खदेड़ दिया। अजितसिंह की मृत्यु के बाद एक बार फिर मारवाड़ राज्य का पतन हो गया। इस समय नागौर एक मुगल राज्य का हिस्सा था।



राजा बख्तसिंह का महल

राजा बख्तसिंह के शासनकाल में संवत् 1809 में नागौर के किले को सुदृढ़ बनाये जाने की पुष्टि जनरल जेम्स टाड भी करते हैं। बख्तसिंह ने मारवाड़ राज्य

पर अपना कब्जा करने के लिए नागौर दुर्ग को ने केवल सुदृढ़ बनाया बल्कि किले में विशाल तोपों और प्रचुर युद्ध सामग्री को भण्डारण भी किया। इस किले की यह विशेषता रही है कि बाहरी क्षेत्र से गोला दागने पर कियल की प्राचीर से भी ऊंचाई पर बने हुए महालों को किसी भी प्रकार का खतरा नहीं होता था।

किले के मुख्य द्वार पर दोनों ओर विशाल बुर्ज और कलात्मक झरोखे हैं। यह किला कुल 28 विशाल बुर्जों के साथ दोहरे परकोटे के रूप में सुरक्षात्मक ढंग से बना है। पहले परकोटे की ऊंचाई धरातल से 25 फीट है। तथा इसके सहरो ऊपर की ओर दूसरा परकोटा है जिसकी ऊंचाई धरातल से 50 फीट है। परकोटे के भीतर की ओर प्राचीर के सहारे चारों ओर घुमावदार रास्ता बना हुआ है। इस रास्ते से चल कर सुरक्षाकर्मी बाहर की स्थिति का भली प्रकार से जायजा ले लेते थे तथा प्राचीर में बने छेदों से बन्दूको द्वारा गोलियां दागी जाती थी। बुर्जों पर विशाल तोपें भी रखी हुई थी।

किले के मुख्य द्वार के चलने पर क्रमबद्ध 6 बड़े, दरवाजों से होकर महलों की ओर जाना होता है। सिराईपोल, बिचलीपोल, कचहरीपोल, सूरजपोल तथा अंत में राजपोल से किले के दो रास्ते हो जाते हैं। दाहिनी ओर रास्ता महलों की ओर जाता है। और दूसरा रास्ता गणेशपोल की तरफ से होता हुआ प्रसिद्ध मंदिर की ओर जाता है। किले मध्य सबसे पहले सुन्दर कलात्मक बादल महल आता है। इस मल की ऊपरी मंजिल और रानियों के बैठने के झरोके बने हैं। इस मकल में सुन्दर कलात्मक भित्ती चित्र बने हुए हैं। जो दर्शकोकं को अनायास ही आकर्षित करते हैं। बादल महल में संगमरमर से बना पानी का एक कृत्रिम झरना और स्नानघर बने हुए हैं। बादल महल को अब किले का संग्रहालय बनाया जा चुका है।

बादल महल के ठीक सामने राजा बख्तसिंह का दो मंजिला महल है यहां के ऊपरी भाग में झरोखों से शहर के बाहरी क्षेत्र को आसानी से देखा जा सकता है। इस महल के पीछे की ओर रानियों के 15 आवास हैं। जिसमें कांच की सुन्दर पच्चीकारी है। इस मल के भीतर से एक रास्ता 17 फव्वारों के ताल की ओर जाता है। रानियां इस ताल में अपनी दासियों के साथ जल क्रीड़ाएं करती थी। बख्तसिंह महल के सामने की ओर एक सुन्दर कृत्रिम तालाब बना हुआ है। इसके किनारे ऊंची

सीढ़ियों से एक रास्ता राव अमरसिंह राठौड़ की हाड़ी रानी के भव्य दो मंजिले महल की ओर जाता है। इस महल की मनोहारी चित्रकारी तथा झरोखों पर बारीक शिल्पकला देखते ही



हाड़ी रानी का महल

महलों के पास ही 36 कलात्मक खम्भों की बारादरी और इसके निकट ही चौकोर सुन्दर तालाब है जिसके बीच में चारोंक से खुली दो मंजिली विश्राम स्थली बनी हुई है।

किले में महलों के दक्षिण में शाहजहां के समय की बनी एक मस्जिद है। तो प्राचीर पर बने पुराने मन्दिर है।² पानी के लिए किले में एक बावड़ी तथा तीन कुएं हैं। नागौर किले में पानी की ऐसी सुदृढ़ व्यवस्था है। कि वैज्ञानिकों ने भी इसे देखकर आश्चर्य प्रकट किया।

नागौर (135 किमी.)

राजपूतों के अद्भुत नगरों में से एक नागौर विशालकाय परकोंटों व प्रभावशाली प्रवेश द्वारों से घिरा है। यह नगर मुगल सम्राट शाहजहां से राजा अमरसिंह राठौड़ को प्रदान किया था। यहां स्थित ऐतिहासिक किले में शानदार महल, मंदिर व भव्य इमारतें हैं। किले में स्थित महलों में मोती महल, बादल महल और हवा महल, सभी पुरातत्वीय रचना के गौरव हैं। बारादरी की दीवारों कई उत्कृष्ट भित्ति चित्रों से अलंकृत हैं, जिसमें फारसी व पारंपरिक नागौर शैली का सम्मिश्रण है। रामायण व महाभारत की विभिन्न घटनाओं से चित्रित दीवारें व प्रवेश द्वार हैं नागौर के मंदिरों का विशेष आकर्षक है।

यहां स्थित जैन मंदिरों में भगवान महावीर व पार्श्वनाथ के जीवन सम्बन्धी दृश्यों को चित्रित किया गया है। साथ ही 15 वीं शताब्दी की उल्लेखनीय तरकिन की दरगाह देखने योग्य है। यहां हर वर्ष जनवरी-फरवरी माह में पशु मेला भरा जाता है जिसमें देश भर पशुपालक अपने पशुओं को लेकर यहां आते हैं। चार दिन के इस मेले में पगड़ी धारी विक्रेताओं व उत्सुक खरीददारों के साथ गाय, बैलगाड़ियों भेड़ों व ऊंटों से इस शहर का माहौल कोतूहल भरा तथा रंगीन हो जाता है। वहीं मुर्गों व सांडों की लड़ाई, ऊंटों की दौड़ लोक नृत्य व संगीत, मेले के उत्साह को और बढ़ा देते हैं।³

संदर्भ ग्रन्थ

1. कला दीर्घा अंक 29 पृष्ठ 12
2. राजस्थान सृजस फरवरी-मार्च 95 पृष्ठ 38
3. पधारो राजस्थान पर्यटक गाईड एवं मानचित्र अंक 40 पृष्ठ से 58 पृष्ठ तक



जहांगीर कालीन लघु चित्रों में प्राकृतिक अंकन

संक्षिप्त – 1550 से 1871 ई. तक भारत में पल्लवित पुष्पित होने वाली कला का आधार ईरानी शैली रही है। जिसके कारण भारतीय मुगल चित्रकला में इसकी गहरी छाप परिलक्षित होती है। इस्लाम में मानव या जीवधारियों को चित्रित करना धर्म निषिद्ध था। जिन कारणों से मुगल लघु चित्रों में सूक्ष्म आलंकारिक आलेखनों एवं ज्यामितीय रूपाकारों का अत्यधिक प्रयोग हुआ। प्रारम्भ में इस्लामी चित्रकार आकृति चित्रण एवं जीवधारियों के चित्रण की ओर उदासीन रहे किन्तु शीघ्र ही उनकी धार्मिक कट्टरता का भाव शुप्त पड़ गया तथा पशु-पक्षियों मानवाकृतियों एवं फूल पत्तियों का अंकन लोकप्रिय हो गया।

मुगल काल की स्थापना तो बाबर ने की मुगल वंश का चहुँमुखी विकास अकबर के काल में हुआ तथा मुगल चित्रकला के इतिहास में जहांगीर का काल स्वर्ण युग के नाम से प्रसिद्ध है। सन् 1605-1627 ई. के शासन के दौरान जहांगीर के अकबर की सभी मान्यताओं एवं परम्पराओं को आगे बढ़ाया। वस्तुतः मुगल कालीन समस्त शासकों शासन काल में प्राकृतिक अंकन हुआ किन्तु जहांगीर के शासन काल में सर्वाधिक एवं विस्तृत प्राकृतिक अंकन हुआ।

जहांगीर के शासन काल में महिलाएँ भी चित्र अंकित किया करती थी। जिसमें साइकाबानों, नादिराबानो, रुकइमबानो प्रमुख थी। जहांगीर के शासनकाल में अनेको हिन्दू एवं मुस्लिम चित्रकारों को संरक्षण प्राप्त था। जिन चित्रकारों में अबुलहसन जिसे नादिर उल जमा की उपाधि से नवाजा गया था। जिसका चिनार वृक्ष पर गिलहरियाँ श्रेष्ठ प्रकृति चित्र है। उस्ताद मंसूर जिसके द्वारा चित्रित बाज पक्षी का यह चित्र कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है। मोहम्मद नादिर पेड- पौधों एवं पुष्पों का चित्रण करने में निपुण था।

Key Words -

1. लघु चित्र – प्रारम्भ में लघु चित्रों को पाण्डुलिपियों के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। ये चित्र पटों एवं ताड़ पत्रों पर छोटे आकार में चित्रित किये जाते थे।
2. लेपिस्लाजुली – प्राकृतिक पदार्थ जिसको नीले रंग के लिए प्रयोग किया जाता था।
3. तबक – हासियों पर सोने का वर्क चिपकाना।
4. एक चश्म चेहरे – एक चश्म चेहरे में उसके प्रत्यंगों जैसे— नाक, होठ, ललाट और टुड्डी की सीमान्तर रेखा बना दी जाती है।
5. प्यौडी – पीला रंग जो प्यौडी के पुष्पों से प्राप्त होता था।
6. हिंगुल – संगरफ रंग।

प्रारम्भिक परिचय – मुस्लिम धर्म की शुरुआत के साथ ही ईरान से जिस कला शैली ने जन्म लिया वह भारत में प्रारम्भिक मुगल कला के सूत्रपात का आधार रही। इस्लाम में अल्लाह की निराकार रूप में कल्पना की गई है। जिसका प्रभाव चित्रकला पर ही पड़ा। अतः इस्लाम में मानव या जीवधारियों को चित्रित करना धर्म निषिद्ध था। जिसके कारण चित्रकला के सूक्ष्म आलंकारिक आलेखनों एवं ज्यामितीय रूपाकाकारों का अत्यधिक विकास हुआ। प्रारम्भ में इस्लामी चित्रकार आकृति चित्रण एवं जीवधारी चित्रण की ओर उदासीन रहे। किन्तु शीघ्र ही उनकी धार्मिक कट्टरता शिथिल पड़ गई और यह बन्धन से मुक्त होते ही पशु-पक्षियों, मानवाकृतियों एवं फूल पत्तियों का अंकन लोकप्रिय हो गया।

ईरान में चित्रकारों को प्रोत्साहन देने वाला तथा कला के महत्व की कदर करने वाला शासक तैमूरी का पुत्र शाहरुख महान कला प्रेमी शासक था। उसने हिरात नगर को अपनी राजधानी बनाया और हिरात में कला केन्द्र विकसित हुआ। जिसने अपने शिष्यों के साथ मिलकर समस्त देशी विदेशी तत्त्वों का समन्वय किया। भारत में अकबर ने शासन से पूर्व जितने भी मुस्लिम शासक रहे उनके संरक्षण में रहे। सभी दरबारी चित्रकारों ने ईरानी शैली में अंकन किया किन्तु जहांगीर कालीन चित्रों में यह परम्परा समाप्त हुई एवं नवीन रूप से पल्लवित हुई।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: – भारत में मुगल शासकों का शासनकाल क्रमशः

इस प्रकार रहा—

1. बाबर (1526—1530ई.)
2. हुमायूँ (1530—1556ई.)
3. अकबर (1556—1605ई.)
4. जहांगीर (1605—1627ई.)
5. शाहजहाँ (1628—1658ई.)
6. औरंगजेब (1658—1707ई.)

बाबर (1526—1530ई. तक) — भारत में मुगल वंश का संस्थापक बाबर रहा अतः उसके शासनकाल से ही ईरानी प्रभाव लिए भारत में मुगल चित्रकला का विकास हुआ। बाबर काबुल से आया एवं इब्राहिम लोदी को परास्त किया। इब्राहिम लोदी अपने प्रकृति प्रेम एवं बाग-बगीचे के सौन्दर्यीकरण के लिए प्रसिद्ध संरक्षण प्राप्त चित्रकारों को बुलाया किन्तु अल्प समय के कारण वह अपनी कला पिपाशा को मूर्त रूप नहीं दिलवा पाया। उसने अपनी प्रसिद्ध स्मरणीय पुस्तक बाबरनामा में अनेकों रोचक घटनाओं का वर्णन किया है। जिसकी चित्रात्मक प्रस्तुति उसके प्रपोत्र अकबर द्वारा करायी गयी है। अपने संस्मरणों में फारसी कलाकार की ओर विशेषतया बिहजाद के आलेखन शैली की प्रशंसा की है किन्तु उसकी आलोचना करते हुए कहा है कि वह दाढ़ी रहित युवा चेहरे ठीक तरह चित्रित नहीं करता था।

हुमायूँ (1530—1556ई.) — हुमायूँ को बाबर की तरह कला धर्म, इतिहास एवं काव्य में अत्यधिक रुचि थी। किन्तु चित्रकला के प्रति उसका विशेष रुझान था। विद्वानों के अनुसार वह अपनी युद्ध यात्राओं के दौरान एक सचित्र पुस्तकें रखता था एवं अवकाश के क्षणों में उन्हें देखकर अपनी कलाभिरुचि संतुष्ट करता था अपनी यात्राओं के दौरान चित्रकारों को भी ले जाता था। हुमायूँ के संरक्षण में दास्तान-ए-आमीर हम्ज़ा का निर्माण हुआ। जिसे चित्रावली मुगल कला का उद्गम ग्रन्थ माना जा सकता है। हुमायूँ कालीन चित्रकारों में प्रमुख चित्रकारों में मीर सैयद् अली जुदाई एवं कमालउद्दीन बिहजात आदि प्रमुख चित्रकार थे।

अकबर (1556—1605ई.) — अकबर के शासन काल तक उत्तरी भारत में एक विस्तृत समृद्ध साम्राज्य स्थापित हो चुका था और साथ-साथ इसी

सुखद एवं शान्त वातावरण में ललित कलाओं का भी दिनोदिन विकास हुआ। जहांगीर के आत्मकथा 'तुजुक-ए-जहांगीरी' में स्पष्ट उल्लेख है कि अकबर ने भवन कला तथा चित्रकला को विशेष महत्व प्रदान किया और इसे नवीन रूप देने में अपनी उदारता का परिचय दिया। अकबर के कला प्रेम एवं गुणग्राही स्वभाव के यथार्थ का पता अबुल फज़ल की पुस्तक आइने-ए-अकबरी से भी मिलती है।

अकबर कालीन चित्रों में प्रकृति को स्थान – अकबर कालीन चित्रों में भी प्रकृति अंकन प्रमुख विषयवस्तु के रूप में तो नहीं हुआ किन्तु चित्रों के पृष्ठभाग एवं सहायक सौन्दर्य कारकों के रूप में प्राकृतिक अंकन का बाहुल्य है।

अकबर कालीन चित्रकार मनोहर द्वारा अंकित कमरघ में अकबर द्वारा शिकार नामक चित्र में अनेकों शिकारी जानवारों का अंकन किया गया है। इस चित्र में घोंडे पर सवार अकबर अपनी तलवार से एक भेड़िये का शिकार कर रहे हैं तथा अनेकों जानवर अपनी प्राण की रक्षा एवं दूसरे कमजोर जानवारों को अपना आहार बनाने की होड़ में इधर-उधर भाग दौड़ रहे हैं। इस चित्र से जीवन के सत्य का बोध होता है कि कमजोर सदैव शक्तिशाली का आहार रहे हैं। इस चित्र में कुत्ता लोमड़ी का शेर हिरण का, सियार खरगोश का शिकार करते चित्रित हैं।

आदिल शाह द्वितीय – फारुख बेग का चित्रित घुड़सवारी करते हुए सुल्तान इब्राहिम में प्रकृति का अनुठा संयोजन है। पूरा दृश्य वृक्ष, पौधों, लता-पत्रों से ओत-प्रोत हैं। इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय पूर्ण सुसज्जित गतिमान घोंडे पर बैठ कर अपने हाथों में स्वेत रंग का बैठा हुए जा रहा है लता पत्रों का बाहुल्य के कारण चित्र में हरे रंग का प्रयोग हुआ तथा चित्र में घोंडे के अतिरिक्त शारस, शियार, तीतर, पहाड़ों का अनोखा लयात्मक चित्रण अंकित है। अतः कहीं न कहीं अकबर कालीन चित्रों में प्रयुक्त प्रकृति अंकन ने जहांगीर कालीन चित्रकारों को प्राकृतिक अंकन के लिए प्रोत्साहित किया होगा।

जहांगीर (1605-1627ई.) – सन् 1605 ई. में जहांगीर ने मुगल साम्राज्य की बागडोर संभली और अकबर की सभी मान्यताओं एवं परम्पराओं को आगे बढ़ाया। मुगल चित्रकार के इतिहास में जहांगीर का काल स्वर्ण-युग के नाम से प्रसिद्ध है। जहांगीर स्वयं एकसर्वगुण-सम्पन्न उच्चकोटि का कला पारखी चित्रकार, उदार प्रेम की, लेखक योग्य न्याय प्रिय शासक एवं प्रकृति सौन्दर्य

उपासक बादशाह था।

श्री रायकृष्णदास के अनुसार — “जहांगीर बड़ा ही सहृदय, सुरुचि सम्पन्न पहले दर्जे का चित्र प्रेमी प्रकृति सौन्दर्य उपासक, वृक्ष-खग-मृगविज्ञानी, संग्रहकर्ता, विशद वर्णनकार और सबसे अधिक जिज्ञासु निसर्ग, निरीक्षक एवं प्रभाववादी था।”

जहांगीर का नूरजहां से सम्बन्ध जुड़ने के उपरान्त ही उसका चित्रकला से लगाव बढ़ने लगा। भारतीय कलाविदों के अनुसार सुन्दरी नूरजहां के सहयोग से जहांगीर की भाव-प्रवण प्रकृति चित्रकला और विशेषतः प्रकृति चित्रों की ओर अधिकाधिक आकृष्ट हुई और इसी का प्रभाव था कि उस्ताद मंसूर को उसने सैकड़ों प्रकार के पुष्पों को चित्रित करने का आदेश दिया।

जहांगीर कालीन सौन्दर्य अवलोकन करते हुए वाचस्पति गैरोला ने लिखा है कि— “मानवीय, अभीसप्साओं, आचरणों और भावनाओं के ठीक अनुरूप चित्र, जहांगीर के समय ही बने है।”

जहांगीर कालीन कला की प्रमुख विशेषता यह है कि वह ईरानी प्रभाव से मुक्त थी और जहांगीर की मनोवृत्तियों के अनुसार चित्रकारों ने अपनी शैली में परिवर्तन कर लिया था।

जहांगीर काल में चित्रकारों की स्थिति — जहांगीर के शासन काल में चित्रकारों की स्थिति बहुत अच्छी थी। जहांगीर ने युवावस्था में चित्रशाला का संरक्षण दिया एवं चित्रकार नियुक्तकिये। चित्रकार जहांगीर के दरबार में मनसबदार भी थे। ये चित्रकार, फारसी, हिन्दू एवं मुसलमान थे। जहांगीर के दरबार में चित्रकार की सुनिश्चित स्थिति देखकर विभिन्न फारसी चित्रकार उसकी शरण में आये। इन चित्रकारों ने कुलमाक का प्रसिद्ध चित्रकार ‘फारुख बेग’ हिरात देश का ईरानी चित्रकार आकारिजा तथा उसका पुत्र अबुलहसन, स्माक का मोहम्मद नादिर तथा मोहम्मद मुराद आदि चित्रकार जहांगीर के दरबार में सूदूर देश से आये थे।

जहांगीर के शासन काल में महिलाएँ भी चित्र अंकित करती थी, जिनमें साइफाबानो, नादिराबानो, रुकइमबानो प्रमुख चित्रकार रही। इसके चित्रात्मक साक्ष्य भारत कला भवन वारणसी से प्राप्त है। जिसमें स्त्री चित्रकार एक अन्य स्त्री चित्रकार का शबीह लगा रही है।

जहांगीर कालीन चित्रों में प्रकृति स्थान — प्रकृति अंकन मुगल कला में

उच्च स्थान पर रहा है कभी चित्र की पृष्ठिका का के रूप में तो कभी चित्रों के हाशिये के रूप में अनेको पुष्प एवं पशु-पक्षी अलंकरण किये गये हैं किन्तु जहांगीर कालीन चित्रों के माध्यम से कर सकते हैं।

चिनार के वृक्ष की गिलहरियाँ इस चित्र के निर्माण का समय 1610 ई. में माना जाता है जिसे अबुल हसन एवं मंसूर ने सम्मिलित रूप से अंकित किया था। इस चित्र में चिनार के पत्ते चित्र के आकर्षण का केन्द्र रहे हैं एवं उन पर क्रीड़ा कर रहा है। चित्र में चित्रित गिलहरियाँ एवं शिकारी अभारतीय दृष्ट्य हो रहा है। चिनारका वृक्ष, वृक्ष से उड़ती हुई एवं वृक्ष की ओर आती हुई अनेको पक्षियों का आश्रय है। वृक्ष के नीचे अंकित पुष्पों एवं लता पत्रों का अंकन सुन्दरतापूर्ण है तथा चित्र के पश्च भाग में अंकित घुमावदार पर्वतों की श्रृंखला अति रोचक है। कुल मिलकार दृश्य को देखकर हृदय में प्रसन्नता का भाव उत्पन्न होता है।

चीनार के वृक्ष पर गिलहरियाँ नामक इस चित्र के बनाने के उद्देश्य की आलोचना करते हुए 'जनंतज बंतल मसबी ने अपनी पुस्तक 'उचमतपंस उनहींस चंपदजपदह में कहा है कि "क्या कोई भी शिकारी पेड़ पर चढ़ कर गिलहरियों को पकड़ सकता है यह चित्रकार की बेवकूफी का ज्वलन्त उदाहरण है। इस चित्र का विषय इंसिपदह दुविधापूर्ण है तथा मुगल प्राकृतिक चित्रण के अंकन में यह विषय ऐतिहासिक स्थान रखता हो किन्तु इस चित्र के चित्रण का उद्देश्य ऐतिहासिक नहीं है।"

मोर एवं मोरनी इस चित्र में एक मोर एवं मोरनी का बड़ा ही स्वाभाविक अंकन किया गया है जिसे जहांगीर कालीन विख्यात चित्रकार मंसूर ने चित्रित किया था। इस चित्र में मोर ने अपनी चोंच में एक छोटे से सांप को पकड़ा है जिसे वो खाने का प्रयत्न कर रहा है। तथा मोरनी गर्दन को घुमाकर टकटकी लगा कर देख रही है। चित्रों को वास्तविक दिखाने के लिए मोर एवं मोरनी के निचले भागों में श्वेत रंगों का प्रयोग है। मोर की गर्दन में लेपिस्लाजुली के एवं वरमिलीयम रंग का प्रयोग पंखों के ऊपर भी में करने से चित्र जीवन्त हो उठा है। ऐसा प्रतीत होता है कि चित्र को एक बार बनाने के उपरान्त पुनः कार्यशाला में रंगों का विधिवत प्रयोग हुआ है। आसमान में उड़ते पक्षी एवं हवा के झोकों से लहलाते पेड़-पौधे चित्र में एक लयात्मक प्रभाव उत्पन्न

कर रहे हैं। सम्पूर्ण चित्र पूर्णतः संयोजित एवं सुन्दर है।

जेब्रा: — इस चित्र का भी अंकन उस्ताद मंसूर ने किया। इस चित्र मेंकेवल एक जेब्रा का अंकन किया गया है। जहांगीर ने अपने चिड़ियाघर में अनेको प्रकार के जानवर पाले थे। जिसमें जेब्रा भी था जिसका अंकन जहांगीर ने मंसूर द्वारा करवाया यह चित्र अपने विषय के कारण अद्वितीय था। जिसे देखकर लोग काल्पनिक चित्रण मानते थे किन्तु बाद में लोगों को इस की वास्तविकता सात हुयी और जहांगीर ने इसे अपने भाई शाह अब्बास को शाही उपहार स्वरूप भेंट किया।

दो हिरण इस चित्र का अंकन भी उस्ताद मंसूर ने किया था जिसमें उसने अपारदर्शीय जलरंगों एवं स्वर्ण रंगों का पेपर पर प्रयोग कर चित्रांकन किया था। इस चित्र में दो हिरण को तालाब के किनारे घास खाते हुए चित्रित किया है चित्र में कालीननुमा बीछी हुई घासे चित्र को और भी रमणीय बना देती है।

इन चित्रों के अतिरिक्त जहांगीर के काल में अनेको चित्रण हुए जिसकी प्रमुखतः विषयवस्तु तो प्रकृति न रही किन्तु परोक्ष रूप से चित्र की सुन्दरता बढ़ाने के लिए पुष्पों, पशु एवं पक्षियों का अंकन भी हुआ जो चित्र की महत को बढ़ाने में सर्वोपरि कारक बने।

उदाहरणार्थ: — जहांगीर के फोटो के साथ औरते नायक चित्र में एक औरत शायद वह नूरजहां है, के हाथों में एक जहांगीर के फोटो लिए अंकित किया गया है तथा उस औरत के दोनों ओर एक एक पुष्प का पौधा अंकित किया गया है जो चित्र को पुष्पों के समान कोमलता प्रदान कर रहा है।

निष्कर्ष — जहांगीर कालीन चित्रों को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि जहांगीर अति प्रकृति प्रेमी था। जिसके कारण उसके द्वारा आश्रय प्राप्त चित्रकारों ने प्रकृति को चित्रण में सर्वोपरि स्थान दिया जिसमें उस्ताद मंसूर को अत्यधिक श्रेय जाता है जिसे जहांगीर ने नादिर उल्त जमाँ (वदकमत व जिम हम) की उपाधि से नवाजा। प्रकृति का ऐसा श्रेष्ठतम चित्रण मुगल काल में पहले दृष्टव्य नहीं हुआ है। जहांगीर कालीन चित्रकला ईरानी प्रभाव से मुक्त होकर एक नवीन रूप से पनपी शैली में परम्परा के स्थान पर यथार्थ आ गया। जहांगीर ने प्रकृति उपासक होने के फलस्वरूप ही एक संभव हो पाया है। प्रकृति के अंकन जैसे— फूल, पेड़, पहाड़, वृक्षों के तने, पत्ते बादलों के अंकन में तथा

पशु-पक्षियों के चित्रण में अत्यधिक स्वाभाविकता आई है। घोड़ो, हाथियो, मोरो व अन्य पक्षियों उदाहरण हमें प्राप्त हुए हैं वो ऐसे प्रतीत होते हैं मानो जैसे चित्रों को चित्रित न करके उनकी तस्वीर खींच कर रख दी गई हो।

जहांगीर काल के चित्रों में रंगों में सूफियानापन व परस्पर मिश्रित रंग तथा एक ही रंग केतानों का प्रयोग हुआ है। छाया-प्रकाश का प्रयोग यथार्थता व स्वाभाविकता लाने के लिए किया गया, जो बाद वाले चित्रों में पाया जाता है। चित्रों में स्वर्ण रंग का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में होने लगा था। इन्हीं कारणों से जहांगीर कालनी कलाकृतियाँ अन्य शासकों के शासन काल में चित्रित कलाकृतियों से भिन्न लगी और इस कारण से शासन काल को स्वर्ण काल से नवाजा गया है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. Suhag shirodkar - Captured in Miniature Mughal lives through Mughal Art, Mapil publishing
2. Milo cleveland Beach - The imperial image painting forthe mughal court. (Freer Gallery of Art Arthur M.Sacker Gallery Maphin Publication)
3. John Gey and Jorrit Brits Chgi - Wonder of the Age master Painter of India I100-I900 (Mapin publishing Ahemdabad.)
4. Start Cary welch - Imperial Mughal Painting (George Braziller, New York) 1978
5. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास (राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर) ग्यारवा संस्करण 2011

गिरिराज शर्मा
प्रवक्ता, मूर्तिकला
इंडिया इंटरनेशनल कॉलेज
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

समकालीन मूर्तिकला में प्रयुक्त पदार्थ एवं माध्यम

कलाकारों ने अपनी अभिव्यक्ति को व्यक्त करने के लिए अनेक माध्यमों का प्रयोग किया है। यह प्रक्रिया प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल में अनवरत रूप से जारी है। कला का विकास सामान्यतया प्रयोगधर्मिता पर विशेष रूप से केन्द्रित रहा है। जलरंग व तैल रंग यद्यपि सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है फिर भी इनके परे जाकर कलाकारों ने रचना के नए संसाधन खोजे।

भारत में प्रयोधर्मिता का केन्द्र चित्रतल और मूर्तिशिल्प दोनों ही रहे हैं। अधिकतर प्रयोग माध्यमों तथा टेक्सचर पर किए गये। तैल रंगों में तैल की मात्रा बढ़ाकर, रंगों को बहाकर या मोटे-मोटे थक्कों के रूप में प्रयोग ही प्रयोग के प्रथम चरण रहे हैं। परन्तु जैसे-जैसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों के अवसर बढ़े त्रिनाले जैसे आयोजनों से भारतीय कलाकारों में भी जोश आया। नवीं त्रैवार्षिकी में आस्ट्रेलिया के कलाकार 'सिमोन नेल्सन' ने 'वर्ल्ड बिटवीन' नामक इन्स्टालेशन में एक छोटे तालाब का निर्माण किया तथा उसके साथ पेड़ की शाखाओं को अनेक वर्गों में काटकर संयोजित किया।



बर्ड-शंखौ चौधरी (चित्र संख्या - 1)

प्रत्येक कलाकार का किसी भी पदार्थ को माध्यम स्वरूप प्रयोग करने का अपना

दृष्टिकोण होता है, जिसके आधार पर एक ही पदार्थ भिन्न विचार भिन्न अभिव्यक्ति के साथ नये रूप में उभरता है। किसी भी पदार्थ को शिल्प में रूपान्तरित करने की कलाकार की यह यात्रा ही उसके लिए किसी अनगढ़ पत्थर को माध्यम रूप में स्वीकार्य होती है। साधारण दृष्टिकोण से शिल्प को देखने के लिए उसके पदार्थ (मैटीरियल) से उसे देखा जाता है तो उसे पत्थर, धातु, लकड़ी, टेराकोटा तथा सेरेमिक का शिल्प कहा जाता है। किसी कलाकार के दिये शीर्षक के साथ उदाहरणार्थ धातु निर्मित शंखों चौधरी का 'बर्ड' (चित्र संख्या - 1)। बड़ी विनम्रता के साथ एक बात स्पष्ट कर देना उचित होगा कि यहां माध्यम (मीडियम) क्या है और पदार्थ (मैटीरियल) क्या है। अगर धातु माध्यम (मीडियम) है तो पदार्थ (मैटीरियल) क्या है और यदि पदार्थ (मैटीरियल) माध्यम है तो फिर माध्यम (मीडियम) क्या हैं यहां हम पदार्थ के प्रयोग से माध्यम तक की यात्रा का विवेचन करेंगे।

दृश्यकला दृष्टि के सम्प्रेषण का विषय है और मूर्तिकला इसी का त्रिआयामी पक्ष। यात्रा पदार्थ से माध्यम होने की है। एक कलाकार जब किसी पत्थर रूपी पदार्थ को अपने अनुभव, भावनाओं और सृजनशीलता से प्रेक्षक को अपनी कृति से जोड़ता है तब उसी क्षण वह पदार्थ माध्यम में परिवर्तित हो जाता है, और यहां से प्रयोगवाही दृष्टि का आरम्भ होता है। पदार्थ जो पत्थर था वह अब कलात्मक अभिव्यक्ति हो गया और इस यात्रा ने प्रयोगधर्मी स्थान ग्रहण कर लिया। यहां वे कलाकार (मूर्तिकार) महत्वपूर्ण हो जाते हैं जिन्होंने सूक्ष्मता से पदार्थ की गुणात्मकता को आँकते हुए उसमें सृजनात्मक पक्ष को और अधिक बलवति किया। धातु का प्रयोग या किसी भी पदार्थ का प्रयोग सदियों से कलाकारों द्वारा किया जाता रहा है किन्तु कलाकार द्वारा अपनी सृजनात्मक परिणिाति में उस पदार्थ को कितने भिन्न-भिन्न स्वरूप में माध्यम के रूप में उपयोग किया जा रहा है, यहां यह विश्लेषण करना आवश्यक है, ताकि उस पदार्थ की मौलिकता तो बची ही रहे, साथ ही कलाकार की सृजन प्रक्रिया के लिए ये पदार्थ और माध्यम उसकी अबोली भाषा बन जाए या गालिब के शेर में जैसा कहा गया है कि - दर्द को दिल जुबां दे गालिब, हुनर से शायरी नहीं होती।

अब यहां पदार्थ और कलाकार के बीच वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि चादर बुनने में अमूर्त स्वरूप को मानवीय जीवन से अभिव्यक्त करना। पदार्थ की प्रयोगधर्मिता भी कलाकार द्वारा अनुभवजन्य आधार पर ही निर्भर है और दुःख-सुख, दर्द, अवसाद, खुशी और उत्सव की तरह ही पदार्थ के प्रयोग भी प्रेक्षक के साथ कलाकार के सृजन

में संवाद करता रहता है। जैसे 'सोमनाथ होर' के धातु शिल्प में किए गए प्रयोग, जिसमें 'मेटल कास्टिंग' (चित्र संख्या - 24) के बाद उसके बचे हुए 'रनर' और 'चैनल' जो कि धातु की सप्लाइ के लिए प्रयोग किए जाते हैं और काटकर 'वेस्टेज' में डाल दिये जाते हैं, इनका सोमनाथ होर ने सृजनशील विचारधारा के साथ एक नवीन कलात्मक प्रयोग किया है।



मूर्तिशिल्प- सोमनाथ होर (चित्र संख्या - 2)

कलाकार का वैचारिक दृष्टिकोण इतना विस्तृत होता है कि वह यदि अपना सम्पूर्ण जीवन भी सृजन प्रक्रिया को समर्पित कर दें तो पूर्ण रूप से स्वयं को अभिव्यक्त नहीं कर पाएगा। यूँ तो समकालीन मूर्तिकारों ने धातु (विभिन्न धातुओं यथा एल्यूमिनियम, ब्रान्ज, कॉपर, स्टील, लोहा आदि) को अलग-अलग कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए माध्यम स्वरूप प्रयोग किया है। यहां हम इन्हीं विभिन्न प्रक्रियाओं में से एक पर विमर्श करेंगे। धातु का मुख्य गुण उसका वजन, उसकी आब (चमक), उसकी गति, उसी लय है, परन्तु जब यही धातु किसी कलाकार के लिए माध्यम बनता है तो वह तकनीकी प्रयोग जैसे - 'ऑक्सासेडाइनड' (चंजपदं) करके उस सामान्य दिखने वाले धातु के रंगों बदल देता है जो हरा, नीला, काला, भूरा सफेद भी हो सकता है। अपने शिल्प के मुख्य भागों पर सेण्ड पेपर से 'हाई लाइट' करके उसकी 'डिटेल्' निकालकर

एक बिल्कुल अलग कलाकृति का रूप दे देता है। यह शिल्प की सतह पर विभिन्न पोत (टेक्सचर) का प्रभाव भी दिखाकर कई प्रयोग कर सकता है और कहीं से ऑक्सोडाइज्ड भाग को पुनः चिकनी सतह (च्वसपी) में परिवर्तित कर देता है और धातु की आब (चमक) को पुनः दिखा सकता है। ये उसी तरह की फंतासी है जिस प्रकार एक कवि की रचना में कुछ पंक्तियों को महत्त्व प्रदान करने हेतु 'बोल्ड' कर 'टाइप' किया जाए। इसका पलट उपयोग या प्रयोग इस प्रकार भी हो सकता है कि जैसे कुछ मूर्तिशिल्प के किसी भाग पर टेक्सचर को उसकी अपनी अनगढ़ प्रवृत्ति की तरह छोड़ दिया जाए, जैसे कोई कवि अपनी कविता में कुछ समकालीन शब्दों या स्थितियों को डाल देता है और इस प्रकार यही शैली सम्प्रेषण को प्रेक्षक के सामने और मजबूत कर देती है।

प्रत्येक काल में कलाकार ने अपने आस-पास बिखरे हुए पदार्थों को ही माध्यम स्वरूप चुना। प्रागैतिहासिक काल, सिन्धु घाटी सभ्यता, अजन्ता की गुफाएँ इन सबसे प्राप्त अवशेष इसका साक्ष्य हैं। मूर्तिकला के आरम्भिक काल से ही प्रस्तर और मृदा (मिट्टी) कलाकार का पसन्दीदा माध्यम रहा है।

'हिम्मतशाह' शुरु से ही कई माध्यमों में काम करते थे। तैलरंग, जलरंग चित्र, रेखांकन, कोलाज, जले हुए कागज से तैयार किये गये कोलाज, म्यूरल, सिरेमिक्स, मूर्तिशिल्प, सीमेन्ट कंक्रीट, जाली, लोहे के सरियों आदि किसी भी माध्यम और रचना सामग्री में हिम्मत अपनी कला को अभिव्यक्ति दे सकते थे (चित्र संख्या 3)।



शीर्षकहीन, टेराकोटा विड वुड पेडेस्टल - 1997-98- प्रत्येक हैड 17' 8'

हिम्मत शाह - चित्र संख्या 3

कला के जन्म की प्रक्रिया पर सुविख्यात कलाविद् 'आनन्द कुमार स्वामी' की

अवधारणा पर विचार करते हुए बहुत से अनसुलझे रहस्य स्वतः स्पष्ट होते चले जाते हैं। ध्यान का योग जिसने सीखा है कि सामने मिट्टी नहीं है जिससे हम मूर्ति बना रहे हैं। मिट्टी का तो रूपान्तरण हो चुका है और रूपान्तरित मिट्टी से मैं कुछ कर रहा हूँ और जो मैं कर रहा हूँ वह प्राण का व्यापार है और वह प्राण मेरा प्राण है, मेरे समान का प्राण है। इस दृष्टि से अपने को निश्चय ही मारना पड़ता है। उसे अपने समस्त आवरणों को हटाना पड़ता है। इस स्थिति में आकार जब वह रचना करता है तो वस्तुतः वह रचना 'रूपान्तरण' ही होती है, चाहे मिट्टी का हो, चाहे स्याही और कागज का, वह पूरी की पूरी रचना एक रूपान्तरण है।

सृष्टि और सृष्टि इन दोनों के बीच में रहता है उपादान/ वस्तुगत उपादानों के आधार पर शिल्पी की प्रज्ञा किस विकास को सूक्ष्माकृति या बीच रूप में प्राप्त करती है वह प्रयुक्ति और शैली के संयोजन से किसी रूपाकृति में अभिव्यक्ति होती है।

आन्तरिक वस्तु यानी त्रिविमीय विचार को मूर्त रूप देना ही किसी कलाकृति का सृजन है।

वर्षों के बदलावों को ध्यान से देखें, तो बहुत कुछ ऐसा हो चुका है, जो अप्रत्याशित और अविचारित है। समय और यथार्थ के अन्य अविचारित परिवर्तनों की तरह ही।

पदार्थ एवं माध्यम की यात्रा में सृष्टि ने सदैव कलाकार को नवीन प्रयोगों हेतु विशाल भण्डार दिया है। पदार्थों का और उसी गति से अनवरत रचनात्मक विचार की कड़ियों को जोड़ते हुए कलाकार पदार्थ को माध्यम बनाते हुये कलाकृतियों को निर्मित करता रहा है। आज कोई भी प्रकृति प्रदत्त पदार्थ कलाकार की रचनाक्रम से अछुता नहीं रहा है या यूँ कहा जाये कि पदार्थ को माध्यम बनने की उस बारीक-सी रेखा को कलाकार ने अदृश्य कर दिया है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। गुफा का पत्थर किसी मन्दिर की मूर्ति, किसी गृह की संरचना, किसी सजावटी साजो सामान का हिस्सा बना, धातु से बने बर्तन रॉजमर्मा की आवश्यक वस्तुएँ कलाकृति का अंग बन गईं। ये सब कुछ यूँ ही अचानक नहीं हुआ। सदियों से मानवीय रचनात्मकता के प्रयासों एवं प्रयोगों की परिणति है यह कला। सम्पूर्ण सृष्टि पदार्थ एवं सामग्री का विपुल भण्डार है, और कलाकार अपनी रचनात्मकता से, नित नवीन प्रयोगों से कितने ही सृजन कर चुका है और कितने और करेगा किन्तु प्रकृति और कलाकार की यह

यात्रा भी यूं ही चलती रहेगी, निरन्तर और अनवरत ।

संदर्भ ग्रन्थ

1. आधुनिक कला और प्रयोगधर्मिता कला दीर्घा अप्रैल 2003 वर्ष 3 अंक 8 डॉ. राम विरंजन
2. आधुनिक कला और प्रयोगधर्मिता कला दीर्घा अप्रैल 2003 वर्ष 3 अंक 8 डॉ. राम विरंजन
3. सम्वाद, कलाओं की एकात्मकता, समकालीनकला, अंक 28 (नवम्बर 2009 फरवरी 2006)
4. प्रो. निर्मलेन्दु दास कलादीर्घा अंक 29 पृ.सं. 9
5. एम. रामचन्द्रन – स्कल्पचरल आइडियाज, ललित कला कॉन्टेमपरेरी-41 ललित कला अकादेमी प्रकाशन पृ. 32
6. समकालीन कला – दसवीं त्रैवार्षिकी – भारत, उदय प्रकाश, पृष्ठ सं. 42



डॉ. श्रीकृष्ण यादव
प्राचार्य, एम.के.एम. महिला स्नातकोत्तर कॉलेज
खेतड़ी, झुन्झुनूं

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

‘शेखावाटी अंचल में स्थित झुन्झुनूं के प्रमुख मंदिर व परमधाम’

शेखावाटी सामान्य परिचय— वर्तमान में सीकर व झुन्झुनूं जिला प्रमुख रूप से शेखावाटी क्षेत्र के अन्तर्गत माना जाता है। चुरू जिले का भी इन जिलो से सटा हुआ कुछ भू-भाग को इसमें सम्मिलित करते है।

16वीं शताब्दी से राजस्थान के अन्तर्गत शेखावाटी क्षेत्र, आमेर—जयपुर राज्य की प्रमुख रियासत के रूप में राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। पाश्चात्य इतिहासकारों ने शेखावाटी को राजस्थान का ‘स्कॉटलैण्ड’ माना है। प्रगत ने प्रदेश को सुजला, सुफला, शस्य—श्यामला ही नहीं बनाया है अपितु यहां के वीर योद्धाओं, महान साहसिक कर्मठ उद्योगपतियों व कला प्रेमियों ने इस धरती को गौरवान्वित किया है। कर्नल जे.सी. ब्रुक ने अपनी कृति ‘जयपुर का राजनीतिक इतिहास’ में शेखावतों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि समस्त भारत में अश्व सेना की भर्ती के लिए शेखावाटी से अधिक उत्तम क्षेत्र अन्यत्र कहीं नहीं है। इसलिये शेखावाटी शूरवीरों की धरती शेखावतों के नाम से जानी जाती है। शेखावत शाखा के राजपूतो द्वारा शासित भू-भाग को ही शेखावाती नाम दिया गया।

संस्कृति की धरोहर शेखावाटी के प्रमुख मंदिर, लोक तीर्थ व धाम—शेखावाटी की संस्कृति को उजागर करने में मंदिरों का भी विशेष योगदान है। शेखावाटी के मंदिर ऊँचे विशाल चबूतरों पर बने हुए है। मंदिर का शीर्ष भाग, जहाँ मूर्ति रहती है, चारों ओर से घिरा हुआ सुरक्षित स्थान है। जैन स्थापत्य कला की भांति अनेक मंदिरों का नीचे का भाग अत्यधिक चौड़ा और विशाल है, परन्तु ज्यों—ज्यों उपर की ओर बढ़ते हैं यह भाग संकुचित (सीमित) हो जाता है। इस प्रकार हिन्दू शैली पर निर्मित ये मंदिर स्थापत्य कला के अद्भूत नमूने हैं। इन मंदिरों की बनावट में चूने तथा पत्थर काम अधिक है।

शेखावाटी अंचल में स्थित झुन्झुनू के कुछ मंदिरों का विवरण इस प्रकार है:-

लोकतीर्थ लोहार्गल- शेखावाटी प्रदेश के झुन्झुनू नगर से 70 कि.मी. दूर उदयपुरवाटी से ठीक दक्षिण से 16 कि.मी. दूर व झुन्झुनू के चिराना गाँव से 5 कि.मी. पर नवलगढ़ पंचायत समिति का लोहार्गल ग्राम महाभारत कालीन संदर्भों से जुड़ा है। प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण इस लोकतीर्थ का धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्व है। 'स्कन्द-पुराण' एवं 'वराह-पुराण' में भी इस स्थली का तीर्थ रूप में उल्लेख मिलता है। साथ ही इसके सम्बन्ध में अनेक अर्न्तकथाएँ तथा किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि महर्षि परशुराम जी ने अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिये यहाँ पर वैष्णव यज्ञ कराया था जिसमें इन्द्रादि देवता और ऋषिमुनिजन वशिष्ठादि आये थे और इस तीर्थ की रमणीयता तथा यहाँ के शांत, स्निग्ध परिवेश से प्रभावित होकर माल क्षेत्र पर्वत के शिखरों पर चिरकाल पर्यन्त तपस्या करते रहे। किंवदन्ति है कि अरावली पर्वत श्रेणियों के मध्य अवस्थित इस लोकतीर्थ में महाभारत काल में पांडव भी आये थे और उन्होंने यहाँ पवित्र जल में स्नान किया था। जिससे उनके लोहे के षस्त्र गल गये थे। शायद यही कारण है कि इस तीर्थ को लोहार्गल कहा गया है। यह भी कहावत प्रचलित है कि यहाँ किये गये स्नान से पांडवों को महाभारत युद्ध में की गई हत्याओं से मुक्ति मिली थी। 'वराह-पुराण' में कहा गया है कि लोहे की अर्गला की भाँति पर्वत श्रेणी इस तीर्थ को रोके हुये है। तीर्थ के प्रवेश द्वारा की ओर 'चेतनदास की बावड़ी' और 'राधारमण का विशाल मंदिर' है। प्रचलित है कि चेतनदास जी के आने से पूर्व वनखंडी साधुओं का यहाँ निवास था और उन्हें ईश्वरोपासना के कारण भैरव की सिद्धि प्राप्त थी। यह भी कहा जाता है कि चेतनदास ने बावड़ी खुदवाने से पूर्व उनसे अनुमति प्राप्त नहीं की जिसके कारण दिन में जैसे-जैसे बावड़ी की खुदाई की जाती, रात को वैसे-वैसे भूमि से मिट्टी भरती जाती और यह क्रम कई दिनों तक चला। बाद में चेतनदास जी को भूल का अहसास हुआ और उन्होंने शिखर पर वनखण्डी के नाम से छतरी का निर्माण करवाया और फिर बावड़ी में रूकावट नहीं आई। (चित्र-1)

सकराय माता का मंदिर- राजस्थान के रेतीले टीलों वाले प्रदेश शेखावाटी में पुण्य स्थल लोहार्गल भाग ही ऐसा स्थान है जहाँ शान्ति और सलजता

मूलक विधिक धूमलता मंडित पर्वतमाला का नयनाभिराम दृष्य उपस्थित है। यह सकराय माता का मंदिर खण्डेले से 5 कोस की दूरी पर हैं उदमपुर (शेखावाटी) होकर भी रास्ता जाता है। शेखावाटी में यह सबसे प्राचीन मंदिर सघन वृक्षच्छादित दुर्ग में पहाड़ी स्थान वहद् द्रोणी में है। अब यात्रियों के यातायात से घिसे हुए पत्थर, बाहरी प्रतिमाएं रह गई हैं। सहत्रों की संख्या में यात्री धर्म बुद्धि से प्रेरित होकर माँ भगवती के दर्शन करते हैं। कितने ही कुटुम्ब अपनी कुल देवी के रूप में सकराय माता जी को पूजते हैं और उनके दूर्गम किन्तु सुरम्य स्थान पर पहुँचकर अपनी भक्ति को प्रदर्शित करते हैं। उन कुटुम्बों में चाहे वे यहाँ बसते हों या विदेश में विवाह तथा जन्म के उपलक्ष्य में जात, जड़ूला के लिये माताजी के स्थान पर उपस्थित होकर श्रद्धा-अर्चना करना उनका कर्तव्य माना जाता है।

राणी सती मंदिर— झुन्झुनूं में बना राणी सती का मंदिर राजस्थानी शिल्पकला का अप्रतिम उदाहरण है। इस मंदिर का सिंहद्वार बड़ा भव्य एवं विशाल है जो सिर्फ राजस्थान में नहीं बल्कि पूरे देश में मिलना दुर्लभ है। डेढ़ कि.मी. क्षेत्र में बने इस मंदिर में निरन्तर विकास कार्य चलते रहते हैं। यह मंदिर तीन चौक का है। पहले और दूसरे चौक में 173 और तीसरे चौक में 74 कक्ष बने हैं। जो यात्रियों के रहने के लिये हैं। मंदिर परिसर में ‘श्री हनुमान जी’ की एक विशाल प्रतिमा स्थापित है जिसके दोनों ओर विशाल शिवालय बने हैं। यह मंदिर उन प्रवासी राजस्थानियों की धार्मिक आस्था का केन्द्र है जो कभी शेखावाटी में जन्में और जीवकोपार्जन के लिये बाहर चले गये। (चित्र-2)

जन-जन की आस्था का केन्द्र ऊबली का बालाजी— गुढा-झुन्झुनूं मार्ग पर बालाजी स्टेण्ड से एक कि.मी. दूर स्थित है ऊबली के बालाजी। मंगलवार और शनिवार को यहाँ सुबह से देर रात तक श्रद्धालुओं का तांता लगा रहता है। मंदिर के महंत जगदीश प्रसाद शर्मा के अनुसार प्रसाद के बारे में मान्यता है कि बालाजी के चढ़ाया हुआ प्रसाद घर नहीं ले जाया जाता।

मंदिर के इतिहास के बारे में मान्यता है कि लगभग डेढ़ शताब्दी पूर्व बड़ा गाँव निवासी ठाकुर भैरोसिंह ने एक कुएं का निर्माण करवाया और पास ही बालाजी का मंदिर भी बनवाया। इस कुएं की नाल खड़ी (ऊबी) होने से लोकभाशा में इसका नाम ऊबली के बालाजी पड़ गया। बालाजी की मूर्ति के लिये लोगों का कहना है कि यह मूर्ति एक सैनिक ने लाकर स्थापित की। रवींवासर निवासी सैनिक नत्थूराम चौधरी सन् 1947 ई. में लाहौर में तैनात

था। उसे संगमरमर की दो फीट की बालाजी की मूर्ति मिली। सैनिक ने मूर्ति से प्रार्थना की कि प्रभु यहाँ क्यों पड़े हो। मुझे छुट्टी दिलवा दो, ऊबली ले चलूंगा। जहाँ नियमित पूजा होगी।

लोक देवता रामदेव जी का मंदिर (नवलगढ़)— रामदेव जी का मेला हर वर्ष भादवा सुदी दशमी को भरता है। इतिहास संदर्भ है कि नवलसिंह की रानी मारवाड़ की थी और उनकी वहाँ के लोक देवता रामदेव जी में बड़ी आस्था थी। राजा इसके लिये रानी का मजाक उड़ाया करते थे कि यह तो ढेड़ों का देवता है लेकिन बताया जाता है कि जब शाह आलम के वार्षिक कर नहीं चुकाने पर नवलगढ़ के संस्थापक राजा नवलसिंह को दिल्ली में कैद कर लिया था। इससे चिंतित नवलगढ़ की रानी ने अपने पति को बादशाह की कैद से मुक्त कराने के लिये बाबा रामदेव से आर्त स्वर में प्रार्थना की थी। बाबा रामदेव ने रानी की प्रार्थना सुनकर अपने घोड़ों पर नवलसिंह को दिल्ली जेल से रिहा कर नवलगढ़ लाकर छोड़ा। बताया जाता है कि स्वतः ही राजा के पेरों की जंजीरें खुल गयी और वे जेल के दरवाजे भी खुल गये। वे राजा को अपने घोड़े पर बिठाकर नवलगढ़ ले आये। यहाँ उनके घोड़े ने दम तोड़ दिया। जहाँ घोड़े ने दम तोड़ा वहीं राजा ने बाबा रामदेव का मंदिर बनवाया। उसी दिन से यहाँ रामदेव बाबा पूजे जाने लगे। नवलगढ़ में रामदेव मेले के समय सालासर बाबा मेले जैसा माहौल रहता है।

शेखावाटी का जागृत शक्तिपीठ 'मनसा माता'— 250 वर्ष प्राचीन शेखावाटी जनपद के झुन्झुनू जिले में मनसा माता एक मात्र शक्तिपीठ है। यह स्थान खेतड़ी और हर्ष के बीच में फैली हुई अरावली पर्वतमाला की रमणीय उपत्यका में बसा हुआ है। चट्टान का सहारा लिये पश्चिमाभिमुख देवी का मंदिर हरे-भरे पहाड़ों में छुपा हुआ है। मनसा माता के चारों तरफ हरियाली के सम्बन्ध में जनश्रुति है कि पहाड़ पर भेड़ बकरी चराते गडरियों को देवी के प्रकट होने की आकाषवाणी सुनाई दी। भयंकर गर्जना के साथ भूमि कांपने लगी तथा जमीन फट गई तथा उसमें से माँ प्रकट हुई लेकिन गडरियों के क्रंदन को सुनकर स्तनाकार रूप में ही रह गई। चाहे जो कुछ भी हुआ हो यह स्थान आज षक्ति उपासना का सिद्धपीठ है। यूँ तो मनसा माता की मान्यता छोटे-छोटे गाँवों तक ही थी लेकिन धीरे-धीरे भक्तों की मनोतियाँ पूर्ण होने पर यहाँ हजारों श्रद्धालुओं का आना होने लगा और वर्तमान में यह साधना

की दृष्टि से शेखावाटी का प्रमुख सिद्धपीठ हो गया।

बन्धे का बालाजी— मानव सेवा करके सबड़ा धर्म है इसका सपना श्री बंधे का बालाजी मंदिर में साकार हुआ। श्रद्धा व विष्वास के लिये विख्याता यह मंदिर 31 हजार वर्ग गज भूमि पर स्थित है, जहाँ अत्याधुनिक सुविधा युक्त अस्पताल बनाने की योजना अंतिम चरण में है।

शहर के कानावीर पहाड़ की तलहटी में स्थित इस मंदिर के द्वार की भव्यता निराली है। मंदिर में 20 फीट ऊँचा गर्भगृह है और ऊपर 61 फीट ऊँचा गुम्बद है। गर्भगृह में चाँदी के सिंहासन पर विराजमान बालाजी है। सामने लम्बा—चौड़ा प्रार्थना स्थल है जिसमें कोयूम्बटूर से मंगाये गये झूमरों का विशेष आकर्षण है। मुख्य मंदिर के दक्षिणी भाग में शिवालय है तो उतर की ओर ‘बाबा निर्भयदास’ जी का स्थान है।

चिड़ावा के नगरदेव परमहंस पं. गणेशनारायण— एक चमत्कारी औघड़ संत पं. बावलिया चिड़ावा अघोरी सम्प्रदाय में अवतरित पं. गणेशनारायण आज पूरे देश में पूजे जाते हैं। शेखावाटी की संत परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र सृदश बावलिया बाबा के नाम से प्रसिद्ध परमहंस महात्मा पंडित गणेशनारायण का जन्म राजस्थान के झुन्झुनूं जिले में नवलगढ़ के निकट स्थित बुगाला गाँव के खण्डेलवाल ब्राह्मण परिवार में पोष कृष्ण प्रतिपदा गुरुवार संवत् 1903 (1846ई.) में हुआ। शैशव काल के बाद आपके पिता घनश्याम दास तथा माता गौरी देवी बुगाला छोड़ कर नवलगढ़ आ बसे। वही आपका बचपन बीता, शादी हुई लेकिन आप विरक्त भाव से ही रहे। बचपन में सनातन संस्कृति के परिवेश में पले गणेशनारायण ने अल्पायु में ही कर्मकाण्ड, ज्योतिष, वेद तथा धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाल लिया कि यह संसार दुःखों का घर है और शरीर नश्वर है। अतः मानव का अपने कल्याण का मार्ग अपनाकर जन्म—मृत्यु के बंधन से छुटकारा पाने का कोई उपाय अवश्य करना चाहिये। धर्मपत्नी स्योनदी के आग्रह पर आप आजीविका हेतु नवलगढ़ के एक सेठ के घर संतोनात्पति की कामनार्थ भगवती देवी अनुष्ठान कर रहे थे, तब सहसा माँ की असीम अनुकम्पा से आप के ज्ञान—चक्षु खुले और गृहस्थी परित्याग कर अवधूत बनकर विचरण करते रहे। काली की उपासना करने लगे। उसी काली द्वारा शिव आराधना का आदेश पाकर डः बीज मंत्र का जाप करने लगे, शिव स्वरूप हो गये। वे पूर्ण अघोरी हो गये थे। सभी वस्तुओं, व्यक्तियों एवं पशु—पक्षियों में

भी अभेद वृत्ति समझते थे। ऐसी वृत्ति के कारण लोग उन्हें पागल समझते थे तथा 'बावलिया पंडित' कहकर पुकारते थे।

आपके अन्य भक्तों में एक थे 'जुगल किशोर बिड़ला' जिन्हें आपने ही सर्वप्रथम पिलानी से शुभ मुहूर्त बताकर कोलकाता विदा करते हुये कहा था "अरे जुगल किशोर, आज तो तेरा शुभ दिन आया है जा भाग जा और करणी वरणी चालू रख" और सेठ जुगल किशोर बिड़ला अपने भाग्य विधाता की बात पर उसी समय कोलकाता हेतु रवाना भी हो गये किन्तु रास्ते में उन्हें दार्यी ओर फन उठाए काला नाग मिला जिसे सेठ ने न जाने क्यों अशुभ-शकुन मान लिया और भावावेश में कोलकाता जाने का विचार छोड़ दिया, पर जब वापिस लौटकर पं. परमहंस को सेठ ने यह घटना बताई तो वे बहुत नाराज हो गये और कहने लगे, अरे जुगल किशोर तूने बहुत बड़ी भूल कर दी। यदि काले सर्प का तू दर्शन करते हुये सीधे कोलकाता जाकर व्यापार शुरू की देता तो तू चक्रवर्ती बन जाता पर अब वापिस जाता है तो भी तेरी कीर्ति सर्वत्र फैलेगी और तू उद्योग व्यापार में बहुत लाभ कमा सकेगा और इतिहास गवाह है कि बावलिया बाबा के कहने पर सेठ घनश्यामदास बिड़ला कोलकाता रवाना हुये और आज भारत के प्रमुख उद्योगपतियों में बिड़ला परिवार भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

आप मरघट में और शिव मंदिर में 'उः' बीज मंत्र का जाप करते हुये अपने भक्तजनों, श्रद्धालुओं को यह उपदेश देते थे कि -

पल में पवन घणेशी चलती, पल में पत्ते हले ना चले।

पल में पंछी उड़ते देखे, पल में आप कटादे गल।।

पल में कूप तालाब सुखादे, पल में कर दे जल ही जल।

पल में भीख मंगा दे, जिनके लारे लश्कर दाल।।

पल भर में वह राजा कर दे, जिसके कर्म में स्वाति जल।

पल भर में वो जबान बना दे, पल में कह दे वृद्धावल।।

करते हैं-कर्ता डरिये, करता लावे घड़ी न पल।।

नरहड की प्राचीन दरगाह- यूं तो शेखावाटी क्षेत्र में मंदिर-मस्जिद व अन्य धार्मिक स्थल सैकड़ों व हजारों की तादाद में मिल जायेंगे, लेकिन झुन्झुनूं

से 40 कि.मी. दूर चिड़ावा—पिलानी सड़क मार्ग पर देवरोड़ से 3 कि.मी. दूर स्थित है— एक गाँव नरहड़। गाँव के एक ओर बनी ‘हजरत हाजिब शक्करबार शाह’ की प्राचीन दरगाह। इस दरगाह के कारण यह स्थल एक तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है। नरहड़ में प्रत्येक जन्माष्टमी के दिन दरगाह के बाहर एक बेड़ा मेला लगता है। इस अवसर पर सभी धर्मों के लोग बिना भेदभाव के न केवल हिन्दु एवं मुसलमान वरन् सभी धर्मों और सम्प्रदायों के अनुयायी भाग लेते हैं और अपनी मन्तते मंगवाने व बच्चों के जात—जडूलों के संस्कार पूर्ण करने के लिये आते हैं। बड़ी संख्या में जायरीन राजस्थान से ही नहीं अपितु हरियाणा प्रान्त से भी आते हैं और पीर बाबा की मजार पर चादरें और पुष्प चढ़ाते हैं। दरवाजें पर रखी तिजोरी में नकदी भी चढद्याई जाती है। महिलाएँ भी यहीं से बाबा की हाजरी लगाती है।

ऐतिहासिक धरोहर रामकृष्ण मिशन— तत्कालीन राजा अजीतसिंह के दीवानखाने में संचालित रामकृष्ण मिशन आश्रम द्वारा एक पुस्तकालय, एक प्राथमिक विद्यालय, एक होम्योपैथिक चिकित्सालय तथा एक प्रसवोत्तर सेवा केन्द्र संचालित है। खेतड़ी में रामकृष्ण मिशन भवन की स्थापना पदम्भूषण स्वर्गीय पण्डित ज्ञाबरमल शर्मा एवं स्वर्गीय वेणी शंकर शर्मा के प्रयासों से सन् 1958 ई. में राजा अजीत सिंह के प्रपौत्र राजा सरदार सिंह द्वारा करवाई गई थी।

श्रद्धा पुरुष बाबा रामेश्वरदास— झुंझुनूं जिले के सीमान्त टीबा बसई गाँव से 3 कि.मी. दूर हरियाणा—राजस्थान सीमा पर बना श्री श्री श्री 1008 बाबा रामेश्वरदास जी का विशाल भव्य आश्रम एवं भव्य मंदिर भक्तजनों के लिये श्रद्धा का केन्द्र है। बाबा रामेश्वरदास सिद्ध संत और श्रद्धा पुरुष थे। उन्होंने विशाल ऐश्वर्यमयी गदी ढोसी को त्यागकर तपस्या का मार्ग स्वीकार किया। वे धनाढ्य व्यक्तियों को निर्माण कार्यों के लिए आदेश दिया करते थे। यह मंदिर और उसका विकास—विस्तार उनके प्रति भक्तजनों की श्रद्धा का प्रतीक है। मंदिर परिसर के आश्रम में विशाल कीर्तन भवन टीबा बसई के सेठ श्री किशन गोयल ने निर्मित करवाया था। इस भवन की दीवारों पर सम्पूर्ण गीता के श्लोक शीशे से जड़ित हैं। मंदिर परिसर के सभी कक्षाओं में महाभारत कालीन एवं रामायण पौराणिक संदर्भों के साथ विविध देवी—देवताओं, कर्म—ज्ञान और ज्योति प्रसंगों के चित्र और नयनाभिराम रूप में भित्तियों पर अंकित हैं। यहाँ एक संस्कृत विद्यालय भी है।

मंदिर के बाहरी भाग में श्री हनुमान जी की विशाल प्रतिमा है। इसी

भाँति हाथी और गणेश की प्रतिमायें भी विशाल है। हनुमान जी के पास सरस्वती की भी मनोहरी मूर्ति बनी हुई है। प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण यह धार्मिक स्थल किसी लोक तीर्थ से कम नहीं हैं। आश्रम खेतड़ी से 25 कि. मी. की दूरी पर द्वन्द भागा नदी के किनारे स्थित है। बाबा का यह आश्रम धार्मिक तथा पर्यटन की दृष्टि से अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य के लिये विख्यात है। सत्यम शिवम् सुन्दरम् की भावनात्मक पृष्ठभूमि पर निर्मित कलात्मक मूर्तियाँ शेखावाटी शिल्प के अदभुत नमूने हैं जिन्हें देखकर पर्यटक आश्चर्य चकित हो जाता है। ये मूर्तियाँ मानवीय सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करती है जो शेखावाटी के प्रसिद्ध मूर्तिकार श्री राजानन्द खेतड़ी ने बनाई है जो उनके सौन्दर्य बोध की परिचायक है।

लोक तीर्थ ढोसी— मनोरम पहाड़ी से घिरा लोक—संस्कृति का यह पावन तीर्थ स्थल शिमला से 2 मील दूर दोहान नदी के किनारे ढोसी के पहाड़ पर प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण बनस्थली में लोकतीर्थ ढोसी का धार्मिक व ऐतिहासिक महत्व है।

ढोसी राजधानी जयपुर से 200 कि.मी. जिला मुख्यालय झुन्झुनूं से 105 कि.मी. तथा तहसील मुख्यालय खेतड़ी से 36 कि.मी. है। इस लोकतीर्थ से जुड़ी कई अर्न्तकथाएँ व किवदन्तियाँ भी हैं। 'भागवत' के अनुसार इस तीर्थ का सम्बन्ध द्वापर युग से लगाया जाता है। परम्परा के अनुसार यह स्थान च्यवन ऋषि से सम्बन्धित है क्योंकि यहाँ पर च्यवन ऋषि का पवित्र मंदिर भी है। किवदन्ती है कि यहाँ पर च्यवन ऋषि ने 7 हजार वर्ष तक तपस्या की थी। इसी तपस्या के बल पर विराट के राजा शर्माति की सुपुत्री के साथ ऋषि ने वृद्धावस्था को त्याग पुनः युवावस्था प्राप्त कर विवाह किया था। अर्न्तकथा है कि तपस्या करते-करते कालान्तर में ऋषि के शरीर पर दीमक चढ़ गई थी। केवल आँखे दिखाई देती थी। राजा शर्माति की कन्या अपनी सखियों सहित घूमती हुई इस ओर निकली जहाँ ऋषि तपस्या कर रहे थे। राजकुमारी ने उनकी चमकती हुई आँखों को कुछ और समझ कर कांटा चुभो दिया जिससे खून बहने लगा। राजकुमारी भयभीत हो गई। उसने सारा वृत्तान्त अपने माता—पिता को बताया। इससे राजा बड़े दुःखी हुये और ऋषि से क्षमा याचना करने लगे और राजकुमारी को ऋषि की सेवा में अर्पण करने का आग्रह किया। राजकुमारी ऋषि की सेवा में लग गई। कहते हैं राजकुमारी ने दो सुन्दर पुत्रों भार्गव तथा चामल गौड़ को जन्म दिया। यही भार्गव 'ढोसर'

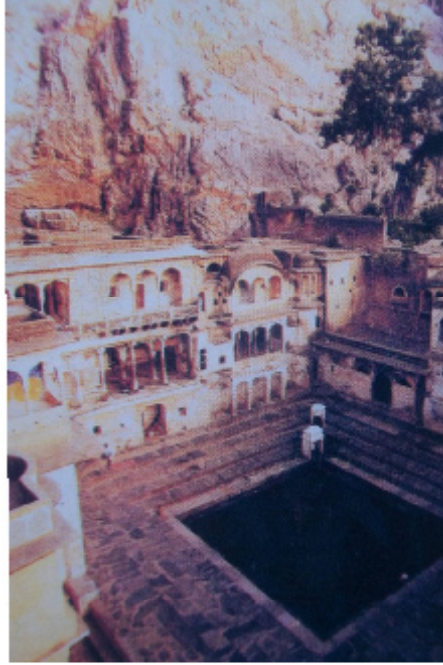
कहलाये और पहाड़ का नाम ‘ढोसी’ पड़ा। प्रत्येक सोमवती अमावस्या का यहाँ मेला लगता है। च्यवन ऋषि की तपस्या स्थली होने के कारण इस तीर्थ को बहुत पवित्र माना जाता है।

इस तीर्थ स्थल पर एक दिव्य आत्मा श्री नन्द ब्रह्मचारी विशेष चमत्कारिक बाबा हुये। कहते हैं कि इनको सिद्धि प्राप्त थी जिन्होंने कुलताजपुर से च्यवन ऋषि मंदिर तक 4600 फीट पर सन् 1964 ई. में 457 सीढ़ियों का निर्माण कराया जिससे इस तीर्थ पर सुगमता से पहुँचा जा सके।

किरोड़ी तीर्थ— किरोड़ी का रम्य तीर्थ स्थल झुन्झुनूं से 68 किमी. एवं चिराना से तीन किमी. की दूरी पर स्थित है। चिराना तक बस की सेवा उपलब्ध है और यहाँ से पहाड़ की चढ़ाई प्रारंभ हो जाती है। यात्री तीन किलोमीटर के पहाड़ी मार्ग को पार कर किरोड़ी जी पहुँचता है। चिराना से जाने वाला मार्ग पहाड़ से होकर गुजरता है। पहले चढ़ाई और फिर सममतल भाग आता है और फिर पहाड़ी ढालान पार करने के बाद किरोड़ी जी के तीर्थ के दर्शन होते हैं।

किरोड़ी जी का दूसरा देवालय गिरधारी जी का मंदिर है। इसे राव टोडरमल के मन्त्री मोहन जी षाह ने बनवाया था। इसके पीछे एक कथा है। राव टोडरमल अधिकतर आमेर रहते थे और राज काज सारा मूनजी शाह ही चलाते थे। इनके पास रहने के लिए विशाल हवेली थी तथा सुख के सभी साधन थे। एक दिन एक भंगिन उनके घर में सफाई कर रही थी। शाह की स्त्री ने अपने लिए एक नया वेश (परिधान) बनवाया था। रंगीन घाघरा, चमचमाती ओढ़णी से उसका मुख मंडल एक विस्मयकारी आभा से दमक रहा था। भंगिन ने इस सुन्दर परिधान को छू लिया। उस समय छुआछूत का बड़ा जोर था। वेश अपवित्र हो गया अतः उसे अब अनुपयोगी जानकर भंगिन को दे दिया गया। भंगिन को मनमानी मुराद मिल गयी। उसने उन वस्त्रों को पहन पहिन लिया और रावले में पहुँच गयी। ठुकराणियाँ भंगिन के पास ऐसा सुन्दर वेश देखकर चकित हो गयी। टोडरमल ने स्वयं इसे देखा और अनुमान लगाया कि साह ने यह अतुल सम्पति ठिकाने से चुराई है। उसे सम्पति हड़पने के विचार से शाह को बुलाया।

चित्र-1



युंजुनु रानी सती मंदिर

चित्र-2



रानी सती मंदिर (जुंजुनु)

ज्योति
शोधार्थी
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा में धर्म : एक विवेचन

मानव की आस्था एवं विश्वास की अभिव्यक्ति है – मूर्तिकला। यह वे मूर्त प्रस्तुतियां हैं जो सम्पन्न, वैविध्यपूर्ण, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमियों के संदर्भ से हमें परिचित करवाती हैं। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में मूर्तियों तथा मन्दिरों की स्थापना के अनेक साहित्यिक और पुरातात्विक प्रमाण प्राप्त होते हैं। वैसे तो भारत के कण-कण में इतिहास रचा है लेकिन राजस्थान क्षेत्र जो लोक में मरु प्रदेश के नाम से प्रख्यात है इस दृष्टि से बहुत समृद्ध है। यह अंचल सुदृढ़ किलों, आलीशान राजप्रसादों, भव्य देव मंदिरों, अद्भूत मूर्तियों, कलात्मक विशाल बावड़ियों, अलंकृत स्मारक, छतरियों के कारण अपनी एक विशेष पहचान रखता है।¹

राजस्थान में मूर्तियों के अध्ययन अद्यतन प्राचीन परम्परा के अनुसार शिल्प शास्त्रों के आधार पर मूर्ति लक्षणों एवं आयुधादि के वर्णन तथा प्रत्यभिज्ञा पर ही आधारित थे। यद्यपि इस पुरातन परम्परा का अभी भी अनुसरण किया जाता है क्योंकि यह आवश्यक भी है तथा लाभप्रद भी, परन्तु प्रतिमा वैज्ञानिक अध्ययनों को और अधिक व्यापक एवं रुचिकर बनाने के लिए प्रतिमा को विविध दृष्टिकोणों एवं सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखना आवश्यक है।² वस्तुतः राजस्थान में प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक मानव सभ्यता के विकास की विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित इतिहास और पुरातत्व की सामग्री प्रभूत मात्रा में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है।

राजस्थान में विभिन्न धर्मों का प्रादुर्भाव एवं विकास यहां की संस्कृति के विकास के लिए मील का पत्थर साबित हुआ और प्राचीनकाल से ही राजस्थान का सामाजिक परिवेश धार्मिक भावनाओं से अनुप्राणित रहा है। प्रागैतिहासिक काल से राजस्थान का जनजीवन धार्मिक चेतना के प्रति निष्ठावान रहा है।

सरस्वती, दृषद्वती तथा आहड़ आदि नदियों की घाटियों से प्राप्त भग्नावशेष एवं सामग्री उस अतीतकाल की धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालती है। प्रागैतिहासिक काल में राजस्थान में शिव, शक्ति, पृथ्वी, नदी, अग्नि, जल, पशु, वृक्ष एवं तान्त्रिक प्रक्रियाओं को मानव के स्तर से उच्चकोटि के स्तर पर ईश्वरत्व के प्रतीक के रूप में माना जाता था।

जब आर्य सरस्वती और दृषद्वती नदियों की घाटियों में बस गये तो शनै-शनै उनका प्रसार राजस्थान के भीतरी भागों में भी होता गया। इस प्रसार के साथ स्थानीय और बाह्य संस्कृतियों का समागम एवं संस्पर्श ही नहीं हुआ अपितु समृद्ध वैदिक चिन्तन और प्रक्रियाओं का भी प्रभाव उत्तरोत्तर सुदृढ़ होता गया। इस काल से ही राजस्थान के निवासियों का जीवन वेदों में प्रतिपादित आस्तिक विचारों और धार्मिक चेतना से प्रभावित होने लगा। यज्ञों का सम्पादन तथा इन्द्र, वरुण, सूर्य, ब्रह्मा और सोम की आराधना का भी सूत्रपात वहीं से आरम्भ होता है।

तैत्तिरय ब्राह्मण में याजक द्वारा सवर्णमयी, सुन्दर एवं बृहत तीन देवियों की पूजा का निर्देश संभवतः तत्कालीन मूर्तिपूजा की ओर संकेत करता है।⁹ लोगों से तथा शांखाय गृहसूत्रों और आवस्तंब गौतम एवं वशिष्ठ धर्मसूत्रों में देवतायतन (मंदिर) की चर्चा हुई है। विष्णु धर्म सूत्र ने तो देवतार्चाओं (देवमूर्तियों) के समानांतर वासुदेव की मूर्ति का उल्लेख मिलता है। मनुस्मृति में ब्रह्मचारी हेतु मूर्ति पूजा प्रशस्त घोषित करने के समानान्तर यात्रा के दौरान मूर्तियां मिलने पर उनकी प्रदक्षिण के निर्देश प्रदान किये हैं।¹⁰

राजस्थान में पुरातात्विक उत्खनन से ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल से ही यहां मूर्ति पूजा प्रचलित थी। सिन्धु सभ्यता की खुदाई से कुछ ऐसी मूर्तियां मिली हैं जिनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मूर्ति पूजा हड़प्पा संस्कृति का मुख्य अंग थी। योगी की एक मूर्ति का समय शिव से किया गया है। मातृदेवी की अनेक मूर्तियां इस धारणा की पुष्टि करती हैं।¹¹ प्रस्तर कला के क्षेत्र में राजस्थान में अच्छी प्रगति परिलक्षित की गयी है। नोह में प्राप्त यक्ष मूर्ति को भारत में प्रस्तर कला के प्राचीनतम उदाहरणों में से एक बताया गया है।¹² कुषाणकाल की कुछ मूर्तियां नोह से प्राप्त हुई हैं। इस संबंध में एक अतिविशाल शिवलिंग की बात कहना भी समीचीन है, जो पुष्कर के पास

नांद नामक स्थान पर मिला है। प्रस्तर और कांसे से बने ये सुन्दर मूर्तियां राजस्थान की तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों को समझने में बड़ी सहायक सिद्ध होती है।⁷

मूर्तिकला में वैष्णव धर्म :

हिन्दू धर्म में अनेक देवी देवताओं की उपासना को लेकर विभिन्न सम्प्रदाय प्रचलित रहे हैं, जिनमें वैष्णव मत काफी लोकप्रिय था। उत्तर-गुप्त एवं उनके बाद के युग की विष्णु और उसके अवतारों की प्रतिमाएँ बहुत बड़ी संख्या में पूरे भारतवर्ष में मिलती हैं,⁸ जो इस बात का प्रमाण है कि उस समय विष्णु-पूजा प्रचलित थी। विष्णु के अवतारों में कृष्ण की इस समय सबसे अधिक मान्यता रही। उत्तर-गुप्तयुग एवं उसके बाद के अनेक मन्दिरों में भगवान कृष्ण की विभिन्न लीलाएँ अंकित हैं।

वैष्णव धर्म की प्राचीन परम्परा घोसुण्डी के अभिलेख से ज्ञात होती है। राजस्थान के उदयपुर में 661 ई. के, 815 ई. के बुचकला तथा 1026 ई. के नागदा के अभिलेखों से वैष्णव धर्म की परम्परा की व्यापकता का भान होता है। राजस्थान के तत्कालीन चित्तौड़ खेड़, नागदा, तलवाड़ा, बाडोली, पीपाड़, खेतड़ी सीकर, बघेरा, आभानेरी आदि के विष्णु मन्दिरों एवं संग्रहालयों में प्राप्त विष्णु की अनेक मुद्राओं एवं अनेक देवी-देवताओं के साथ प्रतिमाएं राजस्थान में वैष्णव धर्म की प्रकृति और विकास को समझने में सहायक सिद्ध होती हैं।

राजस्थान में विष्णु के विभिन्न अवतारों वाली मूर्तियां प्राप्त होती हैं जो वैष्णव धर्म को उजागर करती हैं। जैसे कि पशु अवतार, जो कि महाकाव्यों एवं पुराणों से ज्ञात होता है कि वैष्णव धर्म में विष्णु के पशु अवतारों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। पौराणिक कथाओं के अधिक लोकप्रिय होने के कारण ही विष्णु के पशु अवतारों का अंकन मूर्तिकला में पाया जाता है। मत्स्य अवतार का मूर्त रूप सामान्यतः कमल पत्र या कल्पलता अभिप्राय पर अधिष्ठित मत्स्य के रूप में ही प्राप्त होता है। राजस्थान में मत्स्य पशु रूप में अंकन का एक विशिष्ट तथा अत्यन्त मनोहारी प्रकार प्राप्त होता है। इस प्रकार की मूर्तियां राजस्थान के आहड़ से प्राप्त हुई हैं। कूर्म अवतार एवं वराह अवतार के उदाहरण हमें चित्तौड़ के कालिका माता के मन्दिर की मूर्तियों एवं चन्द्रभागा के मंदिरों से प्राप्त प्रतिमाओं से प्राप्त होते हैं। राजस्थान के झालरापाटन के वैष्णव मन्दिर में नृसिंह अवतार की मूर्तियां प्राप्त होती हैं जो कि राजस्थान में

वैष्णव धर्म के विभिन्न आयामों का परिचय कराती नजर आती है।

रंगमहल से प्राप्त गोवर्धन पर्वत को उठाते हुए कृष्ण की जो मूर्ति मिली है वह इस समय बीकानेर के संग्रहालय में रखी हुई है। जो कि चौथी शताब्दी की है। गोवर्धनधारी कृष्ण के सिर पर मुकुट, गले में घुटनों तक छूती हुई वनमाला, वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न तथा त्रिकोणाकार गैवेयक देखकर कुशल कलाकार ने यहां 'विष्णुत्व' को प्रदर्शित किया है। श्री कृष्ण की इस मूर्ति के दृश्य में गोवर्धन पर्वत की अपने बांये हाथ में उठाये हुये हैं व उनका दाया हाथ हस्त कटि पर टिका हुआ है।⁹

उपर्युक्त के अतिरिक्त वैष्णव धर्म के विभिन्न अवतारों के रूप में श्रीराम एवं कृष्णजी की भक्ति परम्परा भी वैष्णव धर्म के प्रचलन का मार्ग राजस्थान में प्रशस्त करती नजर आती हैं। आबानेरी, केकीन्द, नागदा एवं किरातकूप के सोमेश्वर मन्दिर में विष्णु, बलराम तथा परशुराम के साथ रामजी की मूर्तियां भी प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण की व्यापक भक्ति की पुष्टि ओसियां, किरातकूप, केकीन्द, कामां, देलवाड़ा, आमेर, आभानेरी आदि स्थलों से प्राप्त कृष्णजी की मूर्तियों और उनके विविध रूपों से स्पष्ट होती हैं।

मूर्तिकला में शैव धर्म:

राजस्थान के सन्दर्भ में जब धर्म के आधार पर संस्कृति का विवेचन किया जाता है तो शैव धर्म राजस्थान की संस्कृति का प्रमुख अंग है। शैव धर्म में साधना, तप, योग, आदि क्रियाओं के माध्यम से मोह और माया विरक्त होकर अमरत्व की प्राप्ति की सकती है। प्राचीनकाल एवं मध्यकालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राजस्थान में शिव की अर्चना एकलिंग, योगराजेश्वर, गिरिसुतापति, समिधेश्वर, चन्द्रचूड़, भवानिपति, अचलेश्वर, शम्भु आदि विविध नामों से जानी जाती थी।¹⁰ राजस्थान में शैव धर्म की प्रसिद्धि का पता हमें अनेक मूर्तियों, अभिलेखों एवं मन्दिर निर्माण व उनकी व्यवस्था हेतु प्रदत्त अनुदानों से चलता है।

राजस्थान में अनेक रूपों में भगवान शिव की पूजा प्रचलित थी जो शैव धर्म का परिचायक भी थी। शैव धर्म की प्रसिद्धि अनेक अभिलेखों से ज्ञात होती है जैसे कि कंसुआ का अभिलेख, शंकर घट्टा अभिलेख एवं मण्डोर अभिलेख (7-8 ई. के मध्य) आदि।

तत्कालीन शिव मन्दिरों से प्राप्त मूर्तियां शैव धर्म का राजस्थान में विकास व प्रचार को दर्शाती हैं। जैसे कि सीकर, उदयपुर, राजगढ़, कल्याणपुर, कंसुआ, चित्तौड़गढ़, झालरापाटन, बाडोली, कामां आदि जहां शैव धर्म लोकप्रिय था। ताण्डव नृत्य मुद्रा में शिव की द्विभुजी प्रतिमाएं राजस्थान में उपलब्ध हुई है। भगवान शिव और पार्वती की संयुक्त प्रतिमाएं सीकर के संग्रहालयों में संरक्षित है। सीकर संग्रहालय में सुरक्षित एक महत्वपूर्ण प्रतिमा में शिव पार्वती को आलिंगनबद्ध मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है।¹¹

अहिच्छत्रपुर (नागौर) से प्राप्त गुप्तकालीन इस शिव भगवान की मूर्ति में शिव को एक औरत के साथ दिखाया गया है। वह और अंजली मुद्रा में उनके बांयी तरफ श्रद्धापूर्वक खड़ी है और कोने में एक पुरुष की आकृति भी है। शिव इस मूर्ति में अपने हाथों में एक छोटे मटके रूपी पात्र को धारण किये हुये हैं जिसमें कुछ फुल-पत्तियां दिखाई दे रही है। मूर्ति में कंधे से सीने पर एक वस्त्र पट्टिका नजर आती है। मूर्ति में शिवजी का घुटना मुड़ा हुआ दिखाई देता है जिससे यह प्रतीत होता है कि शिवजी बैठे हुये हैं।¹²

राजस्थान में एक अत्यन्त सुन्दर, चतुर्मुख शिवलिंग कंसुआ (कोटा) में है। यह मूर्ति अत्यन्त छोटी है फिर भी यह निःसन्देह चतुर्मुख शिवलिंग का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। इसमें अघोर के वीभत्स भाव को खुला हुआ मुख, बाहर निकली हुई दो दंष्ट्राएं उत्कीर्ण करके व्यक्त किया गया है जबकि वामदेव का मुख मुस्कानयुक्त स्त्री गुणोचित कोमलता लिए हुए हुए तथा सद्योजात तथा तत्पुरुष मुख शान्ति एवं पवित्रता अभिव्यक्त करते हुए अंकित किये गये हैं। यह मूर्ति 8वीं शताब्दी की है।¹³

राजस्थान के गंगानगर में घग्घर के तट पर स्थित रंगमहल के उत्खनन में चौथी शताब्दी की उमा-माहेश्वर की मूर्ति प्राप्त हुई है। इस मृण्मालक में शिवजी नंदी बैल पर विराजमान हैं। उनके बांयी तरफ पार्वती बैठी हुई है। रंगमहल से प्राप्त इस एकमुख शिवलिंग मृण्मूर्ति फलक में शिव के मस्तक के मध्य त्रिनेत्र अंकित है।¹⁴ यह मूर्ति तत्कालीन शैव धर्म का आभास कराती है।

इस प्रकार राजस्थान के विभिन्न शिव मंदिरों में और संग्रहालयों में शिवलिंग, अर्द्धनारीश्वर, उमामहेश्वर आदि मूर्तियां देखने को मिलती है जो मूर्तिकला में शैव धर्म को परिलक्षित करती नजर आती हैं।¹⁵

मूर्तिकला में शाक्त धर्म:

सिन्धु सभ्यता की मातृदेवी की पूजा परम्परा राजपूताने की सरस्वती, दृषद्वती तथा आहड़ संस्कृति के भग्नावशेषों में देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त रंगमहल, रेड और विराटनगर आदि स्थानों के उत्खनन प्राप्त देवी की आकृति के अवशेष यहां तीसरी चौथी शताब्दी तक शक्ति प्रभाव को अभिव्यंजित करते हैं।¹⁶

पुरातात्विक एवं पुरालेखीय प्रमाणों के आधार पर राजस्थान में शक्ति पूजा का प्रचलन ईस्वी शताब्दी के प्रारम्भ से माना जा सकता है। उत्तर गुप्तकालीन राजस्थान में शक्ति पूजा विविध रूपों में प्रचलित थी। पहला, भयनाक रूप जिसमें वह महिषमर्दिनी, चामुण्डा तथा सप्तमातृका के रूपों में अंकित थी। दूसरा शान्त रूप, जिसमें क्षेमकारी, सरस्वती, लक्ष्मी (गज-लक्ष्मी), श्रृंगारदुर्गा तथा तपस्यारत पार्वती आदि रूपों में शक्ति की उपासना होती थी। तीसरा, अभयदान का रूप, जिसमें महिषमर्दिनी, सरस्वती और लक्ष्मी के रूप में देवी क्रमशः कल्याण, ज्ञान तथा धन का दान करने वाली थी। इस स्वरूप में देवी की पूजा सभी धर्मों एवं संप्रदायों द्वारा होती थी।¹⁷ राजस्थान में शांति के समय इस शक्ति स्वरूपा देवी को अपनी माता, धातृ एवं कल्याणकारी मानकर शक्ति के अनेकानेक मंदिरों के निर्माण करवाये गये। राजस्थान के में शाक्त धर्म के मंदिरों एवं मूर्तियों का प्राप्त होना तत्कालीन समय में यहां इस शाक्त मतावलंबियों का होना बताता है।

मूर्ति शक्ति पूजा विषयक अनेक उल्लेख राजस्थान में इसके व्यापक प्रभाव प्रसार को निर्दिष्ट करते हैं। पुरातात्विक एवं पुरालेखीय प्रमाणों के आधार पर राजस्थान में शक्ति पूजा का प्रचलन ईस्वी शताब्दी के प्रारम्भ से माना जा सकता है। देवी अंकन का प्रारम्भिक पुरातात्विक उदाहरण नगर (कर्कोटनगर, टोंक) से प्राप्त एक पकाई हुई मिट्टी का ठीकरा है जो अधुना आम्बेर संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें देवी महिषासुर को अपने जांघों पर रखकर वध करती हुई अंकित है। इसी कथा वस्तु के मूर्त रूपांकन कालीबंगा, चन्द्रभागा, ओसियां, बाडोली, लगत, रेवाड़ा आदि के मन्दिरों एवं शक्ति प्रतिमाओं से प्राप्त होते हैं। ये मूर्त रूपांकन राजस्थान में शक्ति पूजा या शाक्त धर्म के प्रचलन व प्रसार के द्योतक हैं।¹⁸

अहिच्छत्रपुर से प्राप्त गुप्तकालीन चामुण्डा देवी के धड़ वाली मूर्ति में देवी

की पसलियां क्षीण अवस्था में प्रतीत होते हैं। इस मूर्ति के वक्षों पर झुमर लटके हुये हैं। पैर अन्दर धंसा हुआ है। मूर्ति के नीचे बिच्छु तथा छिपकलियां घुम रही हैं। जो मूर्ति को डरावना प्रस्तुत कर रहे हैं। इसका साहित्यिक विवरण धनपाल की तिलकमंजरी में है। जिसकी रचना 11वीं शताब्दी में हुयी थी।¹⁹

बीकानेर संग्रहालय में सुरक्षित चौथी शताब्दी की एक मृण्मूर्ति जिसमें देवी अपने दाहिने चरण से महिष की पृष्ठ भाग और वामाध कर से मुंह को दबाकर मरोड़ती हुई अंकित है।²⁰

राजस्थान के राजाओं में शक्ति के प्रति विश्वास बहुत अधिक रहा है। इसका यही कारण यह है कि यहां के राजपरिवारों में शक्ति को कुल देवी के रूप में मान्यता दी। उदाहरणार्थ चौहान शासकों के काल में उन्होंने शाकम्भरी देवी (सांभर) और आशापुरा को अपनी आराध्य देवी माना।²¹ इसी प्रकार कछवाहों शासकों ने जमवाय माता (जमवारामगढ़, जयपुर) तथा तंवर राजपूतों ने चिलाय माता को अपनी कुलदेवी के रूप में माना, जो इस राजवंश में प्राचीनकाल से ही इस वंश में योगमाया, योगेश्वरी आदि नामों से पूजित थी।

शक्ति स्वरूपा देवी की मूर्तियां यथा महिषासुर मर्दिनी, चामुण्डा एवं अम्बिका आदि प्रतिमाएं भी अन्याय स्थानों तथा संग्रहालयों के अन्तर्गत उपलब्ध होती है।

निष्कर्षतः अनवरत विकसित और पल्लवित होती हुई मूर्ति पूजा तथा मूर्ति निर्माण की परम्परा राजस्थान के अभुतपूर्व इतिहास और संस्कृति की जीवन्तता की साक्षी बनकर अतीत के गौरव, वर्तमान की समृद्धि के समानान्तर भविष्य की आशा के प्रतिमान तथा परिचायक रूप में प्रगति पथ पर अग्रसर है। इस प्रकार राजस्थान मूर्तिकला की दृष्टि से विभिन्न धर्मों का केन्द्र रहा है, इन मूर्तियों में यहाँ के धर्म एवं धर्मावलंबियों के दर्शन होते हैं। यह मूर्तियां न केवल राजस्थान के विभिन्न धर्मों को समझने में सहायक है; अपितु राजस्थान एवं भारतीय धार्मिक परम्परा का विकास समझने की माध्यम भी हैं।

सन्दर्भ :

1. पुष्यमित्र सिंहदेव : जयपुर का इतिहास एवं पुरातत्व, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर पृ. 2
2. नीलिमा वशिष्ठ : राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 3

3. रामायण : 3/12/17-20
4. देखें डॉ. ओंकार नारायण सिंह का लेख : ऐतिहासिक सन्दर्भ में मूर्ति पूजा एवं पूर्व मध्यकालीन राजस्थान में मन्दिर निर्माण, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसिडिंग्स, पृ. 196-197
5. पुष्पमित्र सिंहदेव : जयपुर का इतिहास एवं पुरातत्व, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 125
6. रतनचन्द्र अग्रवाल : एनसीयेन्ट स्केल्पचर्स एण्ड टेराकोटाज फ्राम राजस्थान : रिसर्च, खण्ड 1, पृ. 16
7. वही, पृ. 16
8. देखें हरिदास भट्टाचार्य : दी कल्चर हेरिटेज ऑफ इण्डिया, वाल्यूम चतुर्थ, पृ. 47-48
9. नागर, शांतिलाल – डीटीज इन टेराकोटा आर्ट, बी.आर. पब्लिकेशन कार्पोरेशन, 2008, पृ. 41
10. पेमाराम : राजस्थान के धर्म एवं सम्प्रदाय, पृ. 16
11. शेखावत, सुरजनसिंह : शेखावाटी के शिलालेख : एक अध्ययन, पृ. 7-9
12. नागर, शांतिलाल – डीटीज इन टेराकोटा आर्ट, बी.आर. पब्लिकेशन कार्पोरेशन, 2008, पृ. 101
13. नीलिमा वशिष्ठ : राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 80
14. उपरोक्त
15. वही पृ 84
16. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,

MONIKA
Research Scholar
English Deptt.
University of Rajasthan
Jaipur

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

THE POETRY OF CRITICAL INTELLIGENCE: A STUDY IN THE LIGHT OF RASA THEORY

The Poetry of Critical Intelligence came in existence during the mature phase of Modernism. The theory of The New Criticism was influenced by T.S. Eliot and his single most influential work 'Tradition and Individual Talent', was central to many of the tendencies in Anglo-American Criticism, with the emphasis on the historical sense and 'depersonalization' of the artist. By the historical sense Eliot meant the tradition of writing in which, the writers must situate themselves and 'depersonalization was the objectivity or impersonality in writing. Both conditions, Eliot stated, required 'to approach the condition of science'. Arnold's words 'objective', 'scientific', and 'disinterested' indicate that Eliot's criticism was inspired with Arnold's criticism of the test.

Some poetry as well as criticism, of the mature phase of modernism came up with the idea of 'art for art's sake' yet, according to Gerald Graff, Wellek and others; for the new critics to truly understand a work of literature, it was important to 'embrace a total historical scheme'.

Thus the poetry of critical intelligence was associated with the new criticism. It denounced the loss of intelligence in thought process, expressed sentimentality in emotions and the divorce between language and feeling. This poetry developed with poststructuralist notion of the 'death of author' and with deconstruction's freeing of the text from 'presence' and 'meaning'²² Structuralist, Roland Barthes subversion of the traditional humanistic view, "as institution, the author is dead" (The Death of Author, in Image-Music-Text, trans. 1977) It would be just to state that, all the influences discussed above were shaping the canon of the New Critics. As, T.S. Eliot followed by Cleanth Brooks and other New Critics in 1930s and later, made Donne's writings the very paradigm of the self-ironic and paradoxical poetry they most admired and so helped elevate him to a high place within the English

canon.³

The poetry of Critical Intelligence did not subscribe subjectivity or personality of the poet. These poets had their own views at some extent they were deviated from each other but had one view on basic form of poem. They did not apply science of linguistic device to poetry and their emphasis was not on a work as constituted by linguistic devices for achieving specifically literary effects but on the complex interplay within a work of ironic, paradoxical and metaphoric meaning around a humanly important “theme”.⁴ Figurative language in the form of paradox was the major concern of new critics. (Paradoxes)

‘We are chattel and liege
of an undying Worm’

John Crowe Ransom from
(Poets Have Chanted Mortality)
from *Fugitive*, 1922

‘That doubt, that shirk,
That dawn of darkening.’

– I.A. Richards from (*Alas Extra*)

Cleanth Brooks claimed for this poetic qualities that, “the language of poetry is the language of paradox” in the *Well-Wrought Urn* (1947).⁵

The New Critics applied their principles of criticism to many genres in literature, but they held poetry in high regard. Among the American New critics, a nucleus of poets and critics including Penn Warren, Ransom and Tate defined their notion of a literary aesthetic, especially as it related to poetry, during 1920s. They expended their definition of the poetic aesthetic and claimed poetry to be the ultimate form of communication, complete in meaning and form in itself.⁶

I.A. Richards submitted poetic language to a kind of scientific scrutiny seeking to explain its meaningfulness in psychological terms such as the build-up and release of tension.⁷ Richards rejects the thought that, poetry is feeling, but held it to be an organization of meanings to be rationally analyzed.

Later, F.R. Leavis turned his attention to the detailed analysis of 'literary text themselves' and analytical focus of the New Critics on what he called "the words on the page."

The explicative analysis of internal verbal interactions characteristic of the New Criticism derived from such books as I.A. Richards' *Practical Criticism* (1929) and Empson's *Seven Types of Ambiguity* (1930). Richards' other critical works includes: *Principles of Literary Criticism* (1924), 'The Philosophy of Rhetoric' (1936) and 'The Meaning of Meaning' (1946) etc. His poetic works includes, collection of poetry: "Goodbye Earth and Other Poems" (1958), 'The Screens and Other Poems' (1960), *Internal Colloquies: The Poems and Plays of I.A. Richards* (1971) and 'New and Selected Poems' (1978).

William Empson's collections of poetry include 'Poems', privately printed, 1934, 'The Gathering Storm' (poems), 1940, 'Collected Poems of William Empson', 1949 etc.

T.S. Eliot in his posthumously published essay, 'To Criticise the Critic' commented, Empson as primarily a theoretical critic, whose criticism had no obvious connection with his poetry.⁹

In seven types of Ambiguity Empson explored the development of systematic modes of literary interpretation. His intellectual range encompasses the science as well as world of literature and he saw himself as always maintaining oneself between contradictions that can't be solved by analysis.¹⁰

Aharez elaborates that Empson's work encourages other writers for their own end and he notes "Empson's verse was read with overwhelming sense of relief after the brash embarrassed incoherence of wartime and post-war time."¹¹

John Crowe Ransom's collections of poetry include 'Poems about God', 1919, 'Chills and Fever' (poems), 1924, 'Grace after Meat' (poems), 1924, 'Two Gentlemen in Bonds' (poems), 1927.

Allen Tate's poetic pieces include 'The Golden Mean and Other Poems' (1920). 'Mr. Pope and Other Poems' (1928), 'Three poems : Ode to the

Confederate Dead, Message from Abroad, The Cross'. 'The Mediterranean and Other Poems' (1936), 'Sonnets at Christmas' (1941), 'The Winter Sea' (1944), 'Collected Poems 1919-1976' (1977) etc.

Concluding lines of 'Ars Poetica', poem by Archibald MacLeish best expresses the idea of art for art's sake and the idea of the poetry of critical intelligence. It says :

'A poem should not mean
But be'

The only meaning of related theory can be understood with these words.

The Indian Theory of Rasa

"Rasa", like Dharma is one of the keywords of Indian culture characterising its aesthetic aspect. In the words of V.K. Golak "Rasa is one of those quintessential words in Sanskrit which sum up a whole philosophy or even a civilization."¹² The word 'Rasa' has diverse interpretations. The word Rasa is composed of two letters Ra and Sa. Etymologically Ra means "to give"¹³ and Sa means "Motion".¹⁴ Ra and Sa put together has several meanings according to Panini's grammar, all of which are not related to one another. V.B. Apte lists several meanings of the word Rasa, "to flow", "to soak or saturate in liquid", "to taste or relish", "water", "flavour", "liquid", "sauce", "pleasure", "delight", "happiness", "Charm", "interest", "elegance", "beauty" etc.¹⁵

The chief exponents of the Rasa theory were; Bharata, Anandavardhana, Raja Sekhara, Dhananjaya, Abhinavagupta, Kuntaka, Mahimbhatta, Visvanatha and Jagannatha etc.

Bharata says for 'Rasa': "Rasa is so-called because it is capable of being tasted (asvadate).¹⁶ Bharatmuni talks about eight Rasas; the ninth rasa came later with Abhinavagupta and was called "Santam".

Some of the Rasa theories are found, though with a different emphasis in view of different literary and critical situations, in contemporary literary criticism of the West. For example, "The echoes of Anandawardhana's theory of Dhvani, Kuntaka's theory of Vakrokti and Mahimbhatta's theory of Anumiti

may be easily heard in the critical theories of I.A. Richards, William Empson, John Crow Ransom, R.P. Blackmur and Cleanth Brooks.¹⁷ Krishna Rayan in his book “Suggestion and Statement in Poetry (1972) relates his concept of “suggestion” to I.A. Richards’ emotive meaning”, William Empson’s “ambiguity”, Cleanth Brooks’ “irony”, Tate’s “Intension”, Ransom’s “texture” and Blackmur’s “gesture”.¹⁸

Thus, this research work will propose to study the poetry of critical intelligence, in the light of the Indian theory of Rasa. The whole study will be designed to compare, analyze and contextualize the poetry of I.A. Richards, William Empson, John Crowe Ransom and Allen Tate in the light of Rasa theory.

Rasa in the Poem ‘Dead Boy’

The poem “Dead Boy” by Ransom presenting two opinions of society on the death of a boy. Here, according to rasa theory the poem is revealing ‘Bibhatsa’ and ‘Vatsalya’. His mother calls him ‘sword beneath heart’, and feeling of guilt on the death by society both are the ‘bhavas’ of ‘Jugupsa’ that lead to ‘Bibhatsa’. But the cry of mother has a deep love for the boy is the ‘bhava’, ‘Rati’ and it leads to ‘Vatsalya’. In the similar manner research will study the poetry of four chosen poets on the scale of rasa theory.

References

1. Selden, Raman, Peter Widdowson and Peter Brooker. A Reader’s Guide to Contemporary Literary Theory. 5th Ed. (2011) : Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd., Pearson Education in South Asia. pp. 25.
2. Selden, Raman, Peter Widdowson and Peter Brooker. A Reader’s Guide to Contemporary Literary Theory. 5th Ed. (2011) : Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd., Pearson Education in South Asia. pp. 31.
3. Abrams, M.H., Geoffrey Gatt Harpman. A Glossary of Literary Terms. 10th ed. (2012) : Cengage Learning Delhi. pp. 383.
4. Abrams, M.H., Geoffrey Gatt Harpman. A Glossary of Literary Terms. 10th ed. (2012) : Cengage Learning Delhi. pp. 42.
5. Abrams, M.H., Geoffrey Gatt Harpman. A Glossary of Literary Terms. 10th ed. (2012) : Cengage Learning Delhi. pp. 140.
6. Abrams, M.H., Geoffrey Gatt Harpman. A Glossary of Literary Terms. 10th ed. (2012) : Cengage Learning Delhi. pp. 267.
7. Ransom, John Crowe. The New Criticism Essay. The New Criticism. VQR, Web. 5, Aug. 2015.

8. Bell, Michael. *The Context of English Literature 1900-1930* (1980) : Methew & Co. Ltd., London. pp. 46.
9. Abrams, M.H., Geoffrey Gatt Harpman. *A Glossary of Literary Terms*. 10th ed. (2012) : Cengage Learning Delhi. pp. 242.
10. Gill, Roma. *Williom Empson : The Man and His Work* (1974) : Routledge and Kegan Paul, London. pp. 53.
11. Carter, Ronald, and John MacRae. *The Routledge History of Literature in English*. 2nd ed. (2001) : Heritage Publishers, New Delhi. pp. 379.
12. Ransom, John Crowe. "The New Criticism Essay. The New Criticism Introduction." Poetry Foundation. Web. 5, Aug. 2015.
13. Prasad, Gupteshwar. "I.A. Richards and Indian Theory of Rasa" : 1. Sarup & Sons, New Delhi. / Gokak, V.K. *Sri Aurbindo Circle, 5th Number* (Pondicherry, Bombay, 1949), p. 210.
14. Prasad, Gupteshwar. "I.A. Richards and Indian Theory of Rasa" : 1. Sarup & Sons, New Delhi. p. 2 / *Radana-Bhattoji Deekshit : Siddhabta Kumudi* (Khem Raja Sri Krishna Das, Bombay, 1926), p. 465.
15. Prasad, Gupteshwar. "I.A. Richards and Indian Theory of Rasa" : 1. Sarup & Sons,

प्रो. किरन सरना (शोध निर्देशिका)
पंकज रानी, (शोधार्थी)
दृश्यकला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ (राज०)

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

ग्रामीण महिलाओं के विकास का माध्यम “हस्तशिल्प”

कला मानव की मनोवृत्ति है, मनुष्य अपने मनोभावों के अनुसार सृजन करता है तथा सृजनात्मक प्रक्रिया के अनुसार मनुष्य अनेक कलाओं से जुड़ जाता है। जिनसे मनुष्य अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इन कलाओं के अंतर्गत लघु हस्तकलाएँ भी आती हैं।

हस्तकलाएँ वे कलाएँ होती हैं जिनको कलाकार साधारण औजारों तथा हाथों द्वारा निर्मित कर सकें। इन कलाओं में कागज, लकड़ी, मिट्टी, पत्थर, धातु आदि सजावटी सामान आते हैं।¹

भारत में वैदिक काल से ही कलाओं की संज्ञा शिल्प से कि गई है।² इस प्रकार हम देखें तो हस्तशिल्प प्रारंभ से ही हमारे देश में प्रचलित है तथा हस्तशिल्प का चरमोत्कर्ष हमें, बौद्ध काल में देखने को मिलता है। बौद्धकाल में हस्तशिल्प के विकास के कारण बड़े-बड़े नगर बसाए गए तथा बड़े नगरों में हस्तशिल्प के आधार पर मनुष्य को श्रेणीगत किया गया तथा प्रत्येक श्रेणी की अपनी एक परिषद् या सभा होती थी, इन्हीं श्रेणियों के आधार पर विभिन्न जातियों का संगठन किया गया जिनमें लौहाकार, स्वर्णकार, चर्मकार, कर्मकार, कुम्भकार, वेणुकार आदि जातियाँ सम्मिलित थीं।³

बड़े नगरों के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्र में भी हस्तशिल्पियों की अनेक जातियाँ निवास करती हैं। इसी प्रकार हम देखें तो ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के बाद हस्तशिल्प का द्वितीय स्थान है। देश के लगभग 76.69 प्रतिशत लोग गांवों में निवास करते हैं तथा नवीन जनगणना के अनुसार लगभग 69 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है, 121 करोड़ की जनसंख्या में 83.8 करोड़ लोग ग्रामीण क्षेत्रों में बसते हैं जिसमें 45 करोड़ महिलाएँ हैं।⁴ ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ पुरुषों के साथ विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत हैं जैसे—डॉक्टर, विधिक, फैशन, मनोरंजन, डिजाइन के क्षेत्र में, तकनीकी क्षेत्र में और हस्तकला में भी

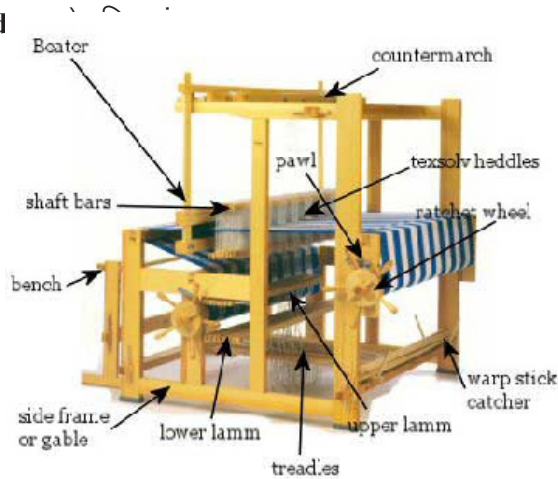
महिलाओं का प्रमुख स्थान है।⁵

प्रस्तुत शोध पत्र में 'नूरपुर ब्लॉक उत्तर प्रदेश की ग्रामीण महिलाओं की हस्तकला को जानने का प्रयत्न किया गया है।'

नूरपुर उत्तर प्रदेश जिला बिजनौर में एक नगरपालिका है जिसके अंतर्गत प्रमुख ग्राम आते हैं।⁶ नूरपुर ब्लॉक के ग्रामीण क्षेत्र में हस्तकला का कार्य महिलाओं द्वारा बहुत लगन से किया जाता है जिसमें विभिन्न प्रकार की हस्तकलाएँ सम्मिलित हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्न है—

- ☼ हथकरघा
- ☼ कशीदाकारी
- ☼ मृत्तिका पात्र
- ☼ अन्य कलाएँ

हथकरघा (Hand

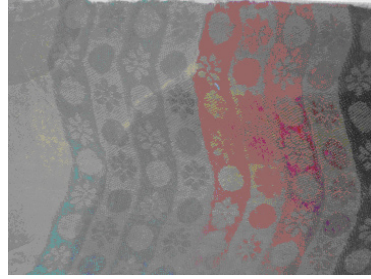


मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में वस्त्र एक प्रमुख आवश्यकता है। प्राचीनकाल से ही मनुष्य अपने शरीर को ढकने के लिए घास-फूस पेड़-पौधे व पत्तियों का प्रयोग करता रहा है परन्तु जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ वस्त्रोत्पादन कला का विकास तथा हथकरघे द्वारा विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का निर्माण किया जाने लगा।⁷

हथकरघा बिना किसी विद्युत की सहायता अर्थात् हाथ से चलने वाली मशीन को कहते हैं।⁸ आधुनिक युग में भी हथकरघा पर बुने वस्त्र का प्रचलन है जो विभिन्न ग्रामीण कलाकारों द्वारा भी बनाए जाते हैं। नूरपुर ब्लॉक की महिलाएँ भी वस्त्र को बुनने का कार्य हथकरघे पर करती हैं नूरपुर में सर्वेक्षण

के अनुसार विभिन्न ग्राम विटरा, रमाना, ताजपुर, शिवाला कलां, शिवाला खुर्दे, ईस्माइलपुर आदि ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं द्वारा हथकरघे पर विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का निर्माण ऊनी, सूती, रेशमी तथा अन्य धागों द्वारा किया जाता है।

महिला कलाकारों द्वारा कपड़ों में अनन्य प्रकार के डिजाइनों का प्रयोग किया जाता है। महिला कलाकारों द्वारा जो वस्त्र बनाए जाते हैं उनमें बैडशीट, चादर, खादी, कंबल, स्टोल, शॉल (देखें चित्र सं.- 2.-3) आदि वस्त्रों का निर्माण किया



(चित्र सं.- 2)

(चित्र सं.- 3)

अतः कहा जा सकता है कि नूरपुर ब्लॉक के ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ वस्त्र निर्माण का कार्य करके अपने परिवार की आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से सहायता कर रही हैं।⁹

कशीदाकारी :

कशीदाकारी का अर्थ है किसी भी कपड़े पर सुई द्वारा नमूने बनाना।¹⁰ कशीदाकारी भारत की वैदिक कालीन परम्परागत कला है वैदिक काल में कशीदे के कार्य को पेशम् कहा जाता था। वैदिक काल से ही कशीदाकारी के कार्य में स्त्रियाँ निपुण मानी जाती हैं।¹¹ वेदों में कशीदाकारी का वर्णन निम्न प्रकार मिलता है यजुर्वेद में कशीदाकारी के काम करने वालों को पेशस्कारी (वस्त्रों पर सुईकारी, किमखाब या कढ़ाई करने वाले) कहा जाता था।¹² रामचरित मानस के शब्द कोश में भी कशीदे का वर्णन है इसमें कशीदा काढ़ने को 'सूची कर्म' के नाम से उल्लेखित किया है अतः इस प्रकार कशीदाकारी को विभिन्न शब्दों से उल्लेखित किया जा सकता है।¹³

कशीदाकारी आज आधुनिक युग में भी प्रचलित है इसका कार्य नूरपुर ब्लॉक के ग्रामीण क्षेत्र में भी हथकरघे की तरह महिलाओं द्वारा घर के अंदर रहकर किया जाता है।

नूरपुर ब्लॉक के ग्रामीण क्षेत्र की कशीदाकारी के विषय में जानकारी के लिए मूल ग्रंथों का अभाव होने के कारण संपूर्ण जानकारी साक्षात्कार एवं सर्वेक्षण पर आधारित हैं।

गांव शिवाला कला में कार्यरत 'नूरजहाँ खातून' के अनुसार—नूरजहाँ की उम्र लगभग 55 वर्ष है तथा वह नूरपुर के गांव शिवाला की निवासी है वह मध्यवर्गीय परिवार से संबंधित है। नूरजहाँ कशीदाकारी के कार्य से लगभग 20 साल से जुड़ी है। उन्हें कशीदाकारी का बिचौलिया कहा जा सकता है। नूरजहाँ कशीदे का कार्य रेशमी, सूती कपड़ों पर शुरूआत में स्वयं करती थी। जब उनके आस-पास की महिलाओं ने नूरजहाँ को कढ़ाई करते देखा तो उनको भी इस कला में रुचि आने लगी इस प्रकार नूरजहाँ ने अन्य महिलाओं को भी कशीदाकारी का कार्य सिखाना शुरू कर दिया। आस-पास की महिलाओं की रुचि देखकर नूरजहाँ की शौकीन कला ने व्यापारिक रूप ले लिया और नूरजहाँ कशीदाकारी के अन्य बिचौलियों से जुड़कर कढ़ाई का कार्य स्वयं के गांव तथा अपने आस-पास के गांव में द्वारा उनके घरों के अंदर ही कराने लगी। जिसमें महिलाओं के समय सदुपयोग एवं घर में आर्थिक सहयोग भी हो जाता था।

नूरजहाँ जी ने बताया कि सर्वप्रथम महिलाओं से प्रशिक्षण के लिए केवल रेशम के धागों से कढ़ाई कराई जाती थी। जिसमें उन्हें केवल पत्तियाँ बनानी होती थी। जिससे यह ज्ञात किया जा सके कि महिलाएँ कढ़ाई का कार्य ठीक प्रकार से कार्य कर सकती हैं कि नहीं। प्रशिक्षण उपरांत उन्हें पूरे सूट को काढ़ने के लिए दिया जाता है जिसे कढ़ाई करके महिलाएँ कुछ रुपये कमा लेती हैं जितनी कढ़ाई होती थी उसके अनुसार महिलाओं उसकी कीमत मिलती है।

नूरजहाँ खातून प्रमुख कलाकार होने के कारण कढ़ाई किए हुए वस्त्र एवं बिना कढ़ाई किए वस्त्रों का आदान प्रदान करती है इन वस्त्रों का आदान-प्रदान वह अपने आस-पास के शहरों जैसे नौगांवा, अमरोहा, गजरौला, बरेली आदि से करती हैं यहाँ कढ़ाई किए गए वस्त्रों की मांग अधिक है।¹⁴

कशीदाकारी में विभिन्न प्रकार के धागों एवं मोतियों का प्रयोग किया जाता है। धागों में रेशमी, सूती धागा, जरदोजी आदि तथा मोतियों में सिप्पी, कटदाना, सितारे अन्य अलग-अलग प्रकार के मोतियों का प्रयोग किया जाता है इन सभी

सामग्रियों को प्रमुख कलाकार द्वारा अन्य कलाकारों को दिया जाता है।

कशीदाकारी के द्वारा कपड़ों पर विभिन्न प्रकार के डिजाइन बनाए जाते हैं, जैसे—बूटी, बूटा, बेल, जाल और जंगला, चैन झालर आदि डिजाइनों का प्रयोग किया जाता है।¹⁵ इस प्रकार कुछ डिजाइन हमें, उत्तर वैदिक कला की कशीदाकारी के कार्य में भी देखने को मिलते हैं जिनमें प्रघात् (लटकन) तुष(झालर) दशा (किनारा) आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।¹⁶ जिसका एक वर्तमान नमूना हम



(चित्र सं.— 4)

अतः अंत में नूरजहाँ खातून ने कहा की अब आधुनिक युग में मशीनी युग आने के कारण कशीदाकारी का कार्य लुप्त होने लगा है जिससे नूरजहाँ एवं अन्य कलाकारों को आर्थिक रूप से बहुत समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है इस कारण कलाकारों को इस कला के लुप्त होने का दुख है जो उनकी आधारशिला थी।

मृत्तिका पात्र :

मृत्तिका पात्र भी हथकरघा एवं कशीदाकारी की तरह नूरपुर ग्रामीण क्षेत्र की प्रमुख कलाओं में से एक हैं।

मृत्तिका पात्र के प्रयोग हमें मिश्र के पिरामिडों से लेकर हडप्पा व मोहन जोदड़ो की सभ्यता तक देखने को मिलते हैं। मनुष्य जीवन यापन के लिए मृत्तिका पात्र भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। धार्मिक अनुष्ठानों से लेकर मांगलिक कार्यों पर भी मृत्तिका पात्रों की आवश्यकता होती है।¹⁷ इसी आवश्यकताओं की पूर्ति ग्रामीण क्षेत्र में कुम्भकार¹⁸ करते हैं। नूरपुर क्षेत्र के गांवों में भी कुम्हार

मृत्तिका पात्रों का कार्य करते हैं पुरुषों के साथ महिलाएँ भी मिट्टी से वर्तन बनाने के कार्य से जुड़ी हुई हैं। नूरपुर क्षेत्र के गांव फिना में मिट्टी के वर्तन अधिक मात्रा में बनाए जाते हैं। गांव फिना नूरपुर से लगभग 11 किमी. दूरी पर है।¹⁹

गांव में पुरुषों तथा महिलाओं द्वारा अन्य प्रकार के वर्तन बनाए जाते हैं जिनमें सुराही, घड़ा, हांडी (दूध बिलौने का एक पात्र) गमले, मग, दीपक, पौट आदि वस्तुएँ बनायी जाती हैं।

मृत्तिका पात्र बनाने की विधि :

सर्वप्रथम महिलाओं द्वारा तालाब से मिट्टी लाई जाती है तथा उसके उपरांत उस मिट्टी में पानी डालकर थोड़े समय के लिए छोड़ दिया जाता है फिर उस मिट्टी को हाथों एवं पैरों की सहायता से कुचला जाता है जिससे वह वर्तन बनाने के अनुकूल बन सके। जब मिट्टी वर्तन बनाने के अनुकूल बन जाए तब मिट्टी द्वारा चाक पर मनचाहे आकार के वर्तन बनाए जा सकते हैं। चाक पर वर्तन बन जाने के उपरांत उनको दो-तीन दिन सूखने देना चाहिए। जब वर्तन पूर्ण रूप से सूख जाए, तब उसे भट्टी में सेका जाता है सिकाई में वर्तन जब थोड़ा भूरा दिखने लगे तक उसे भट्टी से निकाल लेते हैं। सिकाई के बाद वर्तनों पर गेरू रंग कर देते हैं तथा रंग द्वारा अन्य डिजाइन भी बना सकते हैं। इस प्रकार मृत्तिका पात्र तैयार हो जाते हैं।

गांव फिना के मृत्तिका पात्र बहुत प्रसिद्ध है यहाँ जाहर दीवान जी का एक मेला भी लगता है उस मेले में यहाँ के बने मृत्तिका पात्र भी अधिक मात्रा में बिकते हैं। इस मेले में महिलाओं के द्वारा भी मिट्टी के वर्तनों को बेचा जाता है। अतः कहा जा सकता है कि ये महिलाएँ स्वावलम्बी हैं जो पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चल रही हैं। अतः इन कलाकारों विभिन्न शब्दों में उल्लेखित किया जा सकता है।

“स्त्री ने जीना सीखा
नयेपन से अपना जीवन सींचा
जो रहती थी अबला बनकर
उसने भी अब लड़ना सीखा
चार दीवारी के अंतर से
चूल्हा चौका छोड़कर पुरुषों

के संग चलना सीखा।”

(स्वयं लिखित)

अन्य कलाएँ :

नूरपुर ब्लॉक के गांवों में हथकरघा, कशीदाकारी व मृत्तिका पात्र के अलावा अन्य कलाओं का भी बोलबाला है जिनमें बीड़ी बनाना, सिलाई करना, बुनाई करना, केंडिल बनाना, पतंग बनाना, चादरों के छोर बांधना आदि। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न कलाएँ प्रचलित हैं जिनमें महिला कलाकार बढ़-चढ़ भाग ले रही हैं। परन्तु हस्तशिल्प का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो रहा है।²⁰

राष्ट्रपति महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज्य की संकल्पना में हस्तशिल्प को बढ़ावा देने के लिए कई प्रयास किए गए। भारत सरकार ने भी प्रथम पंचवर्षीय योजना में हस्तशिल्प बोर्ड स्थापित किया तथ इसके साथ अन्य बोर्ड और लघु उद्योग बोर्ड भी स्थापित किए गए। दूसरी पंचवर्षीय योजना में खादी और ग्रामोद्योग आयोग स्थापित किया गया। यह आयोग कुम्हारी, बढईगिरी, चर्म सामग्री आदि से संबद्ध कार्यों को बढ़ावा देता है। हस्तशिल्प विकास के लिए सरकार की ओर से विभिन्न प्रशिक्षण कार्य भी आयोजित किए जाते हैं परन्तु इन सभी कार्यक्रमों का लाभ नूरपुर ब्लॉक के गांवों के हस्तशिल्पी नहीं उठा पा रहे हैं क्योंकि वह इन सभी योजनाओं से अवगत नहीं हैं।²¹

उपसंहार :

संपूर्ण शोध पत्र के माध्यम से कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ हस्तशिल्प के द्वारा स्वावलम्बी बन रही हैं तथा आर्थिक रूप से अपने परिवार का पालन-पोषण कर रही हैं परन्तु इन कलाकारों को सरकार द्वारा चलाई गई योजनाओं का ज्ञान न होने के कारण वह इन योजनाओं का लाभ नहीं उठा पा रही हैं। बिचौलियों द्वारा कम और आय देने पर भी ये महिला कलाकार के कार्य से जुड़ी हुई हैं। अतः इन महिला कलाकारों को सरकार की योजनाओं के प्रति जागरूक किया जाना अत्यंत आवश्यक है जिससे हस्तशिल्प कलाएँ और भी समृद्ध होकर समाज में प्रचलित हो सके।

पाद टिप्पणी :

1 <http://handicrafts.nic.in/introduction.html>

2 डॉ. बृजमोहन सिंह, डॉ. प्रीति गुप्ता, बरेली का हस्तशिल्प कलाएँ(कुरुक्षेत्र), संपादक,

- नीता प्रसाद, जुलाई, 2009, वर्ष-55, अंक-9, पृ.सं.-7
- 3 डॉ. जगदीश चन्द्रिकेश, वैदिक कालीन रूपकाएँ कलाएँ (चित्रमूर्ति एवं वास्तु), अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, पृ.सं.-21
- 4 एस.के. पंथी एवं डॉ. आर.सी. गुप्ता, महिला उद्यमियों की ग्रामीण विकास में भूमिका(कुरुक्षेत्र), संपादक ललित खुराना, वर्ष-60, अंक-7, मई, 2014, पृ.सं.-22
- 5 शांति कुमार स्याल, प्रगतिशील नारी, प्रकाशन, आत्मराम एण्ड संस दिल्ली, लखनऊ, संस्करण, 2010, पृ.सं.-79
- 6 www.nagarpalikanoorpur.com
- 7 मीनाक्षी गुप्ता, सांगानेरी टप्पा छपाई में अलंकर, प्रकाशन, नवजीवन पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, 2010, पृ.सं.-71
- 8 <http://www.knowindia.gov.in>
- 9 नूरपुर में सर्वेक्षण के अनुसार
- 10 डॉ. सुमन पाण्डेय, तिवारी, अजंता के भित्ति चित्रों में अंकित वस्त्र एवं वेशभूषा का आलोचनात्मक अध्ययन, कला प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 206, पृ.सं.-117
- 11 डॉ. पृथ्वी कुमार अग्रवाल, प्राचीन भारतीय कला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण, 2002, पृ.सं.-46
- 12 वही, पृ.सं.-42
- 13 श्री रामचरित मानस सचित्र शब्द कोश, अवधि हिन्दी एवं मूल पाठ अनुक्रमाणिका सहित, मुख्य संपादक ओमप्रकाश शर्मा, भारद्वाज वी.आर. पब्लिकेशन कार्पोरेशन दिल्ली, संस्करण, 1995, पृ.सं.-76
- 14 ग्राम में साक्षात्कारानुसार
- 15 डॉ. कैलाश कुमार मिश्र, बनारस की वस्त्र कला, पृ.सं.-18
www.ignca.nic/collenet/kv00010.html
- 16 डॉ. पृथ्वी कुमार अग्रवाल, प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, संस्करण, 2002, पृ.सं.-56
- 17 डॉ. जयशंकर मिश्र, मृत्तिका पात्र उद्योग, समस्या व समाधान, कुरुक्षेत्र, अंक-55, 8 जून, 2009, पृ.सं.-29
- 18 श्री उपेन्द्र महारथी, वेणु शिल्प, राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना विक्रमानन्द, सर्वाधिकार प्रकाशकध पीन, 1982, पृ.सं.
- 19 www.wikipedia.com
- 20 ग्राम में सर्वेक्षणानुसार
- 21 भूमिका, कुरुक्षेत्र, अंक-55, 8 जून, 2009, पृ.सं.-2

प्रो. किरन सरना (शोध निर्देशिका)
आरती आर्या, (शोधार्थी)
दृश्यकला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ (राज०)

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

कुमाऊँ का सांस्कृतिक परिचय

किसी भी समाज का वास्तविक परिचय उसके सांस्कृतिक मान्यताओं और सभ्यताओं द्वारा परिलक्षित होता है, जिसके अन्तर्गत उस क्षेत्र के लोक-विश्वास, धर्म, दर्शन, कला, अध्यात्म, लोक-साहित्य, रूढ़ियाँ, रीति-रिवाज एवं मनोरंजन आदि के साथ ही अभिव्यक्ति कौशल के विविध रूपों के द्वारा प्रकट होता है।

पुरातात्विक खोजों से प्राप्त अवशेषों से पता चलता है कि मध्य हिमालय का यह क्षेत्र मानव संस्कृति के उषाकाल से आबाद रहा है। इसमें पुरा पाषाण युग से नवाशम युग तक के विभिन्न प्रकार के पाषाण उपकरण, चित्रित शैलाश्रय और विविध प्रकार के अभिप्रायों से उत्कीर्ण शिलाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शैलाश्रयों में उत्कीर्ण शैलचित्र मध्य हिमालय के विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुए हैं। इन संस्कृतियों का कालक्रम 1100 से 600 ईसा पूर्व तक माना जाता है।¹

सर्वप्रथम कुमाऊँ का सांस्कृतिक परिचय कुमाऊँ के लोक-साहित्य से मिलता है। कुमाऊँ का लोक साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। गीतों की दृष्टि से कुमाऊँ का लोक-साहित्य विशेष रूप से जन-जन को आकर्षित करता है। कुमाऊँ के लोक-साहित्य के सात प्रकार माने गये हैं— (1) लोकगीत (2) कथागीत (3) लोक-कथाएँ (4) कथाएँ (5) लोकोक्तियाँ (6) पहेलियाँ (7) अन्य रचनाएँ।²

कुमाऊँ के लोक संगीत इन्हीं लोक-साहित्यों पर आधारित है। ये गीत धार्मिक गीत, संस्कार गीत, ऋतु गीत, कृषि-गीत, उत्सव तथा पर्व सम्बन्धित गीत, मेलों के गीत, न्योली तथा जोड़ और बालगीत आदि के रूप में पद्यात्मक गीत भी हैं, जिन्हें चम्पू काव्य कहते हैं। इन गीतों में प्रेम प्रधान काव्य जैसे मालूशाही, वीरगाथा काव्य जैसे-भड़ो एवं लोक-काव्य जैसे रमोला। धार्मिक गीतों की संख्या कुमाऊँ में बहुत अधिक है। इन धार्मिक गीतों को

स्थानीय देवी-देवताओं के लिए गाया जाता है, इन्हें जागर गीत के नाम से जाना जाता है। इन जागर गीतों को जागरी कुछ विशेष वाद्य-यन्त्रों जैसे- ढोल, हुड़का, डौर-थाली बजाकर देवता विशेष के जीवन एवं कार्यों का बखान गीत गाकर करता है। संस्कार गीतों को नारी-हृदय गीत कहे जा सकते हैं। जिन्हें महिलायें अपने कोमल कण्ठ से गाती है। ये गीत जन, छठी, नामकरण, यज्ञोपवीत तथा विवाह आदि के अवसर पर गाये जाते हैं इन गीतों को 'मां. गलगीत' भी कहते हैं। ऋतु गीतों को ऋतु विशेष के आगमन पर गाये जाते हैं। कुमाऊँ के ऋतु गीतों में काफलिया, रूड़ी, हिनौल और होली विशेष रूप से प्रसिद्ध है। फागुन के महिने में सर्वत्र होलियाँ गायी जाती हैं। अल्मोड़ा, नैनीताल की खड़ी एवं बैठकी होली पूरे कुमाऊँ में प्रसिद्ध है इसके अतिरिक्त चम्पावत की होली भी प्रसिद्ध है। कृषि सम्बन्धित गीत कुमाऊँ में जब खेतों में रोपाई एवं गोड़ाई होती है तो ऐसे अवसरों पर गायी जाती है। उत्सव तथा पर्व सम्बन्धित गीत कुमाऊँ में मनाये जाने वाले पर्वों जैसे- फूलदेई, हरेला (चित्र सं०-1), खतड़वा, घुघतिया (चित्र सं०-2), आदि अवसरों पर गाये जाते हैं।

कुमाऊँ में कुछ नृत्य-गीत भी हैं जिन्हें मेलों के अवसरों पर नृत्य करते हुए गाये जाते हैं इन नृत्य-गीतों में- झोड़ा, चॉचरी, छपेली, छोलीया (चित्र सं०-3) एवं हुड़का (चित्र सं०-4) नृत्य आदि हैं।

इन नृत्यों में कुछ विशेष वाद्य-यन्त्रों जैसे- ढोल, हुड़का, डमरू, ढोलक, ढपली, थाल, मंजीरा, खड़ताल, चिमटा, बाँसुरी, मसकबीन, शंख, नाद, एकतारा आदि का प्रयोग किया जाता है। कुमाऊँ की कला विशेष रूप से लोक-कला पर आधारित है। इसके अतिरिक्त यहाँ की कला दो प्रकार की मानी जाती हैं- उपयोगी कला एवं ललित कला, जो जीवन के विभिन्न आयामों में दर्शित है। यहाँ के लोगों के जीवन में कला के प्रति समर्पण का भाव दिखायी देता है। कुमाऊँ में कत्यूरी शासन काल अपनी कला के लिये विख्यात है। इस काल में यहाँ नाना प्रकार के शिल्प विकसित हुए। ये शिल्प मूर्तिकला, धातुकला, काष्ठकला, चित्रकला, वास्तुकला एवं हस्तकला के अन्य प्रकारों के रूप में विकसित हुए। 3 मूर्ति कला कुमाऊँ में अलग-अलग स्थानों पर अपनी अलग-अलग भव्यता लिये हुए हैं। धातु की प्रसिद्ध मूर्तियाँ जागेश्वर एवं कटारमल मन्दिरों में मिलती हैं तथा पत्थरों से निर्मित मूर्तियों के लिये बागेश्वर का बाग. नाथ, पिथौरागढ़ का सूर्य मंदिर एवं चम्पावत का बालेश्वर मंदिर केवल कुमाऊँ

में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विष्व में प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त यहाँ की धातु कला में पात्र, मूर्तियाँ, आभूषण और दैनिक वस्तुओं के रूप में अपनी कलात्मक पहचान को बना रखा है।

कुमाऊँ के जन-जीवन में काष्ठकला का भी महत्वपूर्ण स्थान है। काष्ठकला के उत्कृष्ट नमूने यहाँ की लकड़ी के बने पुराने घरों एवं मन्दिरों के प्रवेशद्वारों में देखने को मिलते हैं। लकड़ियों पर उकेरी गयी कलात्मकता के ये कार्य कुमाऊँ के मकानों के प्रवेशद्वार, झरोखों में नक्काशी एवं चित्र के रूप में देखे जा सकते हैं। प्रवेशद्वार के ऊपर लकड़ी पर ही गणेश, हनुमान, दुर्गा, भैरव आदि की आकृतियाँ यहाँ की धार्मिक भावना का परिचय देती हैं। इसके अतिरिक्त काष्ठ कला के कई नमूने यहाँ के काष्ठ-निर्मित कई बर्तनों एवं वाद्य-यन्त्रों में देखे जा सकते हैं, जिनमें— ठेकी, डोंकली, पसेरी, माणा, नाली, फरुवा, चम्मच, मथानी, हड़पिया, हुड़का, ढोल, ढोलक आदि हैं। कुमाऊँ में काष्ठ कला चरम उत्कर्ष अल्मोड़ा एवं चम्पावत जनपद के क्षेत्रों में हुआ है। (चित्र सं०-5)

कुमाऊँ की चित्रकला पूर्ण रूप से लोक जीवन की चित्रकला है जो जीवन के विभिन्न पर्वों पर चित्रित किए जाते हैं। जिस प्रकार लोक कला के रूप में दक्षिण भारत में कोमल व रंगोली, बंगाल में अल्पना, सौराष्ट्र में साथियाँ, उत्तर प्रदेश में चौक पूरना एवं राजस्थान में मडना का स्थान है, वैसे ही कुमाऊँ में इसे ऐपण कहाँ जाता है। कुमाऊँ में शिवरात्री, महालक्ष्मी पूजा, दुर्गापूजा, दीपावली अष्टमी, संक्रान्ति, जनेऊ एवं विवाह संस्कारों के अवसर पर विभिन्न प्रकार के ऐपण अलंकरण की परम्परा है। धार्मिक अनुष्ठान, त्यौहारों और पूजा के अवसरों पर ऐपण निर्माण की विशेष परम्परा है। इन ऐपण अलंकरण की निमात्री यहाँ की गृहस्थ महिला है।

कुमाऊँ के हस्त कला की एक सुदीर्घ परम्परा मिलती है। कला के विकास के साथ ही कुटीर उद्योगों के रूप में हस्तकला ने यहाँ की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। कुमाऊँ के सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ के ग्रामीण जनों द्वारा दन अथवा कालीन, कम्बल, पंखी, चुटका, थुलमा, पट्ट, गुदमा, शॉल, पश्मीना आदि ऊनी वस्त्र निर्मित किये जाते हैं। यहाँ के वस्त्र परम्परागत हस्तकला के उत्कृष्ट उदाहरण है।

सम्पूर्ण कुमाऊँ अंचल मेलों एवं पर्वों का विशिष्ट अंचल माना जाता है। यहाँ मेलों को 'कौतिक' कहाँ जाता है। इस अंचल में 50 से भी अधिक

मेले लगते हैं। जिनमें कुमाऊँ के गीत, नृत्य, जन जीवन और कला-कौशल के स्पष्ट दर्शन हो जाते हैं।¹⁴ कुमाऊँ के इन प्रसिद्ध मेलों में दारमा-जोहार क्षेत्र के छरमल्ल-पुजाई का मेला एवं मुनस्यारी में कुटिया देवी का मेला तथा जौलजीवी का मेला सांस्कृतिक ही नहीं व्यावसायिक मेला रहा है। चम्पावत जनपद के देवीधुरा का 'बगवाल' मेला अपने पत्थर-मार परम्परा के लिए विश्व प्रसिद्ध है। इस जनपद के गुमदेष में चैतोगा, मानेश्वर एवं पूर्णागिरी का मेला भी प्रसिद्ध है। बागेश्वर का उत्तरायणी मेला भी एक प्रसिद्ध मेला है। कुमाऊँ मण्डल में सबसे अधिक महत्वपूर्ण मेला नन्दा देवी का मेला होता है। अल्मोड़ा के नन्दा देवी पर्व एवं मेला तथा नैनीताल की नैना देवी का नन्दाष्टमी मेला बहुत प्रसिद्ध मेला है। (चित्र सं०-6) इसके अतिरिक्त भाबर में काशीपुर का चैती मेला एवं रुद्रपुर का अटारिया मेला भी प्रसिद्ध है।

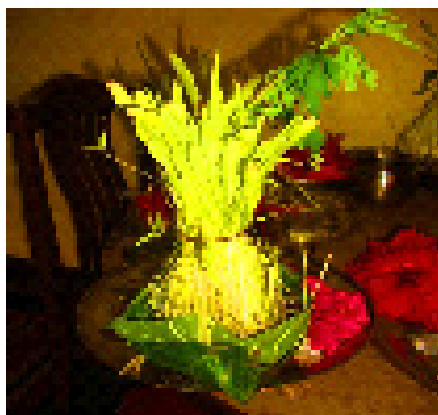
कुमाऊँ का पहला त्योहार सम्वत्सर प्रतिपदा है जोकि चैत्र मास में मनाया जाता है और अन्तिम त्योहार होली है। बैशाख के महीने में संक्रान्ति का पर्व मनाया जाता है। इस पर्व को घुघुतिया पर्व भी कहते हैं। सावन के महीने में हरियाली का पर्व हरेला मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त एक ऐतिहासिक पर्व खतड़वा भी मनाया जाता है। कुछ पर्वों में केवल स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं जैसे-दुर्गाष्टमी, अनन्तचतुर्दशी, वटसावित्री एवं करवाचौथ आदि। इन समस्त लोक पर्वों के अतिरिक्त कुछ राष्ट्रीय पर्वों को भी कुमाऊँ में बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। इन त्योहारों में गंगादशहरा, विजयादशमी, दीपावली, बसन्तपंचमी, शिवरात्री, रक्षाबन्धन, भैया दूज एवं होली आदि आते हैं।

कुमाऊँ अंचल और उसकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्थितियाँ बहुत समृद्ध एवं वैभवशाली हैं। कला और संस्कृति के समस्त रूपों का चर्मोन्नत रूप यहाँ उपलब्ध है। अतः सांस्कृतिक दृष्टि से यहाँ का जनमानस और उसकी संस्कृति एक अद्वितीय स्थान रखती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पन्त, कल्पना, 2004, कुमाऊँ के ग्राम नाम, पहाड़ प्रकाशन, परिक्रमा, तल्ला डांडा, नैनीताल, पृष्ठ-05
2. डिमरी, डॉ० देवकी नन्दन, 2010, उत्तराखण्ड उदय, अमर अजाला पब्लिकेशन लिमिटेड, नोएडा, पृष्ठ -16-17
3. नौटियाल, डॉ० शिवानन्द, 1988, कुमाऊँ दर्शन, सुलभ प्रकाशन, अशोक मार्ग लखनऊ, पृष्ठ-30-31

पि = Qyd



शुभ्रकी चउपि = 1 0201/3



उरुण; क पि = 1 0202/3



नरुण क उरुण पि = 1 0203/3



शुभ्र पि = 1 0204/3



द पि द यरुण पि = 1 0205/3



उरुण क उरुण पि = 1 0206/3

प्रो. किरन सरना (शोध निर्देशिका)
कु० संध्या (शोधार्थी)
दृश्यकला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ (राज०)

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

बालक के सर्वांगीण विकास में कला शिक्षा की भूमिका

कला शिक्षा हमारे जीवन एवं सामाजिक मूल्यों के सम्पूर्ण विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मनुष्य ने आनन्द की प्राप्ति और ज्ञान के लिए जितने उपायों का विकास किया है, उनमें कला का विशेष स्थान है। साहित्य, दर्शन, विज्ञान और प्रकृति के नाना विषयों की चर्चा भाषा को माध्यम बनाकर ही की जाती है। साहित्य मनुष्य को आनन्द देता है, पर उसकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र सीमित होता है। उस अभाव की पूर्ति करती हैं ललित कलाएँ— नृत्य, संगीत एवं दूसरी कलाएँ। बालक अपनी इन्द्रियों द्वारा, मन द्वारा बाह्यजगत की समस्त वस्तुओं का स्थूल ज्ञान और उनके प्रति रसानुभूति का अनुभव करता है और उसे ही अपनी कला के माध्यम से दूसरों के सामने परिवेशित करता है।¹

अनेक प्राचीन संस्कृतियों के अध्ययन से पता चलता है कि व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने के लिए शिक्षा की जो योजना बनती थी, उसमें कलाओं का महत्वपूर्ण स्थान था, और व्यक्ति को एक न एक कला में अच्छी दक्षता प्राप्त करना आवश्यक होता था। यदि हम पौराणिक परिप्रेक्ष्य पर नज़र डालें तो ज्ञात होता है कि भारत की पुराण गाथाओं, ग्रन्थों और भारतीय शास्त्रों से पता चलता है कि जीवन में कलाएँ प्रमुख स्थान रखती थीं। प्राचीन और मध्यकाल में एक नागरिक और सुसंस्कृत व्यक्ति वही समझा जाता था जो "चतुःषष्टिकला" प्रवीण हो। नागरिकों को कलाओं का अभ्यास कराया जाता था केवल शारिरिक अनुरंजन ही कला का विषय नहीं था, मानसिक और बौद्धिक विकास का ध्यान पूरी तरह रखा जाता था।²

कला का मुख्य उद्देश्य सृजन करना है। कला द्वारा सौन्दर्य अनुभव की दृष्टि प्राप्त कर लेना ही सुसंस्कृत होना है। बालक की संवेदनशीलता को विकसित करना ही कला का धर्म है। कला का उदय सीधे हमारे जीवन से होता है, और वह अधिक तीव्र होकर हमें स्पंदित करती है। कला ही है

जो हमारी भावनाओं को रसास्वादन की स्थिति तक पहुँचाती है। कला गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने शब्दों में सर्वांगीण व्यक्तित्व को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

"Literature, Music and Art, all are necessary for the Development and flowering of a student to form an integrated total personality."

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि भारतीय शिक्षा प्रणाली ने सदैव कला शिक्षा के महत्व को प्रकाशित किया है तथा नियमित और अनियमित दोनों रूपों में पूर्व प्राथमिक स्तर से उच्च माध्यमिक स्तर तक कला शिक्षा को हमारी सांस्कृतिक विरासत की पहचान को बनाये रखने की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।³

महान विचारक स्वामी विवेकानन्द ने कला को जीवन का अनिवार्य अंग व कला शिक्षा को शिक्षा प्रक्रिया में आवश्यक माना है। विवेकानन्द के शब्दों में "एशियावासियों की आत्मा ही कला में बसती है। वे किसी भी कला रहित वस्तु का उपयोग नहीं करते। क्या वे नहीं जानते कि कला हमारे लिए धर्म का ही एक अंग है।" इस प्रकार विवेकानन्द ने कला के आदर्श को स्थापित करने की सलाह दी है।⁴ उनकी दृष्टि में कला शिक्षा एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है।

प्रारम्भिक मानव अस्तित्व से आज तक कला सदैव सचेतन मस्तिष्क के लिए प्रेरक और विचारशील रही है। इस प्रकार कला शिक्षा का बालक के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। कला शिक्षा के द्वारा बालक स्वयं की अनुभवशक्ति और भावनाओं का विकास करता है। अतः कला शिक्षा बालक के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण विषय है। बालक की क्षमताओं व तार्किकताओं को बाहर निकालने में कला शिक्षा अत्यंत लाभदायक है। प्रत्येक बालक में कलात्मक क्षमता मौजूद होती है तथा अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को प्रस्तुत करने का प्रत्येक का अपना तरीका होता है और इस प्रस्तुतीकरण में कला शिक्षा अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिसके द्वारा बालक अपनी मनोभावनाओं को चित्र भाषा द्वारा प्रस्तुत कर पाता है।

कला शिक्षा का उद्देश्य बालक को चित्रकार बनाना नहीं वरन् उसके आंतरिक सहज सृजनात्मक गुणों का विकास करना है। उसके मन में विषय के आकारों को स्पष्ट रूप से देखने तथा उसकी कल्पनाशक्ति का विकास करते हुए उसकी भावुकता बढ़ाना है। शिल्प कलाओं के संदर्भ में आँखों और

हाथों का अभ्यास करवाना है। बच्चों के मनोवेग और दमित मनोभावों को व्यक्त करने का अवसर देना है। मनोविशेषज्ञों का मानना है कि बालकों में अनेक रोगों का कारण उनकी दमित आकांक्षाओं और मनोवेगों की पूर्ति नहीं होना है तभी तो बालकों की सृजनशीलता समाप्त हो जाती है व उनमें विध्वंसनात्मक गुण पैदा हो जाते हैं।⁵ इसलिए कला शिक्षा बालक में उनकी विध्वंसनात्मक प्रवृत्ति को सृजनात्मक तरीके से रचनाकार्यों की ओर उन्मुख करने में एक महत्वपूर्ण विषय का कार्य करती है।

कला सदैव रचनात्मक की भूख से ही रची गई है।⁶ इसलिए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि कला रचना क्रिया का माध्यम है। समय-समय पर अनेकों शिक्षाविदों ने विद्यालयी पाठ्यचर्या में कला शिक्षा के महत्व को प्रकाशित किया है।⁷ इस प्रकार हम देख पाते हैं कि कला शिक्षा बालक के भीतर अपने आस-पास के संसार के साथ तालमेल बनाने का कौशल प्रदान करती है और बालक को आत्म-प्रदर्शन व संप्रेषण का कौशल भी प्रदान करती है। अतः कला शिक्षा उन सभी कौशलों को विकसित करती है जो कि बालक के सर्वांगीण विकास में लाभदायक होते हैं।⁸

यूनान के महान दार्शनिक प्लेटो से सभी परिचित हैं, उनका लिखा 'रिपब्लिक' उनके आदर्श समाज का चित्र है। प्लेटो का दर्शन ही था कि शिक्षा में वह शक्ति होनी चाहिए, जिससे व्यक्ति में छंद और सामंजस्य का निर्माण हो।⁹ इस प्रकार प्लेटो ने भी शिक्षण प्रक्रिया में कला शिक्षा के महत्व पर बल दिया।¹⁰ कला, शिक्षा के विचार का एक सार तत्व है।¹¹ कला में भागीदारी बहुत ही महत्वपूर्ण है। शोधों से पता चलता है कि प्रारम्भिक स्तर से ही कला शिक्षा बालकों के लिए रचनात्मक अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। कला शिक्षा निरीक्षण शक्ति, कल्पनाशक्ति, संज्ञानात्मक विकास, सृजन कौशल, कथन व्यवहार कौशल, समस्या-समाधान, आत्माभिव्यक्ति, भावनात्मक कौशल, मानव कौशल आदि अनेक कौशलों के विकास में उत्तरदायी है।¹²



Artist and Inventor Leonardo Da Vinci advised us: "Study the Science of art. Study Art of science. Realize that everything connects to everything else."¹³

कला शिक्षा का उद्देश्य यह भी है कि व्यक्ति को प्रकृति के साथ बंधुत्व का अनुभव हो। आज विशेष तौर पर इस शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है। इस स्वार्थमय युग में शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि चाहे उससे बालक कुछ सीखे या न सीखे, उसे अपने साथियों, सहजीवियों के साथ गहरी संवेदना की अनुभूति तो अवश्य ही हो। हृदय में संवेदना का निर्माण करने में कला शिक्षा अत्यावश्यक विषय है जो कि मनुष्य की सूक्ष्मतम संवेदना जाग्रत करने में मददगार सिद्ध होती है।¹⁴ इस प्रकार कला बालक के भीतर मानव कौशल विकसित करती है।

कला शिक्षा बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती है। यह बालक में आत्म सम्मान का निर्माण करती है और उसे अनुशासित बनाती है। इस प्रकार कला में सहभागिता के कारण बालक ज्यादा सृजनशील व नवपरिवर्तनशील बनता है। साथ ही वह प्रेरित होता है व दूसरों के साथ मिलजुलकर कार्य करने की क्षमता भी विकसित कर पाता है।¹⁵ प्रायः यह भी देख गया है कि जो बालक स्वयं को कला शिक्षा से जोड़कर रखते हैं, वे दूसरे सभी विषयों को भी अच्छे से समझने की शक्ति को विकसित कर पाते हैं।¹⁶

जब एक बालक चित्र बनाता है तब वह दृश्य रूप में कुछ कहना प्रारंभ करता है, इस प्रकार वह अपने कथन व्यवहार के कौशल को विकसित करना प्रारंभ करता है। वह अपने वास्तविक अनुभवों को अपनी चित्र भाषा द्वारा प्रमाणित करता है। कला बोलने की भाषा से परे है, जो कि बालक की भावनाओं को कलात्मक, रचनात्मक तरीके से संप्रेषित करती है। कला द्वारा बालक यह

भी सीखता है कि कैसे वह अपनी भावनाओं व विचारों को अलग-अलग तरीके से अभिव्यक्त करे। जैसा कि हम देवी प्रसाद की पुस्तक 'शिक्षा का वाहन: कला' से उद्धृत 'रथ' नामक चित्र में स्पष्ट देख सकते हैं। लेखक के अनुसार इस बालक को कक्षा में बहुत कम बोलते हुए देखा गया, किन्तु वह चित्र कला के लिए एक आर्ट फाईल हमेशा साथ रखता था और उसका अधिकतर आत्मप्रकटन चित्रकला (चित्रभाषा) द्वारा ही होता था। (चित्रफलक-1)



चित्रफलक-1 'रथ'

लड़का, उम्र 11

कला एक विशेष तर्कशक्ति भी विकसित करती है जो कि गणित और अन्य बौद्धिक परीक्षाओं में एक महत्वपूर्ण भूमिका रखती है, प्रायः देखा गया है कि जो विद्यार्थी कला में महारथ रखते हैं, वे गणित व आई क्यू परीक्षा में भी उन्नति प्राप्त करते हैं। इसी तरह जब बालक कला विचारों को खोजता है तब वह विषय की संभावनाओं और कार्य करने में आने वाली समस्याओं का परीक्षण एक वैज्ञानिक की भाँति करता है व उसका समाधान खोजता है। इस प्रकार वह कला के माध्यम से स्वयं में समस्या-समाधान के कौशल को भी विकसित कर पाता है।¹⁷

बालकों में सृजन कौशल का विकास तब देखा जाता है जब उनकी कलाकृति (चित्र) रचनाक्रम में होती है या जब वह पूर्ण हो जाती है, इस प्रकार रचनाक्रम के पूर्ण होने पर हम जिस सृजन को देखते हैं वह स्वयं में ही कला का एक विशिष्ट उदाहरण होता है।¹⁸ इस प्रकार प्रत्येक बालक में स्वयं के अनुभवों को स्वयं अपने तरीके से अपने कार्यों द्वारा दर्शाने के अवसर प्राप्त

होते हैं।¹⁹ प्रस्तुत चित्र 'वर्षा का एक दिन' नामक चित्रों में स्पष्ट देख सकते हैं। कि वर्षा के दिन का चित्र दो अलग-अलग बालकों द्वारा अलग-अलग समय व स्थान पर चित्रित है जो कि दोनों बाल चित्रकारों की अपनी स्वयं की अभिव्यक्ति है। वे अपने अनुभवों को अपने तरीके से दर्शाते हैं। पहला चित्र देवी प्रसाद की पुस्तक 'शिक्षा का वाहन: कला' से उद्धृत है व दूसरा चित्र रा०स०बा०वि० स्कूल ब्लॉक शकरपुर, दिल्ली के कक्षा 6 के छात्र 'करन' द्वारा चित्रित है। (चित्रफलक-2 व 3)



चित्रफलक-2 'वर्षा का एक दिन' लड़का, उम्र 12.6

चित्रफलक-3 'वर्षा का एक दिन' करन, कक्षा 6

हर वह व्यक्ति डॉ० सिजेक (बाल कला के पितामह) के कार्यों से परिचित हैं, वे बिना किसी संकोच के इस बात से सहमत होंगे कि कला शिक्षा उच्च माध्यमिक स्तर तक विद्यालयी शिक्षा के लिए एक अत्यधिक महान आवश्यकता का विषय है।

गत्यात्मक कौशल बालक को किसी खाली कागज (शीट) को चित्रध्वजों से लिखकर भरने की सामर्थ्य प्रदान करता है। तूलिका को इस प्रकार पकड़ने की क्षमता विकसित करना कि वह मनचाहा चिन्ह बनाये, कैंची से कागज के कुछ निश्चित आकारों में काटना, क्रेयान से ड्राईंग करना आदि सभी क्रियाएँ बालक में अच्छे गत्यात्मक कौशल को विकसित करने में सहायक सिद्ध होती है। कला द्वारा बालक ऐसे बहुत से अवसर प्राप्त करता है, जिससे वह स्वयं को अभिव्यक्त कर पाता है। कला से सम्बद्ध रखकर उन छात्रों को भी सिखाया जा सकता है, जो कि सीखने की इच्छा नहीं रखते हैं।²⁰ बालक बुनियादी स्तर पर कला द्वारा स्वयं को दर्शाते हैं।²¹

बालक कला मूल्यांकन की कक्षा के दौरान व्याख्या करने का गुण सीखता है और बहुत सी कलाकृतियों का विश्लेषण भी करता है। यह प्रक्रिया उनमें व्याख्या करने की कला को पोषित करती है और वे इसे अपने जीवन के दूसरे आयामों में भी प्रयोग कर पाते हैं।²² कला शिक्षा शिक्षण का तात्पर्य केवल हाथ की दक्षता हासिल करना नहीं होता, कुछ चित्र और दस्तकारी की खूबसूरत चीजों का निर्माण मात्र उसका ध्येय नहीं होता। कला शिक्षा का उद्देश्य बालक के चरित्रनिर्माण, सामाजिक बोध और सौंदर्यबोध का विकास करना है।²³

कला के द्वारा बालक बाँटना और मिलजुल कर रहना व एक दूसरे के प्रयासों की प्रशंसा करना भी सीखते हैं। कला बालक में सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य का पोषण भी करती हैं, बालकों को उनकी व्यक्तिगत विलक्षणता, सफलता, सिद्धि व सकारात्मक स्वयं विचार के सभी भागों को दर्शाती है।²⁴ कला गतिविधियाँ बालक में उनके अनुभव कौशल, निरीक्षण कौशल के गुण को विकसित करती है।²⁵ जो कि उनके जीवन के सभी आयामों में मददगार सिद्ध होती है। प्रस्तुत चित्र (देवी प्रसाद द्वारा लिखित पुस्तक 'शिक्षा का वाहन: कला' से साभार) जिसका शीर्षक 'जब मैं कुँ में गिरा' में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि यहाँ बालक ने अपने स्वयं के अनुभवों को चित्रित किया है कि जब वह कुँ में गिरा तब उसे कैसा अनुभव हुआ डर से उसका रंग भी नीला पड़ गया था। बहुत ही अद्भूत चित्रांकन है। चित्र में बालक ने अपने अनुभव को कल्पना के माध्यम से प्रस्तुत किया है। (चित्रफलक-4)



चित्रफलक-4 'जब मैं कुँ में गिरा' लड़का, उम्र 13७6

इस प्रकार कला शिक्षा बालक के मस्तिष्क के विकास में एक सकारात्मक भूमिका निभाती है।²⁶ कलात्मक अभिव्यक्ति अपने अलग-अलग रूपों में एक ऐसा अनुभव है, जिसमें स्वतंत्र विचारशीलता, प्रयोगवादिता और विश्लेषण शामिल है।

20वीं शताब्दी के जर्मन दार्शनिक अर्नस्ट कैसिरर ने कलाओं के महत्व को इस प्रकार वर्णित किया है "विज्ञान, हमें विचारों का आदेश देता है, नैतिकता, कर्तव्यों का आदेश देती है, कला, दर्शनीय, स्पर्शनीय, श्रवणशक्ति व आकारों पर पकड़ प्रदान करती है।" एक अच्छी शिक्षा कला शिक्षा को शामिल करती है और बालकों का महान साहित्य (उपन्यास) काव्य, लघु कथा, नाटक, दृश्य कलाओं, संगीत, फिल्म आदि से परिचय कराती है।²⁷

कला जीवन को कल्पना प्रदान करती है और कल्पनाओं को जीवन। इसके निष्कर्ष से यह कहा जा सकता है कि कला गतिविधियों में सहभागिता बालक के सामाजिक, भावनात्मक, बौद्धिक और व्यक्तिगत विकास के लिए जरूरी है।²⁸

As the Philosopher Sussane Langer suggested: "Art is the objectification of feelings, and in developing our intuition, teaching eye and ear to perceive expressive form, it makes form expressive for us whenever we confront it, in actuality as well as in art".²⁹

इस प्रकार हम देख पाते हैं कि बालकों की कला क्रियाकलापों में निरन्तर सहभागिता उनके सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास में सहायक सिद्ध होती है एवं यदि हमारी शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास है, तो हमारे पाठ्यक्रम में कला शिक्षा का स्थान अन्यान्य पढ़ाई- लिखाई के विषयों के समान होना चाहिए।³⁰

पाद-टिप्पणी

- 1 बसु, नंदलाल, शिक्षा में कला का स्थान, रमेश थानवी (संपा०), अनौपचारिका (शिक्षा एवं कला विशेषांक), दिसम्बर, 2008, पृष्ठ संख्या-13
- 2 प्रसाद, देवी, शिक्षा का वाहन: कला, नेशनल बुक ट्रस्ट: नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ संख्या-12

- 3 अंतर्राष्ट्रीय कला शिक्षा सप्ताह, एन०सी०ई०आर०टी०, के०एन०एम०ए० एवं ललित कला अकादमी: नई दिल्ली द्वारा आयोजित, 2013
- 4 शर्मा, रामनाथ, भारतीय शिक्षा-दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर: आगरा,1971, पृष्ठ संख्या-52
- 5 रिपोर्ट, कला शिक्षा सेमीनार, ललित कला अकादमी: नई दिल्ली, 1956, पृष्ठ संख्या-6
- 6 शर्मा, डा० भवानीशंकर, ग्लोबलाईजेशन एंड आर्ट, नवजीवन प्रकाशन: निवाँई, 2007, पृष्ठ संख्या-86
- 7 <http://www.spiked-online.com>
- 8 <http://www.barenandnoble.com>
- 9 प्रसाद, देवी, वही, पृष्ठ संख्या-13
- 10 <http://www.katyisd.com>
- 11 रिपोर्ट, वही, पृष्ठ संख्या-8
- 12 <http://everydaylife.globalspot.com>
- 13 <http://www.americanorchestras.org>
- 14 प्रसाद, देवी, वही, पृष्ठ संख्या-8
- 15 रिपोर्ट, वही, पृष्ठ संख्या-51
- 16 <http://www.timesfreepress.com>
- 17 <http://everydaylife.globalspot.com>
- 18 <http://barenandnoble.com>
- 19 शर्मा,डाँ0 भवानी शंकर, वही, पृष्ठ संख्या-85
- 20 <http://buzzle.com>
- 21 <http://www.ehow.com>

ishidju l juk (शोध निर्देशिका)
dq nllr t si (शोधार्थी)
दृश्यकला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ (राज०)

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

jkt LFlkuh efgyk dykdj %1500bZ&2000bZ

भारतीय परिदृश्य में राजस्थान का वैभव बेजोड़ है। त्यागमयी ललनाओं, साहसी वीरों और गरिमामयी संस्कृति का यह प्रदेश अनेक ऐतिहासिक मोड़ों से गुजरने के उपरान्त भी अपनी समन्वयात्मक जीवन-पद्धति के लिए प्रसिद्ध रहा है। राजस्थान का नाम स्वयं एक सांस्कृतिक एकता का सूचक है जो युगों से भारतीय परम्परा से जुड़ा रहा है।¹

राजस्थान में चित्रकला की सुदीर्घ परम्परा रही है। राजस्थानी सभ्यता और संस्कृति को गौरवान्वित करने का श्रेय यहाँ की चित्रकला को भी रहा है। राजस्थान में चित्रकला के प्रति अभिरुचि और उसका मौलिक स्वरूप परम्परागत रूप से प्रचलित था।² राजस्थानी कलम भारतीय चित्रकला में अपना अलग स्थान रखती है।³ राजस्थान के शासकों ने शौर्य, वीरता के साथ-साथ कला जगत् में भी अपनी अभिरुचि प्रदर्शित की। शायद ही ऐसा कोई दरबार हो जहाँ से कलाकृतियों की रचना का उद्गम न हुआ हो। राजस्थान रंगों का स्थान है। यहाँ के वातावरण से कलाकारों को चित्रण हेतु नए-नए वर्ण मिलते हैं जो अभिव्यक्ति में सहायक बनते हैं। वाचस्पति गैरोला के शब्दों में-

“वास्तविकता तो यह है कि अपने प्राकृतिक निर्माण और मोहक वातावरण के कारण कला एवं काव्य की उद्भावना के लिए राजस्थान की धरती बड़ी ही उपयुक्त रही है। आज हम जिसको राजस्थान या राजपूत शैली के नाम से पुकारते हैं उसका निर्माण, दूसरी अधिकांश चित्र शैलियों की भाँति, न तो एक स्थान में हुआ और न ही उसके निर्माता कलाकार उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। राजस्थान के जितने भी प्राचीन नगर और धार्मिक सांस्कृतिक स्थल हैं। उन सभी में एक साथ असंख्य आश्रित कलाकारों एवं स्वतन्त्र कलाकारों के द्वारा वर्षों तक निरन्तर कलाकृतियों का सृजन होता रहा।”⁴ राजस्थानी शैली की खोज डॉ. आनन्द कुमारस्वामी ने की थी जिसके पूर्व इसे मुगल कला का

ही एक भेद माना जाता था।⁵ राजस्थानी चित्रकला का सबसे पहला वैज्ञानिक विभाजन 'आनन्द कुमारस्वामी' ने 'राजपूत पेंटिंग' नामक पुस्तक में सन् 1916 ई. में किया।⁶

राजस्थान की धरती जहाँ वीर प्रसविनी रही है वहाँ इसका कलात्मक वैभव भी अद्वितीय रहा है।⁷ कला के क्षेत्र में राजस्थान के लघुचित्र (मिनिएचर-पेन्टिंग्स) विश्वकला की अनमोल धरोहर है।⁸ अपनी पुस्तक 'भारतीय चित्रकला' के अन्तर्गत प्रसिद्ध कला समालोचक वाचस्पति गैरोला ने लिखा है—⁹ 'भारतीय चित्रकला के इतिहास में राजस्थान के कलाकारों की देन अनुपम तथा अद्वितीय है। मोहक वातावरण और प्राकृतिक रूप निर्माण के कारण एवं काव्य के उद्भव के लिए राजस्थान की धरती स्वाभाविक रूप से उपयुक्त रही है।'¹⁰ राजस्थान पारम्परिक लघुचित्र शैलियों का प्रमुख केन्द्र रहा, एवं अपनी विविध शैलियों— उपशैलियों एवं उसमें प्रयुक्त कलात्मक गुणों से विश्वकला में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।¹¹ पन्द्रहवीं शती के लगभग राजस्थान लघुचित्र शैली का प्रथम उत्थान माना जाता है।¹² 15वीं से 19वीं शताब्दी के मध्य विभिन्न राजाओं महाराजाओं के संरक्षण में विभिन्न रियासतों में पारम्परिक कला का विकास हुआ। इसमें पुरुष कलाकारों की प्रधानता रही¹³ एवं अमरू, सूरजराम, निहालचन्द्र,¹⁴ अमरदास, देवदास, नारायणदास,¹⁵ मेघराज, अमरचन्द्र,¹⁶ निसारदीन, साहब्दीन, मनोहर,¹⁷ अलीरजा, महमूद,¹⁸ हीरालाल, विटुल, तुलसीराम,¹⁹ रूक्नूदीन, मुराद,²⁰ अहमद उमारानी, कासिम उमारानी²¹ लालचिंतारा, साहिबराम, चोखा, रामजी लाल आदि सैकड़ों कलाकारों ने राजस्थान की लघु चित्रण परम्परा को भारतीय कला इतिहास में चिर-स्थायित्व प्रदान किया।²²

यहाँ के चित्रकारों में न केवल पुरुष चित्रकार रहे अपितु महिलायें भी राजस्थान की इस अमूल्य धरोहर के निर्माण में भागीदार रहीं परन्तु सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण वे अपनी कला पर अपनी पहचान उतनी स्पष्टता से प्रदर्शित नहीं कर सकी जितना की पुरुष चित्रकार।²³ महिला कलाकारों में कमला एवं इलायची का नाम उल्लेखनीय है।²⁴ इसके अतिरिक्त अजमेर की उरना और साहिबा स्त्री चित्रकार विशेष उल्लेखनीय हैं।²⁵

अंग्रेजों के आगमन के बाद राजस्थान के कलाकार एवं कला जगत यूरोपियन कला परम्पराओं से प्रभावित हुए।²⁶ 1851 ई. में विलियम कारपेण्टर तथा 1855 ई. में एफ. सी. लेविस ने राजस्थान को प्रभावित किया।²⁷ इस

कारण यहाँ भी यथार्थवादी व्यक्ति चित्र एवं प्रकृतिचित्र आदि बनने लगे। भारत के स्वाधीनता आन्दोलन ने भारत की कला को भी बहुत प्रभावित किया व बंगाल शैली के माध्यम से पुनः भारतीय कला आदर्शों को प्राप्त करने की चेष्टा की गई। देश की स्वतंत्रता के साथ-साथ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सूत्रपात भी हुआ, जिसका प्रभाव राजस्थान के कला जगत पर धीरे-धीरे लगभग साठ के दशक में दिखाई देने लगा। चाक्षुश कला के क्षेत्र में की गई प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने और उन्हें एक सूत्र में बाँधने तथा देशीय सांस्कृतिक ऐक्य को संगठित करने के उद्देश्य से सन् 1957 में राजस्थान ललित कला अकादमी की स्थापना की गई। जिसके विविध कार्यक्रमों ने राज्य के कलाकारों को संरक्षण व प्रोत्साहन दिया एवं कलाकारों ने राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्धियाँ अर्जित की। साठ के दशक तक भी पुरुष कलाकारों का वर्चस्व बना रहा किन्तु सत्तर के दशक में धीरे-धीरे महिला कलाकारों के नाम भी सामने आने लगे। जिसमें अधिकांशतः शिक्षा क्षेत्र से जुड़ी थी।²⁸ राजस्थान में कलाशिक्षा के क्षेत्र में महाराजा सवाई रामसिंह ने 'हुनरी मदरसा' स्थापित किया जो कालान्तर में 'महाराजा स्कूल ऑफ आर्ट्स' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।²⁹ धीरे-धीरे विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में कला शिक्षा प्रारम्भ हुई व दयानन्द कॉलेज अजमेर, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली, जयपुर व उदयपुर, बूँदी, कोटा, नाथद्वारा आदि अन्य स्थानों पर कला शिक्षा आरम्भ हुई और इन स्थानों से अनेक महिला कलाकार कला जगत के पटल पर सामने आई।³⁰

राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में समसामयिक कलाकारों पर लेखन की परम्परा भी लगभग 70 के दशक में ही आरम्भ हुई। इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण जयपुर अड़ई शती समारोह के अवसर पर 1978 में राजस्थान ललित कला अकादमी जयपुर द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'जयपुर कला और कलाकार' है जिसमें लेखक ने जयपुर की स्थापना से लेकर सन् 1978 तक के लगभग सभी कलाकारों का अध्ययन तथा वर्गीकरण प्रस्तुत किया।

समसामयिक कलाकारों की गणना करते हुए 273 कलाकारों की संख्या में केवल 28 महिलाएं थीं। इस गणना में उन कलाकारों को शामिल किया गया था जिनके चित्र इस समय तक अकादमी की प्रदर्शनी में प्रदर्शित हो चुके थे। उसके बाद आकृति (राजस्थान ललित कला अकादमी प्रकाशन) सन् 1982, 87

आदि के अंको में राजस्थान के समसामयिक कला जगत् के कलाकारों की चर्चाएं प्रस्तुत हुईं जिनमें कतिपय महिला कलाकारों का भी उल्लेख हुआ।

राजस्थान की वरिष्ठ महिला कलाकारों में श्रीमती ऊषारानी हूजा, श्रीमति चन्द्रावती शर्मा, सुश्री वीरबाला भावसार, श्रीमती विमला मिश्रा, श्रीमती सावित्री शर्मा, कृष्णा शाह, प्रभाशाह, विमल कौर, श्रीमती रेखा भटनागर, श्रीमती रीता प्रताप, श्रीमती सूरजीत कौर चोयल, सुश्री किरण मुर्दिया आदि के नाम उल्लेखनिय रहे।

सन् 1923 से 1951 के बीच जन्मी इन महिला कलाकारों ने अपनी विशिष्ट शैलीगत उपलब्धियों के द्वारा अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। उदाहरण स्वरूप 1923 में जन्मी श्रीमती ऊषारानी हूजा ने शिल्प को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। आपकी शिल्पाकृतियां जयपुर, कोटा, दिल्ली, वाशिंगटन, स्वीडन, फ़िजी आदि स्थानों पर स्थापित हैं एवं आपने 1990 की फ़ैलोशिप, राजस्थान श्री अवार्ड (1982), मेवाड़ फाउन्डेशन सज्जन सिंह आवार्ड (1985) आदि प्राप्त किये।³¹

श्रीमति चन्द्रावती शर्मा का जन्म सन् 1936 में हुआ। इन्होंने राजस्थान विश्वविद्यालय से चित्रकला में प्रथम श्रेणी से एम. ए. किया। राजस्थान कला मन्दिर में रामगोपाल विजयवर्गीय के शिष्यत्व में भी अध्ययन किया। राजस्थान ललित कला अकादमी सहित कई समूह प्रदर्शनियों में चित्र प्रदर्शित किये हैं। सन् 1978 में शिक्षक दिवस के अवसर पर पुरस्कृत, अढ़ाई शती समारोह में कला संयोजिका मनोनीत, सन् 1977 में ढूंढार शैली के चित्रों की प्रदर्शनी की भी संयोजिका रही। इन्हें सिरेमिक्स पर अलंकरण का विशेष अनुभव है।³² डॉ. वीरबाला भावसार ने राजस्थान के कोमल बालुका कणों के विशिष्ट प्रयोगों द्वारा अनेकानेक आकर्षक कृतियाँ प्रस्तुत की, सहज सरल आकारों के मौलिक प्रयोगों में डॉ. भावसार कुशल रहीं³³। गुजरात, राजस्थान एवं मध्यप्रदेश राज्य की विभिन्न कला प्रदर्शनियों में आपके चित्र प्रदर्शित हो चुके हैं। गांधी दर्शन प्रदर्शनी, खादी इन्स्टीट्यूट अहमदाबाद, फाइन आर्ट कॉलेज, अहमदाबाद सहित कई निजी संग्रहों में इनकी रचनाएं संग्रहीत हैं। चित्रण के साथ स्टेज डिजाइन एवं भूमि रचना भी करती है।³⁴ उदयपुर की सुरजीत अपने विशिष्ट व्यक्तिचित्रों के लिए जानी गई। स्थानीय उदयपुर के परिवेश एवं रंगों को आधार बनाकर इन्होंने अपनी चित्र श्रृंखलाएं तैयार कीं।³⁵ श्रीमती सावित्री शर्मा ने सन् 1944 में आई. जी. डी., बॉम्बे एवं सन् 1953 में राजस्थान कला संस्थान, जयपुर से

डिप्लोमा पास किया। 1953 ई. में ही विशारद की परीक्षा उत्तीर्ण की। जयपुर में आयोजित विभिन्न ग्रुप प्रदर्शनीयों में भाग लिया।³⁶ डॉ. रेखा भटनागर ने चित्रों में समानान्तर रेखाओं के माध्यम व रंगों के सुगम प्रयोगों से अपनी विशिष्ट भाव अभिव्यक्तियों को प्रस्तुत करने की चेष्टा की।³⁷

विमलकौर ने राजस्थान ललित कला आकादमी से ग्राफिक के लिये सन् 1966 में पुरस्कार प्राप्त किया। इन्हें बाटिक एवं ब्लूपॉटरी में विशेष अनुभव प्राप्त है।³⁸ प्रभा शाह जो गूँगी-बहरी कलाकार रहीं। उनकी सारी सज्जन क्षमता कैनवास पर उतरती रही, उनके रंगों में एक अजीब उदासी भी छाई रही। किरण मुर्झिया आरम्भ में चटक रंगों से सीधी रेखाओं, कोणों, आयतों का संयोजन करती थी, धीरे-धीरे प्रकृति चित्रण की ओर उन्मुख हुई, जिसमें स्थानीय उदयपुर की गरिमा छाई रही।³⁹

अकादमी की प्रदर्शनियों में प्रदर्शित डॉ. रीता प्रताप की रचनाएं महिला कलाकार प्रदर्शनी, कलावृत्त प्रदर्शनी आदि में भी प्रदर्शित हो चुकी हैं। वनस्थली (1972), आइफैक्स दिल्ली (1973) एवं अकादमी कला दीर्घा में एकल प्रदर्शनीयाँ आयोजित कीं।⁴⁰ डॉ. रीता प्रताप का आरम्भिक रुझान शिव-परिवार में रहा एवं आपने शिव-परिवार की अनेक चित्र श्रृंखलाएं प्रस्तुत की कुछ गहरे रंगों में समावेष्टित इनकी आकृतियाँ बरबस ही दर्शकों को आकर्षित करती रहीं।⁴¹



श्रीमति रेखा भटनागर का जन्म 1946 में हुआ तथा उदयपुर विश्वविद्यालय से चित्रकला में एम.ए. किया। वनस्थली फ्रैस्को कैम्प में अध्ययन 1968। ललित कला आकादमी में कई बार चित्र प्रदर्शित किए। इनकी रचना को सन् 1968 में अकादमी से पुरस्कार प्राप्त हुआ है।⁴²

राजस्थान की महिला कलाकारों का द्वितीय समूह प्रायः उपरोक्त वरिष्ठ कलाकारों का शिष्य वर्ग ही रहा। जिनकी प्रथम सूची हमें पूर्व में उल्लिखित पुस्तक जयपुर कला और कलाकार में वर्णित नये उभरते प्रयोगशील कलाकारों

की सूची में प्राप्त होती है। 'आकषति' तथा अन्य पत्र पत्रिकाओं में भी इन कलाकारों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इन कलाकारों में सुरभि मैनी (बिरमीवाल), डॉ. अर्चना कुलश्रेष्ठ, मीना बया, मीनाक्षी भारती, संगीता जुनेजा, रेखा पंचोली, मीनू श्रीवास्तव, दीपिका हाजरा, पुष्पा दुल्लर, किरन सरना⁴³, इला यादव (1955)⁴⁴, इन्दू सिंह, ममता रोकणा आदि वर्तमान में सक्रिय रूप से कलाकार्यों में संलग्न हैं इनमें सभी ने समूह प्रदर्शनियों, एकल प्रदर्शनियों व कला मेलों आदि में अपनी कषतियों को प्रदर्शित किया है।⁴⁵

सुरभि मैनी का जन्म 1955 में एवं राजस्थान विश्वविद्यालय से एम. ए. चित्रकला में स्वर्णपदक प्राप्त किया। राजस्थान विश्वविद्यालय के कलाकार, अरुणोदय एवं प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप, जयपुर की प्रदर्शनियों में भाग लेने के साथ-साथ, आइफैक्स, दिल्ली द्वारा आयोजित कलामेला में भी रचना प्रदर्शित की।⁴⁶ डॉ. अर्चना कुलश्रेष्ठ "चितेरी" नामक कलासंस्था की संस्थापक सदस्य रही एवं उन्होंने संस्था द्वारा आयोजित विभिन्न गतिविधियों का संचालन करते हुए कोटा, जयपुर, अहमदाबाद, बीकानेर, दिल्ली, आदि स्थानों पर कलाकषतियों को प्रदर्शित किया⁴⁷।

कूकू माथुर का जन्म जयपुर में हुआ। इन्होंने सन् 1972 में राजस्थान विश्वविद्यालय से चित्रकला विषय में एम. ए. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की व कलवृन्त की तृतीय प्रदर्शनी में पुरस्कृत हुई।⁴⁸

1985 में सुखाड़िया विश्वविद्यालय से चित्रकला में एम. ए. करने वाली मीना बया ने अनेक पुरस्कार प्राप्त किये। जिनमें राजस्थान ललितकला अक.।दमी, क्रियेटर, अम्बाला, तूलिका कलाकार (परिशद) से प्राप्त पुरस्कार प्रमुख रहे। राजस्थान की महिला कलाकारों में मीनाक्षी भारती, मीनू श्रीवास्तव व रेखा पंचोली ने भी अपनी पहचान बनाई है। मीनाक्षी भारती का नाम भी जयपुर कलाकार पुस्तक में दर्ज है इन्होंने जयपुर, दिल्ली, बम्बई, नैरोबी, चण्डीगढ़ आदि स्थानों में एकल चित्र प्रदर्शनियों की हैं। विभिन्न राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय कला प्रदर्शनियों में भी भागीदारी दर्ज करते हुए अकादमी की कार्यशालाओं में भी भाग लिया है। एकरंगे स्याही के चित्रण में विशिष्ट मीनू श्रीवास्तव की कृतियाँ राजस्थान ललित कला अकादमी, ट्रेड फेयर ऑफ आथोरिटी दिल्ली, हुडको आदि में संग्रहीत हैं एवं अनेक एकल व समूह प्रदर्शनियाँ कर चुकी हैं।

उदयपुर की रेखा पंचोली श्री अपने विशिष्ट मानवाकषति चित्रों के लिए

पहचानी जाती हैं। मेवाड़ी गठन में बनी इनके चित्रों की आकर्षकता विशिष्ट होती है। सन् 1947 में अजमेर में जन्मी दीपिका हाजरा ने 1971, 1973 व 1980 में राज्य पुरस्कार प्राप्त किये एवं आईफैक्स, दिल्ली, जहांगीर आर्ट गैलरी, मुम्बई, बोम्बे आर्ट सोसायटी आदि की विभिन्न प्रदर्शनियों में भागीदारी भी की। जुनेजा आर्ट गैलरी की निर्देशक संगीता जुनेजा आत्मदीक्षित चित्रकार रही। अनेक राज्यस्तरीय एवं राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में संगीता ने भाग लिया।

वनस्थली महिला विश्वविद्यालय में कार्यरत डॉ. पुष्पा दुल्लर की रूचि स्वभाविक रूप के मानवाकृति चित्रण में रही समय-समय पर अपनी संवेदनाओं को उन्होंने अपनी विशिष्ट चित्र शृंखलाओं में प्रस्तुत किया है। जैसे कि लातुर में आए भूकम्प की त्रासदी को उन्होंने गहरे नीले व पीले रंगों में बनी चित्र श्रृंखला में दुःखी पीड़ित मानवकृतियों द्वारा प्रस्तुत किया है। गांधी जी का विशाल चित्र भी उनकी अपनी एक विशिष्ट उपलब्धि है जो आकार में विश्व का सबसे बड़ा गांधी जी का चित्र है एवं उसमें अन्यत कोमलता के साथ उन्होंने गांधी जी के चरित्र को प्रस्तुत किया है।

डॉ. किरन सरना भी वनस्थली में ही कार्यरत एक अन्य महिला कलाकार हैं। लोक कलाओं में रुझान रखने वाली इस कलाकार ने अपनी कला यात्रा के आरम्भ में कलर रिलीफ में काम करके राजस्थान के उभरते नये प्रयोगवादी कलाकारों के बीच जयपुर कला और कलाकार पुस्तक में अपनी उपस्थिति दर्ज की। बाद में डीचिरिकों के समान स्थापत्य के आकारों में कुछ प्रयोग किये एवं वर्तमान में अपने विशिष्ट पक्षी आकारों के साथ जीवन यात्रा शृंखला पर निरन्तर 5 वर्ष से काम कर रही है जिनमें अत्यन्त सरल आकारों की सहज प्रस्तुतियां हुई हैं।⁴⁹



इला यादव - एनेमल पेंट के सपाट रंगों को सुकोमल रंगतों में अत्यन्त

चातुर्य के साथ, चित्रपटल पर प्रयोग करने में इला यादव का कोई विकल्प नहीं बन पाया है। प्रारम्भ से ही कुछ नया कर गुजरने के मोह ने इन्हें विविध माध्यमों के प्रयोग के प्रति प्रेरित किया व गाँवों, शहरों और घरेलू वस्तुओं की परछाइयों का प्रभाव इनकी कृतियों का विषय बना।⁵⁰

ममता रोकणा भी अपनी विशिष्ट राजस्थानी लोक परम्परा के गुणों से ओतप्रोत कृतियों के लिए जानी जाती है, अत्यन्त विनम्र मृदुभाषी ममता रिलीफ में महिलाओं के भाव बनाने में भी दक्ष हैं उनकी कृतियों में अलंकरण का समावेश सहज ही राजस्थानी आभूषणों वस्त्रों की परम्पराओं को प्रस्तुत करता है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक महिला कलाकार भी आज राजस्थान में कार्य कर रही हैं।

कलाकारों की कृतियाँ अपने समय का दस्तावेज होता है इस दृष्टि से भी राजस्थान की इन महिला कलाकारों के चित्रों में विगत अर्द्ध शताब्दी का जनमानस, उसके सुख दुःख, उसकी कुंठाएँ, कला जगत में पनपता अन्तर्राष्ट्रीयवाद, आदान-प्रदान, आधुनिकता का आगमन आदि सब कुछ दिखाई देता है साथ ही इनके चित्रों में नारी मन की कोमल छाप भी अंकित होती है।⁵¹

ikn fvli.kh

1. डॉ. जय सिंह नीरज, राजस्थान चित्रकला, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण-1994, पृ. सं.-19
2. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, छटा संस्करण-2009, पृ. सं.-177
3. डॉ. चित्रलखा, कला, उपकार प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2009, पृ. सं.-20
4. किरन प्रदीप, भारतीय कला (आकृति-2), कष्णा प्रकाशन (प्रा.) लि., मेरठ, तृतीय संस्करण-2011, पृ. सं.-64
5. डॉ. गिराज किशोर अग्रवाल, कला और कलम, अशोक प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, संस्करण-2002, पृ. सं.-121
6. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दीग्रन्थ अकादमी, जयपुर, छटा संस्करण-2009, पृ. सं.-178
7. प्रेमचन्द्र गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण-1997, पृ. सं.-20
8. प्रेमचन्द्र गोस्वामी, भारतीय चित्रकला का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण-1999, पृ. सं.-56
9. प्रेमचन्द्र गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम

- संस्करण-1997, पृ. सं.-20
10. प्रेमचन्द्र गोस्वामी, भारतीय चित्रकला का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण-1999, पृ. सं.-56
 11. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-99
 12. प्रेमचन्द्र गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण-1997, पृ. सं.-14
 13. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-99
 14. डॉ. गिराज किशोर अग्रवाल, कला और कलम, अशोक प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, संस्करण-2002, पृ. सं.-156
 15. प्रेमचन्द्र गोस्वामी, भारतीय चित्रकला का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण-1999, पृ. सं.-62
 16. अविनाश बहादुर वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, द्वितीय संस्करण-1973, पृ. सं.-184
 17. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दीग्रन्थ अकादमी, जयपुर, छटा संस्करण-2009, पृ. सं.-182
 18. डॉ. गिराज किशोर अग्रवाल, कला और कलम, अशोक प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, संस्करण-2002, पृ. सं.-163
 19. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, छटा संस्करण-2009, पृ. सं.-191
 20. प्रेमचन्द्र गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण-1997, पृ. सं.-24
 21. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, छटा संस्करण-2009, पृ. सं.-201
 22. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-99
 23. डॉ. अर्चना जोशी, विश्व इतिहास में महिला चित्रकार, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, पृ. सं.-98
 24. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, छटा संस्करण-2009, पृ. सं.-191
 25. डॉ. जय सिंह नीरज, राजस्थान चित्रकला, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,

- प्रथम संस्करण-1994, पृ. सं.-51
26. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-99
 27. डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल, आधुनिक भारतीय चित्रकला, संजय पब्लिकेशन्स, आगरा, तृतीय संस्करण- 2002, पृ. सं.-25
 28. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-99-100
 29. डॉ. गिर्राज किशोर अग्रवाल, आधुनिक भारतीय चित्रकला, संजय पब्लिकेशन्स, आगरा, तृतीय संस्करण- 2002, पृ. सं.-25
 30. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-100
 31. वही, पृ. सं.-100-101
 32. जयपुर कला और कलाकार, प्रकाशक- सचिव, राजस्थान ललित कला अकादमी, रवीन्द्र मंच, जयपुर अढ़ाईशती समारोह के अवसर पर प्रकाशित, 1978 पृ. सं.-42
 33. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-101
 34. जयपुर कला और कलाकार, प्रकाशक- सचिव, राजस्थान ललित कला अकादमी, रवीन्द्र मंच, जयपुर अढ़ाईशती समारोह के अवसर पर प्रकाशित, 1978 पृ. सं.-52
 35. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-101
 36. जयपुर कला और कलाकार, प्रकाशक- सचिव, राजस्थान ललित कला अकादमी, रवीन्द्र मंच, जयपुर अढ़ाईशती समारोह के अवसर पर प्रकाशित, 1978 पृ. सं.-40
 37. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-101
 38. जयपुर कला और कलाकार, प्रकाशक- सचिव, राजस्थान ललित कला अकादमी, रवीन्द्र मंच, जयपुर अढ़ाईशती समारोह के अवसर पर प्रकाशित, 1978 पृ. सं.-40
 39. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस

- नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-101
40. जयपुर कला और कलाकार, प्रकाशक— सचिव, राजस्थान ललित कला अकादमी, रवीन्द्र मंच, जयपुर अढ़ाईशती समारोह के अवसर पर प्रकाशित, 1978 पृ. सं.-68
 41. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-101
 42. जयपुर कला और कलाकार, प्रकाशक— सचिव, राजस्थान ललित कला अकादमी, रवीन्द्र मंच, जयपुर अढ़ाईशती समारोह के अवसर पर प्रकाशित, 1978 पृ. सं.-56
 43. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-101
 44. डॉ. सुनील कुमार, भारतीय छापाचित्र कला, भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2000, पृ. सं.-97
 45. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-101
 46. जयपुर कला और कलाकार, प्रकाशक— सचिव, राजस्थान ललित कला अकादमी, रवीन्द्र मंच, जयपुर अढ़ाईशती समारोह के अवसर पर प्रकाशित, 1978 पृ. सं.-81
 47. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-101
 48. जयपुर कला और कलाकार, प्रकाशक— सचिव, राजस्थान ललित कला अकादमी, रवीन्द्र मंच, जयपुर अढ़ाईशती समारोह के अवसर पर प्रकाशित, 1978 पृ. सं.-78
 49. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा. दका डॉ. ममता सिंह, "सृजन" शोध संकलन कला अंक, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्रथम अंक-2010, पृ. सं.-102-103
 50. आर. बी. गौतम, शैलेन्द भटनागर, राजस्थान की महिला कलाकार, प्रकाशक—प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप, जयपुर 1990-91 पृ. सं.-23
 51. डॉ. अल्पना भट्ट एवं श्वेता शुक्ला, राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में महिला कलाकार, सम्पा.

i f d j u l j u k (शोध निर्देशिका)
नेहा बसेड़ा (शोधार्थी)
दृश्यकला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ (राज०)

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

मूर्तिकार मुकुल पॅवार के का काँस्य माध्यम में बने मूर्तिशिल्पों में देवी-देवताओं का अंकन

‘प्रागैतिहासिक कलावशेष के वैज्ञानिक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संसार में नाद के पश्चात आकार को ही स्थान मिला। लेखन-कला कोान के पूर्व, मानव आकारों से ही संभवतः भावाभिव्यक्ति करता था। धीरे-धीरे कलामानकों को साहित्य में रूढ़िबद्ध किया गया। प्राचीन साहित्य में भी विविध कलाओं के रूपों प्रतिरूपों के अनेक उल्लेख प्रायः मिलते हैं। इनमें चित्र, मूर्ति, संगीत, नाट्य, वास्तु, स्थापत्य आदि विभिन्न कलाओं की क्रमबद्ध सूची तथा विस्तृत वर्णन समायोजित है।’¹

“कला मानव जाति के विकास का प्रतीक है। जिस देश की कला जितनी अधिक विकसित है वह देश उतना ही अधिक सभ्य और सुसंस्कृत समझा जाता है। कला’ कला के लिये नहीं है, अपितु कला मनुष्य के लिये है, और उपयोगी है चाहे उस का उपयोग आनन्द ही प्रदान करना क्यों न हों आनन्द ही मनुष्य की सबसे बड़ी चाह हैं और कला आनन्द का स्रोत है यदि यह बात सही है तो कला का उपयोग मनुष्य मात्रा के लिये है और यह सच है कि किसी न किसी रूप में कला प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आनन्द प्रदान करती है। कला का आनन्द व्यक्ति विशेष के लिये नहीं सार्वजनिक है”²

“भारतीय कला का संसार मनुष्य के इस ‘प्रतिसंसार’ से गहरे तक प्रभावित रहा है। अपनी परम्परा और संस्कृति से कलाकारों का यह रागात्मक जुड़ाव कला को अधिक आश्वस्तकारी और परिवर्तनाधर्मी बनाता है।”³

उपरोक्त प्राक्कथन का कारण सिर्फ यह है कि हम मूर्तिकार मुकुल पॅवार के कला-संसार में प्रवेश करने का रास्ता खोज रहे हैं। और यह कि ऐसे अनेक शिल्पों से हमारा साक्षात् होगा जिन्हें देखने के लिए शिल्प में प्रयुक्त मिथकों प्रतीकों आदि के आशयों का प्रारम्भिक परिचय आवश्यक होगा। इसके

लिए मुकुल पेंवार जी से ही कुछ सहारा मांगेंगे।

मुकुल पेंवार जी के कौंस्य माध्यम में बने मूर्तिशिल्प पर दृष्टिपात किया जाये तो स्पष्ट होता है उनकी कला अभिव्यक्ति का सबसे प्रमुख विषय देवी-देवताओं का अंकन है जिसमें नारी अंकन को प्रमुखता दी गयी है। जो पारम्परिकता आन्तरिक सन्तोष और देवी के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण विशेषताएँ दिखाती है। वे इन मूर्तियों की एक विश्वजननी गरिमा और अपने शिल्प की संवेदनशीलता को विशेष महत्व देते हैं। "मुकुल पेंवार जी के अनुसार " मेरा स्त्री को बनाने का मकसद स्त्री के अनेक गुणों की ओर इशारा करना उन्हे कला में अपनी तरह से सम्मान देना है।"

मुकुल पेंवार ने लगभग सभी माध्यमों में काम किया। इनकी हेडस् शृंखला जिसमें इन्होंने माध्यम के रूप में कौंस्य का प्रयोग किया हुआ है मुकुल पेंवार की शिव पार्वती की वह कास्य प्रतिमाएँ जिनमें प्राचीनता को पुर्ननवीन रूप दिया गया है। इस कलाकार के मूर्ति शिल्प में मूर्त-अमूर्त दोनो तरह की अभिव्यक्तियाँ हैं और दोनो ही रूपों में मुकुल पेंवार अपने कौशल तथा दृष्टि से बेहद प्रभावित करते हैं।

इस सीरीज में इन्होंने कई विषयों पर जैसे- पार्वती, शिव नन्दी, मीरा (चित्र संख्या-1) रानी, पुरोहित, बुद्ध आदि विषयों पर मूर्तियाँ बनायी हैं। सभी शिल्पों को बारीकी से न बनाते हुए कुछ अमूर्त रूप में गढ़ा गया है जो कि निर्जीव होते हुए भी इतने सजीव दिखते हैं मानों कुछ पुकार कर रहे हों। मुकुल पेंवार जी की अत्यधिक कौंस्य में बनी 'हेड्स शृंखला' की नारी मूर्तियों के चौड़े मस्तक, अधखुली हुई स्वप्निल आँखों और अमूर्त बनाये गये होठों द्वारा उन्होंने नारी के प्रति लगाव एवं दिव्य द्रष्टा के वास्तविक चरित्र व संवेदनशील स्वभाव को पकड़ लिया है।

नारी के लिए उनकी यह सोच कि "मैं अपने कलासृजन के माध्यम से नारी के रहस्यों की खोज कर उसे सम्मान देना चाहता हूँ।" नारी मेरे लिए हमेशा आदरणीय रही है और सदैव रहेगी।

एक शिल्प "पार्वती" (चित्र संख्या-2) शीर्षक का है जिसकी अधखुली आँखें, नाक होठ की ओर जाती हुई और कन्धों से बाल लटकते हुए तथा दोनो हाथों से दीप पकड़े हुए ऐसी प्रतीत होती है मानों पूजा अर्चना कर रही हो।

हेड्स शृंखला के मूर्तिशिल्प जो कि तकनीकी रूप से बहुत कुशलता पूर्वक

बनाये गये हैं, इन शिल्पों में स्थिरता देखने को मिलती है। इन सभी प्रकार के हेड्स को एक जगह बैठे हुए प्रतीत बनाया गया है। चाहे वो शिव मूर्ति हो या पार्वती, मीरा, बुद्ध, मिश्र की रानी एवं पुरोहित आदि। सभी आकृतियाँ निर्जीव होतु हुए भी एक दम जीवित रूप में गढ़ी गयी है और सभी के मुखमण्डल में मानों शब्दों का जाल बिछा हुआ है। जो कि उसे तोड़ कर बहुत कुछ कहना चाह रहे हो।

ऐसा ही कॉस्य माध्यम से निर्मित एक शिल्प "शिव आरै नन्दी" (चित्र संख्या-3) शीर्षक से है जिसमें शिव के सिर पर नन्दी विराजमान हुए अंकन किया गया है।

"वर्ष को शक्ति का प्रतीक माना गया है, पुराणों में इसे शिव के वाहन के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। मुकुल जी शिव को 'आदि पुरुष' के रूप में मान दते हैं लेकिन यह मुकुल जी की रचनात्मक मनुष्यता का ही सुसंस्कार है कि शिव के वाहन 'नन्दी' को शिव के मस्तक पर विराजमान करने का साहस पूरे सम्मान के साथ अपने एक शिल्प में सिरिजते हैं यह शिव की सदाशयता का भी परिचय है और मुकुल के प्रकृति के सहजीवी पशु समुदाय के प्रति अत्यन्त मान का भाव भी।"⁵

मूर्तिशिल्प में निरन्तर आते बदलावों को मुकुल पॅवार जी ने अपनी कृतियों में बरतने के साथ-साथ ही नये-नये विषयों को अपने मूर्तिशिल्पों के लिए चुना है और इस तरह एक नये मूर्ति संसार की रचना हो सकी, इन्होंने अपने मूर्तिशिल्प में मूर्त अमूर्त दोनों तरह की अभिव्यक्ति की है। 'बुद्ध' को अनेक मूर्तिकारों ने कला का विषय बनाया है। मुकुल पॅवार जी के बुद्ध (चित्र संख्या-4) कन्धे पर चादर लपेटे हुए है और आँखों की निर्लिप्तता उस विमोह का 'पाठ' तैयार करती है। जिसका आशय निर्वैयक्तिक या समाज-निरपेक्ष है। मुकुल पॅवार के मूर्ति शिल्पों की एक विशेषता यह भी है कि वे मूर्ति के मूल पर बल दते हैं और अनावश्यक चीजों को निकालकर उसे इस तरह तराशते हैं कि कृति जीवित शकल ले लेती हैं। उनके हाथों की कुशलता, संयम, दृष्टि, कल्पना तथा अपने समय पर नजर रखता उनका विवेक ठीक उसी तरह काम करते हैं जैसे एक रचनाकार अन्तिम रूप से अपनी कृति को बरतकर उसे नये जीवन में ढालता है।

"कलाकार अपनी सृजनशक्ति से रूप की सृजना कलाओं के माध्यम

से करता है। अरूप को रूप प्रदान करता है और अप्रत्यक्ष को भी कलाओं के माध्यम से प्रत्यक्ष कर देता है। सृजन शक्ति कलाकार के लिए आवश्यक है और सृजन ही कला का सार है। सृजन की ये क्षमता मनुष्य में उसे समय से है जब वह सभ्यता से परिचित भी नहीं था, वन कन्दराओं में रहता था, आखेटक जिन्दगी गुजारता था, न बोलना जानता था और न ही लिखना-पढ़ना, प्रागैतिहिक गुफा चित्रों में मनुष्य की सृजन क्षमता को देखा जा सकता है।¹⁶

अपने सृजन में एक संस्कृति के निर्माण और एक सद्भावपूर्ण मानव-समुदाय की रचना में तल्लीन मुकुल पॅवार की कौंस्य निर्मितियों में हमें एक सहज विमर्श दिखाई दे सकता है। मुकुल पॅवार ने अपने माध्यमों में परिवर्तन कर जिस काव्यमयता और सांगीतिक रूपाकारों को गढ़ा, उनमें सौन्दर्य के साथ-साथ गहरी अदम्यता थी। इन्होंने अपने मूर्तिशिल्पों में अपने अन्दर की अवचेतन अनुभूतियों को स्वतः व्यक्त होने दिया है, जिसके लिए उन्होंने आवश्यक माध्यमों का उपयोग करके ठोस व स्पष्ट आकारों का सृजन किया।

यह मूर्तिकार अपने माध्यम और अपनी अभिव्यक्ति दोनों में पके हुए हैं, उन्हें पता है कि किस अभिव्यक्ति के लिए कौन सा माध्यम उर्पयुक्त रहेगा व उस माध्यम की सीमाएँ क्या होंगी। इन्होंने लगभग सभी माध्यमों में कार्य किया है और उन्हें बहुखूबी रूप से प्रयोग किया है। मुकुल पॅवार के मूर्ति संसार का अपना एक स्वायत्त संसार है। अपनी कृतियों में वे सीधे-सीधे अभिव्यक्ति करते हैं। यानी जो वे कला चाहते हैं, वह कृति के भीतर स्थिर हो जाती है।

मुकुल पॅवार के पूरे कला संसार का निरक्षण कर यह कहना अनुचित ना होगा कि माध्यम चाहे जो भी हो पर उसे प्रयोग करते समय तकनीकी कुशलता होना अति आवश्यक है, जो कि हमें इनके सभी मूर्तिशिल्पों में दिखाई देती है।

“सृजन या शोध की कोई सीमाएँ नहीं होती किन्तु सृजन सिर्फ निर्माण ही तो नहीं है जो नये-नय फर्नीचर के रूपों में दिखायी दे। सजृन चाहे शिल्प के रूप में हो, चाहे चित्र के रूप में, चाहे दोनों के मध्य हो, संसार में दिख पड़ने वाली या हृदय में अनुभव की जाने वाली अद्भुतताओं का प्रगट रूप है जिसे कलाकार किसी भी माध्यम की सहायता से प्रकट करता है।”¹⁷

सन्दर्भ सूची

- 1 पाण्डेय डॉ० सन्ध्या-गुप्तकालीन बौद्ध-चित्रकला, परिमल पब्लिकेशन दिल्ली, प्रथम संस्करण-1991, पृ.-1
- 2 शुक्ल रामचन्द्र - चित्रकला का रसास्वादन ,हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी, प्रथम संस्करण-1962, पृ. -3
- 3 सम्पादक- कला दीर्घा, अक्टूबर-2010, वर्ष 11, अंक-21, संवेदना और शक्ति से सम्पन्न शिल्पो के सर्जक: मुकुल पेंवार कुमार अनुपम लखनउ से प्रकाशित, पृ.-69
- 4 सम्पादक-कला दीर्घा, अक्टूबर-2010, वर्ष 11, अंक-21, संवेदना और शक्ति से सम्पन्न शिल्पो के सर्जक: मुकुल पेंवार कुमार अनुपम लखनउ से प्रकाशित, पृ.-71
- 3 सम्पादक- कला दीर्घा, अक्टूबर-2010, वर्ष 11, अंक-21, संवेदना और शक्ति से सम्पन्न शिल्पो के सर्जक: मुकुल पेंवार कुमार अनुपम लखनउ से प्रकाशित, पृ.-69



चित्र - 1



चित्र - 2



चित्र - 3



चित्र - 4

Prof. Kiran Sarna, Research Guide
Pradnya S.Bhatkar, Research Scholar
Visual Art Dept.
Banasthali University, Rajasthan

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

REVOLUTION IN DRAWING

Drawing is means of finding your way about things and a way of experiencing more quickly several tryouts and attempts.

- Henry Moore¹

Drawing is always an attempt to get to the heart of matter, to express a world that is more vivid than the one we normally see. Drawing is the most direct method of conversing with the mass as we say an illustration is worth than a thousand words. Drawing has practical as well as artistic uses and before photography was invented drawing was the only media to capture the events for future as well as for records.²

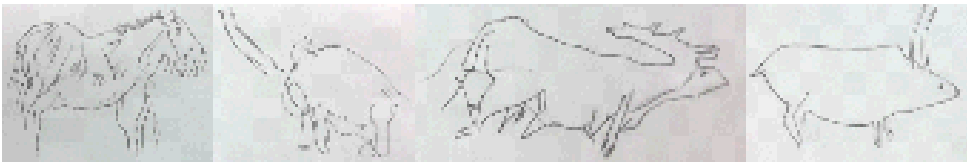
Whatever approach is taken towards drawing it can be categorised under 3 headings: Explanatory, Doodle, Emotional or Responsive. Explanatory drawings are used as a method of exploring a particular side of the subject as an example, a drawing created in sketch book by a painter for preliminary studies. Doodles are the result of 'taking a line for a walk' on a surface. Generally it's troublesome as has usually been seen. The line may explore arabesque patterns, or just be a bunch of marks that combine to form very pleasing images. The responsive drawing is one that flows from the inner emotions in response to what's seen or felt by the creator at that point. This could be created without analytical investigation; however it shows a definite and positive display of energy and confrontation. Most drawings contain a part of these three categories.

The level of civilization depends very largely upon how easily the permanently written messages can be duplicated and communicated. Spoken language extended man's ability to communicate and make his meanings more precise, but for many years the perpetuation of knowledge depended

entirely upon memory. Words, changes in meaning and factual information can easily become distorted after it has been repeated several times.

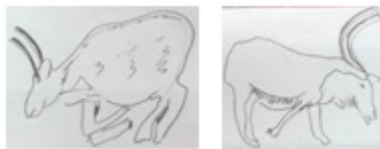
A written, visible language took the place of memory. Man began visual communication in many ways. Twigs were broken to form pointers marks were made on three, trunks, and piles of rocks which indicate something had happened. The most important stage in early written communication occurred when men learned to draw picture to represent things they had seen and express their ideas. These first drawings or writings were done on walls of caves man's first home. A

A. Early cave drawings showing animal without action.

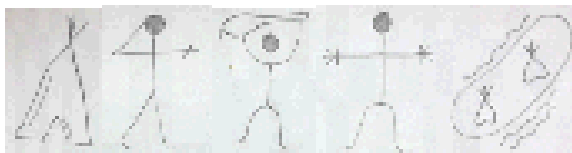


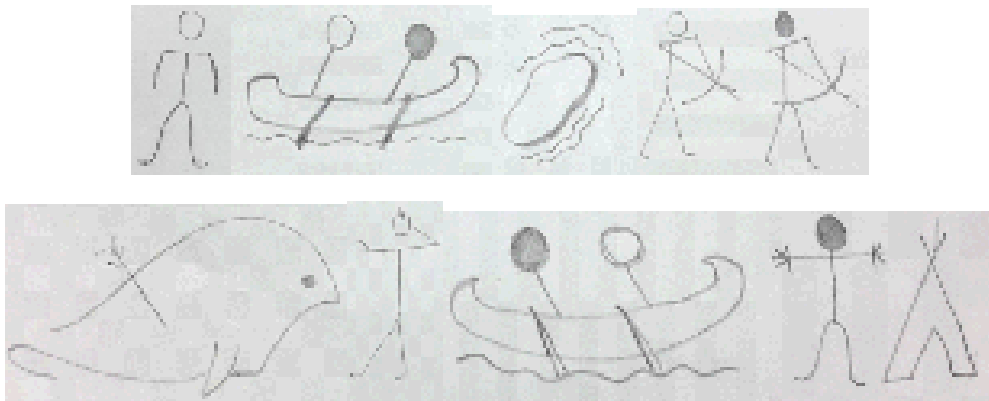
The next important development in the history of writing was that of showing action within drawings. B American Indians developed a system of picture writing that could be used to describe any activities. One of the most famous picture writings C tell of a man leaving home and taking his canoe to travel for ten days to friend's home where they stalk their prey with bows and arrows. The amount of time was indicated by showing the number of figures on their way back home.³

B. Cave drawings showing action.



C. Picture writing as developed by the American Indian.

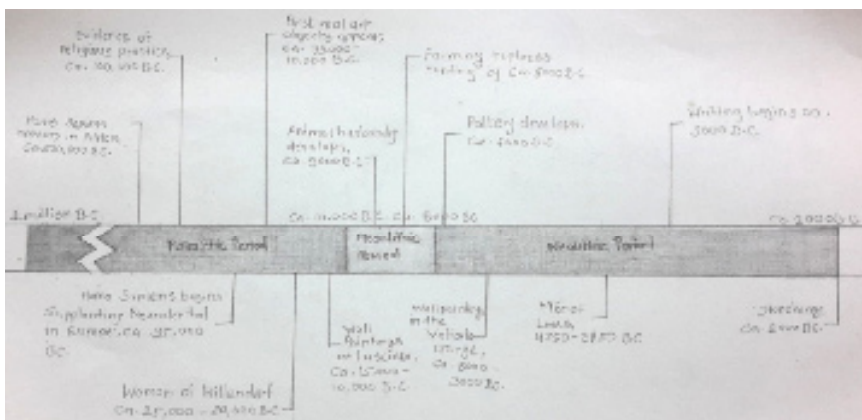




The most famous prehistoric wall paintings are those in the caves at Lascaux, France, which were created between CA.1500 and 10,000 BC. On the cave walls there are paintings of Bisons, Mammoths, Reindeer, Boars, Wolves and Horses. These images were created by people whose lives were dependent upon the animals for food.

The Lascaux paintings are extremely naturalistic and demonstrate prehistoric artist's keen observation and ability to record an image remembered after the model was no longer before the eyes. Many of the animals gracefully jump, run and romp, conveying a remarkable sense of animation.⁴

Time line: - Prehistoric culture⁵

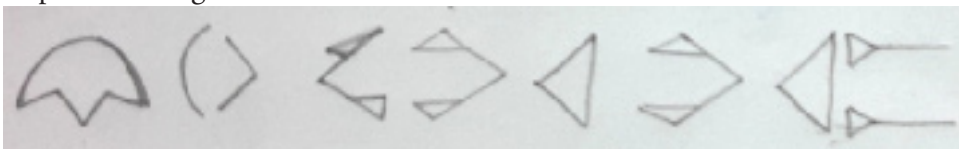


By about 300 B.C.F the people of ancient Mesopotamia were using written language known today largely from clay tablet's that were first unearthed in mid-nineteenth century. Chiefly the province of the upper class and priests, this writing was accomplished in wedge- shaped cuneiform

characters (from the Latin-Cuneus, meaning "Wedge") made with a stylus that was itself wedge shaped and that was into wet clay tablets. The original purpose of this writing seems to have been to keep agricultural records. Among the oldest examples of cuneiform writing, for instance, is a tablet from a temple complex at uruk that lists sacks of grains and heads of cattle cuneiform writing began as a pictographic system. In its earliest form, the symbol for "cow" was an abstract "picture" of a cow's head:



But the pictographs were quickly abstracted even further, presumably in no small part because it was difficult to draw a curve with a reed stylus in wet clay. Between 2500 and 1800 B.C.E the sign for "cow" was first turned ninety degrees sideways and then converted into a series of quickly imprinted wedges:



By combining pictograms, more complex ideas or ideograms and even abstract ideas could be represented. A bird next to egg meant "fertility". Two crossed lines meant "hatred" or "enmity" and parallel lines signified "friendship".



Sometime around 2000 B.C.E, another important development occurred, when pictograms began to represent not only objects but sounds the birth of phonetic writing.⁶

Thus from the ancient times to modern era, drawing has developed rapidly. It has become one of the most important mode and medium of communication. These changes have introduced many techniques like graphic

design, digital drawing and painting, animation etc.

The visual arts are art forms that create work which are primarily visual in nature, such as ceramics, drawing, painting, sculpture, architecture; print making, modern visual arts (photography, video and film making) design and crafts. These definitions should not be taken too strictly as many artistic disciplines (performing arts, conceptual art, textile arts) involve aspects of the visual arts as well as arts of other types. Also included within the visual arts are the applied arts such as industrial design, graphic design, fashion design, interior design and decorative arts and crafts.⁷

Graphic art is the art of printmaking and drawing. In contemporary usage it refers to applied trade skills of a pressman, pre-press technician or type setter. The term can include the trades of lithography, serigraphy and bindery among others. Graphic arts as a trade can be traced back to the first instances of the stamped images or word. Traditional graphic art is the rubber, Plexiglas or other materials in order to transfer the images and or make an impression print to the material of choice such as paper, cloth, and wood, metal and plastics etc. More recently graphic art refers to the generation of two dimensional computer generated images. These images most often contain text along with other drawing.⁸

Graphic design is undertaken to convey messages to target audiences for e.g. poster making, advertising, banners etc. Graphic designing is the art or profession of combining drawings, text, pictures and ideas in advertisements, publication, and web. Graphic art is most often used in marketing.⁹ graphic design will draw the receiver's eye to the right place, which is more appealing and easy to understand for the audience. The interplay between the design and the content is what creates the first impression, paving the way for conveying the correct message. Design + content = messages.¹⁰

Design is one of our most important cultural expressions, taking in everything from architecture, fashion and interior design, industrial design, craft and visual communication.¹¹

At the initial creative stage, the designer transfer thoughts into concept sketches to test them out. The concept sketches are then developed into sketches for presentation to the client, and then for the supplier, giving

instructions for technical production. The sketches indicate various spaces which the designer can use to further strengthen the message like these methods are implemented in different ways in various fields.¹²

Designers Drawing: - These are preliminary sketches which provide basic working ideas, usually no more than rough sketches.

Project Drawing: - Generalised as in the various categories but usually produced in a more formal style. Their purpose is to inform audience with a general outline of a proposal.

Production Drawing: - These form an integral part of the production process. It is the information in these that leads directly to the fabrication of parts on the factory floor. As such they can actually be seen as a key link in the control of production.

Presentation or Maintenance Drawing: - Produced after the product is completed as a guide to routine maintenance or alternatively as a celebration of the product for marketing purpose.

Technical Illustration: - It is this latter category which one thinks of most typically as part of the pedagogic process, explaining how things work.¹³

The implementation and practical application of these drawings and methods lead to different and better clarity of the drawing giving a meaning and expressing the emotional idea behind it.

In the present era a new revolution has taken place which has changed the entire meaning of drawing. With the commercialization of computer driven pen plotters in the early 1960s, the computer was capable of drawing as well as typing, but artists frequently worked "blindly", unable to see their work until it was printed. These early printing devices worked like big Etch-a-sketch machines.¹⁴

The sketchpad system makes it possible for a man and a computer to converse rapidly through the medium of line drawing.¹⁵

Many artists and designers were highly influenced by the computer during their first encounter with digital painting and photo editing programs, perhaps because the tools and techniques resemble those of traditional drawing, painting and dark room operations.

The concepts underlying these programs are the basics of computer

applications in many areas from fine art to weather analysis and from medical imaging to broadcast T.V. popular examples of these programs include Adobe Photoshop®, Meta Creations Painter®, and Microsoft Image Composer® And Broader Band Kid Pix®

The basic concepts and capabilities used in painting and photo editing programs are essential parts of the artist's computer based image creation from Digital Painting to Computer Based Graphic Design to 3D Animation, Digital Video and Multimedia.¹⁶

Painting and photo editing programs build on many familiar metaphors from traditional painting, drawing and photography. Some common painting and photo editing program tool include paint brushes, air brushes, pencils, erasers and photographic processes such as lightening or darkening an image, changing the colour balance enhancing contrast and cropping.¹⁷

The use of computer in the production of art has made it very easy to create professional quality images combined with the improvements in software. This has made it easier than ever before to create fantastic *Manga Art Work. We can use application like Photoshop's to Edit Image, draw and paint.¹⁸

A growing area of computer graphics application involves art and design. Specific applications include: -¹⁹

1. Movie animation
2. Video animation (flying logo's)
3. Advertising
4. Packaging
5. Textile pattern design
6. Architectural design
7. City planning

Drawing is one of the simplest and most efficient means of communicating visual ideas. The evolution of drawing from prehistoric to contemporary times is the desire to understand the world around us and leave our mark for future generations. Drawing is like making an expressive gesture with the advantage of permanence- Henri Matisse²⁰ from the beginning of mankind

we have seen artist create experimental drawing. The first cave drawings experimented with burnt wooden stone and now the modern artist does experimental drawing with computer. The revolutionary changes in the field of drawing have influenced human life considerably and more radical changes will take place in future.

References:-

1. Ziwan Kaalia, Line Shades And Shadow - Introduction, Published By Pancheel Prakashan, First Edition 1997, Page No. 7
2. Ziwan Kaalia, Line Shades And Shadow - Introduction, Published By Pancheel Prakashan, First Edition 1997, Page No. 1
3. Dr. Ervin A. Dennis, Dr. John D. Jenkins, Comprehensive Graphic Art, Copyright© 1974 By The Bobbs - Merrill Company, Inc First Edition, Ninth Printing 1982, Page No.19
4. Janetta Rebold Benton, Robert Diyanni, Volume I - Arts And Culture - An Introduction To The Humanities, Publisher Bud Therien© 1998 By Prentice Hall, Inc Simon And Schuster, A Viacom Company Upper Sanddle River, NJ 07458, Page No. 14
5. Janetta Rebold Benton, Robert Diyanni, Volume I - Arts And Culture - An Introduction To The Humanities, Publisher Bud Therien© 1998 By Prentice Hall, Inc Simon And Schuster, A Viacom Company Upper Sanddle River, NJ 07458, Page No. 16
6. Janetta Rebold Benton, Robert Di Yanni, Volume I - Arts And Culture An Introduction To The Humanities, Publishing As Prentice Hall 1lake Street, Upper Saddle River, NJ, 07458, 4th Edition, Copyright© 2012,2008,2005 By Pearson Education Inc, Page No. 8
7. C.D.Rastaugi, Introduction To Art (Indian And Western), Published By Seema Gupta For Excellent Book Edition 2012, Page No. 4
8. C.D.Rastaugi, Introduction To Art (Indian And Western), Published By Seema Gupta For Excellent Book Edition 2012, Page No. 4
9. en.wikipedia.org/wiki/history-of-graphic-design. Date 30/1/15, Time 8.40PM
10. Bo Bergstrom, Essentials Of Visual Communication, Laurence King Publishing Ltd., Copy Right© Translation 2008, Page No. 166
11. Bo Bergstrom, Essentials Of Visual Communication, Laurence King Publishing Ltd., Copy Right© Translation 2008, Page No. 167
12. Bo Bergstrom, Essentials Of Visual Communication, Laurence King Publishing Ltd., Copy Right© Translation 2008, Page No. 170
13. David Sless, Learning And Visual Communication, London SW II Published In The USA And Canada By Halsted Press, A Division Of John Wiley And Sons, Inc; New York, © 1981 Divid Sless Croom Helm Ltd., 2-10 St John's Road, Page No. 132
14. Anne Morgan Spalter, The Computer In The Visual Arts, Library Of Congress

- Cataloguing In Publication Data, Copyright© 1999 By Addison Wesley Longman, Inc; Page No.13
15. Anne Morgan Spalter, The Computer In The Visual Arts, Library Of Congress Cataloguing In Publication Data, Copyright© 1999 By Addison Wesley Longman, Inc; Page No.25
 16. Anne Morgan Spalter, The Computer In The Visual Arts, Library Of Congress Cataloguing In Publication Data, Copyright© 1999 By Addison Wesley Longman, Inc; Page No. 38 & 39
 17. Anne Morgan Spalter, The Computer In The Visual Arts, Library Of Congress Cataloguing In Publication Data, Copyright© 1999 By Addison Wesley Longman, Inc; Page No.48
 18. Yishan Studio, Andrew James, The Complete Shouyo Art Kit, Publisher Alastair Compbell,
First Published In The United Kingdom In 2009 By ILEA, Page No. 12.
 19. Morris W. Firebaugh W.M.C, Computer Graphics - Tools For Visualization, Brown Publisher, Copy Right© 1993 B W.M.C Communications, Page No. 14
 20. https://ucoldesign.files.wordpress.com/2014/03/drawing_line_gesture.pdf, Date

Dr. Ritu Johri
Assistant Professor
Department of Fine Arts & Painting
J.N.V. University, Jodhpur,

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

INTERRELATIONSHIP BETWEEN IDEA AND IMAGE IN INDIAN ART

Advanced Art adds a living cell to the muscle of the tradition : The Five Element

My explanation about Interrelationship between Idea and Image in Indian Art provide insight that enable us to compare the underlying spiritual values that are the foundation for traditional culture, with the starting point for today's technological societies. The concept of five element is as scientific as perfect in expression. The research re-evokes the traditional perceptions for the mutual benefit of both. It evokes the experience of the integral vision of man and nature. The five elements, earth, water, fire, air and ether /space, provides a matrix on which the holistic worldview of traditional societies is based. It evoke the experience of the integral vision of man and nature. Their practices thus tuned to respect nature. How are traditional symbols to be interpreted? Traditional societies often recognized that we were one strand in an incredibly complicated web of life.

Advanced Art adds a living cell in to the tradition. My opinion is that if one is in creative process, the tradition is definitely inspired him or deeply lying and express knowingly or unknowingly in any expression. If one is create abstract forms or geometrical forms they are also connected with their root threads or living cell of cultural mussels, which are growing, strengthen and find new shapes in every moment. It is surprise that, this expression never dies, never out of dated.

Key-Concepts/terms are described in a show case, which are divided in to the five elements as their description found in various ancient texts. The primary body of knowledge of the ancient Indians is the Vedas. The Veda which has last compiled in 3100 BCE by Veda Vyas, is a compilation of the scientific observations of the various Rishis or seers or scientists, who

had lived before the period. The Rigveda is the oldest literature still in use in the world and mankind. A closer inspection of the Vedas reveals that, while this interaction between the rishis and the nature may have occurred well over 5000 years.

The Rigveda is divided into 10 mandalas. In the 10th Mandalas, a hymn known as Nasadiya Sukta gives the detailed scientific description of the questioning of the Rishi Permeshti on creation and the answers there of the answers are further available in a few other sukta of the other Vedas too. The Nasadiya Sukta talks of a golden hued womb, an indescribable power and energy center, Hiranyagarbha, which is in oscillation, It equates it to a type of activity, a breathing activity, which expresses itself in the form of a pulsating Hiranyagarbha. Hiranya means golden and garbha means womb. The state when the process of creation has got initiated in the form of the Indra – Vrtra war, which eventually leads to the Brahmand Visphotak, the opening up the Hiranyagarbha and emergence of the Universe. This breaking open of the HIRANYAGARBHA has been called as Brahmandvisfotak or Universal Explosion which finds a similarity in the MODERN CONCEPT OF BIG BANG. The Puranic texts of ancient India explained these Vedic concepts of creations through stories.

For scientists, Big Bang is the key that unlocks the secrets of the universe. Big Bang is what spewed out all the constituents which makes you, me and every thing else in this universe.

The cosmic water is akin to a cosmic soup being discussed by modern scientists cosmologists, which in description and characteristics seems similar to the Vedic description of Apah, the cosmic waters, in the Hiranyagarbha which in Puranic Legends has also been expressed as Ksheera Sagar, the milky ocean in which Narayan is at rest. Narah and Ayana, first means waters and ayana means one who is resting. Narayan is one who is at rest in the cosmic waters. One who is passive and not acting on anything.

All the constituent particles were deco fined in the primordial soup i.e. they were not bound by any force and were moving freely. He is always depicted in a reclining form on the bed of a 5 hooded coiled Adi Shesh. The 5 heads denote the 5 primordial states of matter. Adishesh and Narayan are symbolic of the cosmos between any two successive cycles of creation. Adi means prior or beginning and Shesh means remnants. Thus ADISHESH

denotes the remains at the beginning, remnants of the previous creation. Dr. Roger Penrose, the eminent theoretical physicist, also seems to be choing exactly the same views in scientific terms in this statement, “The BIG BANG in a certain sense is not the beginning. The Big final stage may also be the initial stage when there is only radiation left and the universe loses track of its scale.”

This is also called Anant Shayya, means infinite bed, This Anant and the symbol of the coiled serpent in this ancient Indian thought perhaps go to form the symbol for infinity and the root for the word infinite too. These basic elements bhuta were termed as Pancha Bhuta. Narayana and Adishesha, in the primordial waters, embody these 5 basic elements of the universe,

Akasha – Space, Ether	Vayu – Air
Tejas – Fire	Apah – Water
Prithvi – Earth	

Pra Pancha is the ancient world for universe. Pancha means 5 And Pra means special, natural, or primordial. The 5 elements are very essential of life root meaning of these names are in Sanskrit language denote the characteristic, gunas. Thus we see that;

Akase, Space grows	Vayu, Wind blows
Tejas, fire glows	Apah, water flows,
Prithvi, earth shows.	

The process of manifestation of matter and the universe, has been termed in the texts as ‘Panchikaranam’. These 5 elements undergo a churning process. During panchikaranam, each of the 5 primordial elements Bhuta, transform into a state such that they retain 50% of their own unique character or properties and the remaining 50% is a mix of the properties of the other 4 Bhuta. i.e. the remaining 50% is a combination of 1/4th parts of the properties of each of the other 4 primordial elements or Bhuta [extent of 5 12.5% each]. After this, the state of the 5 PanchBhuta, becomes Bhutika. Thus in the evolved Universe as it is now, we can never find the original, 5 Bhuta. We only find the transformed Bhuta. Pure state, stable state is the form of Narayan. Modern physicist sees a distinct similarity between this Panchikaranam process.

The particle is called Higg's Particle or the God particle because analysis shows that it must be the appearance and presence of this God Particle which must have triggered the free floating mass less particles in the cosmic soup to start acquiring mass and start interacting with.

Achievement of this research is that one can understand the Indian Art in brief and realize how concentrated and simplest an artist's creativity shaped in images. Origin and continuity of Indian Art Forms should be understood with the relevance of Indian Literature which seems that every image has an idea and every idea has its own potentiality. It is very interesting to watch that how far the artists were copying traditional shapes and how far they were free to introduce and express themselves in their art work. Some of the results may prove that eighty percent of the key terms have been continuously expressed from ancient to contemporary art works. Perhaps even shed some new light on the relationship between the individual and traditional in Indian Art. The secret of articulation the Tanmatras and five elements have described and studied. Some tend to be more Indigenous. May be Indian in spirit and world wide contemporary.

The result is to be form a basic vocabulary of creation myths sacred rituals, creative expression in painting and sculpture.

IDEA AND IMAGE OF FIVE ELEMENTS

[SUBTLE /TANMATRAS AND GROSS/ BHUTAS]

EARTH [पृथ्वी]	WATER [जल]	FIRE [अग्नि]	WIND [वायु]	SPACE [आकाश]
Energy of cohesive attraction Gandh[smell as such]	Energy of viscous attraction: Rasa[taste as such] Pot/ kalash/kumbh	Energy of light and form :Rupa[form as such]	Energy of impact: Sparsh[touch as such]	Energy of vibration: Sabad[sound as such]
1. Cow गौ	3. पूर्ण कुम्भ कलश	10. Form of a Horse (Sun Rays)	The child of the wind shell bearing pearl	
2. Lotus कमल	4. Crocodile (गंगा)	11. Sun	guardians of the quarters (dikpals)	14. Conch (शंख)
	5. Tortoise (यमुना)	12. Moon	13. Hansa (Hansalata)	
	6. Elephant (Clouds)	Vastu-Purush's Head		
	7. Fish			
	8. Serpent			
	9. Lotus			
[lan] beej akshar Moola dhar Chakra	van] beej akshar Swadhishthan chakra	[ran] beej akshar Manipur chakra	[yan] beej akshar Anahat chakra	[han] beej akshar Vishudhi chakra

Key concepts of idea and image of five elements :

1. Idea and Image of Earth
2. Idea and Image of Water
3. Idea and Image of Agni / Fire
4. Idea and Image of Vayu / Air
5. Idea and Image of Aakas / Eather

Idea & Image of Prithvi / Earth

Stable/Fertile

Address as Mother

Akasa and Prithvi kiss the center of the world .

With Hidden Treasurers

To Posses

Gold in her heart

Earth is also bears Fire

Earth's Personification as Cow

Vishnu rescues her from the Water and also marries her

By granting life to the earth ,Prithu was her father

According to Jainism Earth has seven regions or loks above it

Karimbhumi, bhogbhumi,sidhibhumi

Shriyantra – Outer square called “bhupure”

Buddhist explains the term eight stations

Bhumisparsh Mudra

The Bodhisattva is called “Lord of the ten stages”

The Cosmic water grow a thousand pateleed Lotus of pure gold

Cosmic Lotus with their generative organ

Idea & Image of Water / Ap / Jal

Agent of Purification

Element giving life and fullness

Symbolized in Purnakumbha/ Vase of fullness, contain the waters of life and immortality.

Function : purification, viserjan, poorn

Bhavsagar [ocean of existence]

Kalasha : patra of cosmic water under earth in which the world tree is rooted

Water is particularly shown by two symbolic forms : The Lotus and The Kumbha or Kalash

Vedic cosmology which begins from water Kumbha at the bottom and Kalash on top complement each other

Seed and creeper related to the fertile world

The Gaja – Laxmi motif – Goddess Laxmi flanked by two elephants pouring water on her

Elephants represent the Clouds

Crocodile/ Makar is represented water and Vehicle of Ganga

Tortoise is vehicle of Yamuna

Water drains [nala and pranala], pot shape water drain, crocodile face through water

Matsya/ Fish :Matsya Avtar of Shri Vishnu Churning of the ocean/ Samudra Manthan

Shri Vishnu is lying on the world ocean on the Serpent/Shash Nag

Saraswati is with clouds and producing rain

In Fine – Arts, Ras : Central term in Indian Aesthetics

Watery element ; Jala Murti of Lord Shiva

Creeper of seed of creation involved in the production of the drama of the world

Seat of the Gods and Goddess because it floats above the muddy like physical world in which it rooted.

Tantric flower : Lotus

The seed (bindu) and the flower together reflect never ending [Infinity]

Seed to flower and flower to seed

Lotus flower also represent the Yoni.

The Goddess Padma is made of gold or golden hue

Beautiful express as Lotus Feet, Lotus hand; Lotus eyes etc.

Bodhisattva Padampani [Lotus in hand]

Idea & Image of Agni / Fire / Jyoti / Tej

Originate from Vayu / Wind
 Central position among the five element
 Fire GOD, The Divine agent, mediator
 Construction of Fire alters [Vedi, Kunda, Agnichayana]
 Power of vision and motor organ of speech [vac]
 Fire is concrete but its brightness is abstract
 Some times hiding in waters and plants
 Illuminating [prakash] is one of the chief characteristic of Agni
 Ritual Agnimanthan – Fire is generated from the fire sticks
 Sami tree is related to fire
 Form of a horse, Agni enters in to the asvattha tree [ficus –
 Religiosa]
 Door to Brahman and substance of delight
 Energy and power
 Quality of Agni: Lavanya /Pearl like luster
 Circle of Light: Prabhamandal, Prabhavali ,Prabha
 Glitter of Gold ,Jewels, Precious stones[sattva guna]
 Instrument of knowledge /pramana and Object of knowledge /
 pramay
 Sun: Form of a horse –sun rays [The Light in the Sun]
 Main Authority of the knowledge of fire is Sandilya
 Head of the Vastu-Purush according to Vastu Shastra
 Agni-Cayana;Pilling of the Fire
 Performer of Agni Cayana [attains immortality after separating from
 the body]
 The alter is built a large number of bricks : often shape of flying
 [toward – heaven]
 Human Image : Golden, flaming hair and beard ,three/seven tongues
 Two heads, seven arms, three legs, with He – Goat or a Ram, some
 time Bull [Agni's connection with Rudra – Shiv]
 Bhairav should meditate on Fire as the seed, bring it down
 Idea and image of Vayu / Air / Wind / Marut / Pawan
 Vayu and prana are related as the macro microcosmic aspects
 Vayu as the god of the wind is one of the vasu

A king of the gandharvas , the fourth watch of the day [muhurat] ,
the north -west Quarter symbol of dynamism and freedom of movement

Oblique lines principal of movement and activity

Associated with two tanmatras sabad and sparsh

Sound and touch

It is invisible but it can be perceived by the ear and touch

In the arts, vayu plays a role in the production of sound in music.

As a symbol of dynamism it is the principal of movement in dance
and in Sculpture. samiramurty of shiva [playful movement]

Dakshinamurty is represented here in the act of breathing in with
expanded vest.

It is inseparable from its counterpart, prana, the vital breath

[Anahat chakra ya bija for wind]

Images which appears to be full of prana ,without showing muscles.

Modes of visualization for they are aware that all joints are joint with
breath

Vayu is the god who reigns over the mid space [antariksha],
who is life energy spiritual power

The soul or life of the Gods, the life germ of the world

Vayu and other maruts are often said to move in the air on swift cars
[chariot] drawn by horses

A medicinal tree [laksa] is addressed , saying that its soul is wind

A shell bearing the precious pearl is called child of the wind

The life giving and healing power of vayu is seen specially in its relation
with prana.

Ability to absorb moisture, perceptibility to sense of touch, speed and
motion

Existence and the properties of maya and akash also.

It cast no shadow and is cold

Personified as a man; vata is the gandharva : his apsaras are the
waters

The image of vayu should be made seated on a deer, smoky in

Complexion, nicely dressed looking young

One of the symbols of movement in indian tradition is the hansa,

the goose or Swan which also stands for the freedom of the ascetic or jivanmukta.

A hansa is shown with a creeper like tail [hence called hansalata]

Spiritual masters and heroes are sometimes called paramhansa.

Idea and Image of Akas / Space / Ether / Vyoman

Akasa – to shine, to be visible

Vyoman – to protect

Sunya – a zero

Cavity of the heart

Kha central hole of a wheel

Center of the wheel of creation and dissolution

Shape of akash – circle

Images starts with the circle

Drawn around the centre [which symbolizes brahma]

The symbol of akash – aakash ling (shiva)

Conch / shankh [vishnu holds in his hand a conch]

Man with characteristic of ether becomes proficient in fine arts

Abdul Salam Khan
Research Scholar
Mewar University

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

SATISH CHANDRA'S (A Magician of light and Shades & Dignified persona)

Satish Chandra was one of the most renowned landscape painters in India. Such was his confidence in his art, and his love for Nature, that he devoted his whole life to painting landscapes. In the end, he acquired a reputation second to none on the Indian art scene.

He was the true artist of India's northern plains, and as special, gentle and dignified a person as his art was uplifting.

He rejected the traditional approach to landscape painting and instead of copying old masters he had been learning the nature itself. He observed variations of color and light caused by the daily or seasonal changes.

Satish Chandra is known chiefly for the evanescent aspects of his landscapes, his innovative use of air, light, and color-factors that have prompted critics often to ignore other aspects of his art, such as content, composition, and floral relevance. By blending biography with critical studies of specific paintings, one can show how Satish Chandra challenged landscape conventions by complicating them, mingling creative landscape imagery to idyllic nature scenes and showing the effects of the dense forest and northern plain scenes.

He began his career painting nature scenes and learned how to paint in plain air, how to recognize subtle changes in weather and lighting conditions, and how to incorporate contemporary developments, such as

But real artistic growth depended on his further exploring what came to be known as his iconic style of paintings which included wider, more obviously painterly brush strokes, brighter color contrasts than the Salon judges deemed customary, evanescent lighting effects, and the inclusion of

natural subject matter.

Satish Chandra displayed an evident evolution in his painting style throughout his long career. Though he stayed true to the genre of landscape, as his career progressed he began to pay less attention to the details of objects and landscape and more attention to the effects of light and color.

He became increasingly fascinated with natural and atmospheric elements.

As time progressed he paid less attention to specific details and more to atmospheric quality created by the natural elements, such as the sun, trees, mountain, village path way, water lily etc.

Satish Chandra's each stroke is clearly articulated and related to other strokes to form intricate smaller compositions within the larger whole. It is the forceful, clearly defined brushstrokes, more than qualities of shape or aspects of composition, that give these paintings a vibrate life.

The irregular perimeter of these paintings lends a dynamic quality that the ordinary rectangle, whose function is to contain the gaze, can never have.

To this end he uses color as the dominant unifying force, making it weave across and dissolve his canvases' internal divisions. Paint applied with a flat brush, drawn sideways, produces brushstrokes that are like stitches forming the basic fabric of the painting. His palette tends toward strong, fully saturated, high-keyed color, with complementariness playing off each other to generate greater vibrancy; requisite landscape greens are countered by a range of reds, pinks, and violets, and wherever blue appears, orange is not far away.

Satish Chandra's landscapes embody a sense of imminent change, through a shifting light and strong imprint of season and time of day.

He has brought a new dynamic into landscape painting, reinvigorating it in ways suited to a contemporary sensibility. Confronting these works no one can think this age-old subject has not been exhausted, nor that easel painting has run its course. Satish Chandra has achieved an exciting new synthesis, one which manages to break out of the traditional canvas confines,

not to satisfy an arbitrary need to invent but out of a need to register a wide arc of visual stimuli, to replicate both the dynamic of seeing and the dynamic of an ever-changing visual field. His paintings tantalize the mind through the tensions between the elusive image and the articulated painting process, at the same time as they delight the eye through sensuous color and verve of paint application.

In this country we are blissfully aware of Satish Chandra as a landscape artist as par- excellence.

His dazzling in water colour, assured and masterly in panorama and still surprising when he let rip with those instantly recognizable impasto passages which dissolve form and create luminous whorl. The usual soft, whitened chrome yellow and cadmium yellow is everywhere as are the trademark blue-brown ensemble.

The Satish Chandra paintings form a precious and outstanding archive of the contemporary landscape of modern decade. Satish Chandra was also known various name like

Master of Atmosphere's:

Satish Chandra was one of the most renowned landscape painters in India. He was more confidence enough in his art, and love for Nature,

He devoted his whole life for painting landscapes. In the end, he acquired a reputed title 'Master of Atmosphere'.

Gentle & Dignified personality:

Satish Chandra was the true artist of India's northern plains, and as special, gentle and dignified a person as his art was uplifting.

Revival of traditional approach of landscape Painting:



Figure 1.OIL ON CANVAS

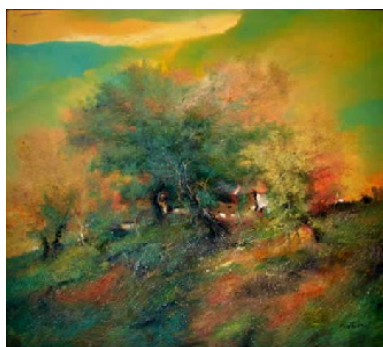


Figure 2.OIL ON CANVAS

Satish Chandra rejected the traditional approach to landscape painting and instead of copying old masters he had been learning the nature itself. He observed variations of color and light caused by the daily or seasonal changes.

As Innovative User:

Satish Chandra is known Chiefly for the evanescent aspects of his landscapes and his innovative use of air, light, and colour factors that have prompted critics often to ignore other aspects of his art, such as content, composition, and floral relevance.

Creative Landscape:

By blending biography with critical studies of specific paintings, one can show how Satish Chandra challenged landscape conventions by complicating them, mingling creative landscape imagery to idyllic nature scenes and showing the effects of the dense forest and northern plain scenes.

Magician of light and Shades:

Satish Chandra began his career painting nature scenes and learned how to paint in plain air, how to recognize subtle changes in weather and lighting conditions, and how to incorporate contemporary developments, such as the dramatic



Figure 3.OIL ON CANVAS



Figure 4.OIL ON CANVAS



Figure 5.OIL ON CANVAS

effect of light and shades.

Iconic Style of Painting:

Real artistic growth depended on his further exploring what came to be known as the his iconic style of paintings which included wider, more obviously painterly brush strokes, brighter color , use of turquoise blue, cadmium yellow, sap green and evanescent lighting effects, and the inclusion of all natural subject matter.

Conclusion:

Satish Chandra occupies a unique position in the realm of Indian art. Apart from being a accomplished painter with a distinctive visual diction, he has also been instrumental in shaping the art milieu of northern plain. This dual facet is the axis of the research.

Threading the different phases of Satish Chandra's art chronologically, it highlights the artist's abstracted vision.

Despite the realistic connotations, his art successfully sculpts away the apparent references to the objective world to evoke a multiplicity of meanings. The polyphonic value is the result of his abilities as a colourist and skill to strike the right note through a flawless symbiosis between form and content.

His art work an imagined experience, rather than annotations of the temporal world. Meditative and classical, his art also reflects contemporariness, a distinctive fusion that encompasses many of the trials and tribulations of our modern era, albeit in a measured accent.

The narrative also underlines the legendary role of Satish Chandra in creating interactive platforms for artists across the country. His invaluable contributions in shaping the aesthetic values Landscape. Interposed with anecdotes and analytical insights, this research portrays the persona of a reticent artist, whose paintings and exemplary social role continue to inspire art lovers across generations.

I personally go through a biography title "The Master of Atmosphere's" on satish by his soul mate meenakshi Chandra. I visualize the theme of his work and try to understand the source of inspiration behind his creation. In this whole processes my guide Dr. Saroj Bhargava, an art expert from

De. Arunna Gogania
Lecturer
Pt. N.K.S. Govt. P.G. college,
Dausa

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

JAINA CONTRIBUTION TO ART AND ARCHITECTURE

Jaina contribution to art and architecture is not only unique but also substantial in terms of both quality and quantity. We may notice in the Jaina artistic creations of Dharwad region like in other regions, a deep commitment to Jaina Dharma, of course, without sacrificing its inherent aesthetic appeal. In other words Jaina art and architecture of Dharwad region significantly reflects the philosophical and religious attitude as well as cultural aspirations of the people. It is in this sense that it is stated “Arts is the handmaid of religion”. Its growth depended on the ritual needs of the developing creed in the early and medieval period. The Jaina basadis, like the temples of early medieval period in Dharwad region, were also centres of the five-fold activities of worship, feeding, medical care, shelter and education. They had to be therefore, quite large and beautiful enough to attract large number of devotees and other people. In other words, they had to foster the religious fervour of the people by the ritual worship of the icons.

Though it is difficult to conceive the idea of the exact origin of early medieval Jaina artistic or architectural creations, they do not pertain to and can be isolated from the mainstream of Hindu art and architecture. The special religious and mythological concepts of Jainism did produce architectural as well as sculptural forms which ofcourse conformed to the style of the regions and of the period to which they belonged. The Jains probably did not go out of the main track of artistic and architectural evolution in Karnataka. But still their contribution to art and architecture is rich and concrete.

The sculptural disposition on the walls, particularly the miniature figures, indicate the Jaina religious sect, sometimes even in the case of the subsequently converted temples. Thus some of these conspicuous architectural features may be regarded as the distinct Jaina contributions to art and architecture.

It is in the early medieval period that the Jaina building activities increased considerably. That Jainism was an influential and powerful force for more than ten centuries in different parts of northern Karnataka, is evidenced by Jaina art and architecture. Since the Jains were among the foremost patrons of religious architecture, many guilds of the silpis worked for Jaina foundations.

Though the Jaina art in Dharwad region, like in other parts reflects essentially the trends of the art pool of Brahmanical architecture through the ages, we may notice certain salient features.

Architecture

The Jaina temples are popularly called basadis or bastis, Jinamandira, jinagriha, jinalaya, chaityalaya, chaitya, etc., are the other names for them. Some of the architectural and sculptural features may be identified in the standardised form which got evolved through experiments and experience. The technical terms are also derived either from classical text or from the form and style cultivated by an age, a ruling dynasty or people at large.

The architecture of jaina bastis in Dharwad region is in tune with the contemporary style of Dravidian or Dakshinathya variety in stone. Sometimes, the dynastic name like Chalukya, Rastrakuta, kalyana Chalukya may also be applied to. In other words, jaina temples built during the ruling dynasties or adopting the typical features of the contemporary temple architecture are named after them.

The architecture of Jaina basti may be studied in terms of exterior and interior parts. Generally speaking, both the exterior and the interior of Jaina bastis are comparatively plain and not too much decorated architecturally and sculpturally. A typical Jaina basti may be divided into different sections or component parts like garbhagriha, antarala, navaranga mandapa, mukhamandapa and manastambha at the entry point.

The Dvarabandha (bagilavada) with dvaralalatabimba, sakhas bhuvaneshwari both deep and domical and flat, 'order' or arrangement of pillars both simple or plain as well as lathe-turned and decorated, kaksasana in the navaranga-mandapa are but a few component parts of the interior.

The exterior wall generally consists of three sections: adhisthana or

basement which is the lowermost part, bhitti (the middle part) with the chajja or eave and parapet (upper part). it is on the exterior of these parts that we notice sculptural representations.

The sikhara over the garbhagriha is either single storeyed or double storeyed. This appears to be an innovative practice continued by the Jains, by making the first tala of the sikhara into a shrine as evidence by Sankha jinalaya at Lakshmesvar and Brahma jinalaya at Lakkundi. The style or form of this important component of the basti is mostly Vesara or Chalukyan like that of other contemporary Brahmanical temples.

The jinalayas are built of wood, brick and mortar, granite, schist or laterite. These materials have also influenced the nature and style of Jaina art. In so far as Dharwad region is concerned most of the existing jinalayas of early medieval period are built of Dharwad schist locally available in plenty and conducive to minute carving work of the skilled artists. The Jaina bastis generally are faced by free standing pillars called manastambhas. The chaumukha Jina or four Jina images facing four directions are found in the small mandapa on the top of this manastambhas. The manastambhas, sometimes, are replaced by low, round or square stone structures and they are called mandaras or balipithas. The enclosure around the Jinalayas, is called parisutra or paridhi or parvestha.

With all these influential factors it can be construed that the Jaina art and architecture of Dharwad implies what is built or constructed within the framework of Digambara Jainism. In no other Digambara Jaina zone in northern Karnataka, do we have as many jinalayas as in Dharwad region.

It is against this backdrop that the select Jaina bastis and icons associated with them many be briefly reviewed:

1. Of the structural Jainalayas of the Badami Chalukya period, the Sankha basti built at Lakshmesvar appears to be the earliest in Dharwad region. A jinalaya at Annigeri built by Kaliyamma, the jinalaya at Hallur, and another jinalaya built by Dharmagavunda at Adur (Hangal taluk) also belong to the Badami Chalukya period.

The Sankha basti at Lakshmesvar is a complex structure and it is dedicated to Tirthankara Neminatha: Sendraka Durgashakti, a feudatory of

Pulakesi-II is said to have given gifts to the basti. It is therefore probable that the original jinalaya was at least contemporary to Meguti jinalaya of Aihole. Many more inscriptions of the place, point out its importance in the Badami Chalukya period. Sankha jinalaya, Dhavala jinalaya, and Dansale attached to them are referred to in the local inscriptions of this period.

2. A Jaina basadi at Konnur (Nargund taluk) on the right bank of malaprabha was built by Bankeya or Bankesha or Kalanura, an important subordinate ruler under Amoghavarsha I in 860 A.D. Its mukhamandapa is smaller than the twelve pillared sabhamandapa which is most squarish. One of the most distinct features of the Jinalaya is the stellate plan of the circular type of the garbhagriha which again forms a unique feature. This has been converted into Parameshvaralaya in the subsequently period.

3. A jinalaya at Naregal (Ron taluk) was built during the period of the Rastrakuta king Krishna III by Padmabbarasi, the queen of Ganga Permadi Butayya in 950 A.D. (It is now called Narayana temple). It is a trikutachala with three garbhagrihas, an antarala and sabhamandapa. It has a Dravida vimana sikhara over the main square garbhagrihas. The other two garbhagrihas which are rectangular have pedestals from wall with twenty four sockets, obviously for fixing the twenty four Tirthankara images in a row. This is a unique feature of this basti.

4. It is in the Kalyans Chalukya period that we find the largest number of jinalayas built in Dharwad region. The Chalukyas of Kalyana were great builders who brought out many innovations and unique components of the structures. The Jaina basadi building efforts went through more or less the same stages of growth and development as that of the Brahmanical Jainism never the less maintained its entity by taking recourse to certain iconographic specialization which obviously called for a distinctive layout.

The most important jinalayas of the Dharwad region are Brahma Jinalaya at Lakkundi and Sankha jinalaya (it was renovated and expanded in the Kalyana Chalukya period) and Ananthanatha basti at Lakshmesvar.

The large jinalaya at Lakkundi is typically Kalyana Chalukyan in style where subordination of architectural features to the over all decorative ensemble dominated by vertical elements, has already begun. Long thin

pilasters and niches crowd the exterior wall. The sikhara begins to break up on plan, into recessed plane on each of the four sides. The niches turn into mere decorative features. The effect is of an assemblage of innumerable small vertical blocks of masonry. Pillars are lathe-turned. With all these features this jinalayas of the eleventh century is still recognizably Dravidian-Chalukyan in character though considerably improved in detail. The exceptionally high storey above the main cornice of garbhagriha contains the upper, second garbhagriha which is a unique feature in Jaina architecture.

The mouldings of adhisthana are plain and square cut except for a wide and chunky vyaka frieze and a thin and sharp kumuda. Originally built by Danachinatamani Attimabbe, the imposing Brahma jinalaya represents a stage in the development of Jaina architecture in chloritic schist of early medieval Karnataka. The stone has influenced its masonry, size as well as sculptural are. An over 13 metre high sikhara which rises some-what steeply in three storeys looks like a Chalukya chaturasra sikhara with a sukanasa. Its mukhamandapa is quite spacious having entrance from east, south and north. It is really an architectural gem among the jinalayas of the region.

Of the many jinalayas of Lakshmesvara the famous Sankha jinalaya as it stands today indicating multi-stage of renovation, consists of a garbhagriha, a large antarala, a spacious mahamandapa and rangamandapa or sabhamandapa. It has three entrances facing north, south and west. In the mahamandapa is installed a chaturmukha votive structure in the form of a rekhanagara sikhara in miniature. The unique feature lies in the fact that it has sahasrakuta Jinabimba in tiny form. Another special feature of the basti is that it has an upper storey in which is consecrated an image of Tirthankara. Equally unique are the multipetalled chajja and jalamdhras of mahamandapa. Through renovated unsystematically, it represents a rare gem of architecture and stands as a testimony to the glory that was Jaina architecture of the Chalukyan period, both early and later, with a manastambha in the outer court. Even in the utter desolation, the Sankha jinalaya presents a garandeur befitting its famed role from the 6th to the 13th century. The Ananthanatha jinalaya at Lakshmesvar is a typical trikutachaka with phamsana sikhara of the Kalyana Chalukyan style. It is also a large structure of Dharwad schist known for the Kalyana Chalukyan features of the late 12th century A.D.

Anesejjeya basadi, Tirtha basadi, Mukkara basadi, Goggiya jinalaya, Gangskandarpa basadi, Ganga Permadi chaityalaya (permadi basadi), Raya Rachamalla basadi, Srivijaya basadi, Marudevi basadi, Dhvala jinalaya and santinatha basadi are some of the jinalayas found mentioned in the literature and epigraphs of Lakshmesvar. They are all probably ruined and not traceable at present.

Similar is the case with many Jinalayas in Dharwad region. Some of them are renovated in later period. Samyaktvaratnakara chaityalaya (now called Adinatha basadi) along with natakasale at Mugad (Dharwad taluk), Parsvanatha basadi at Gudigeri (Kundgol taluk), Dhors Jinalaya (now called Santhinatha basadi) at Chabbi (Hubli taluk), Anathanatha jinalaya at Halehubballi, Parsvanatha and Chandranatha basti at Mulgund (Gadag taluk), Baladeva jinalaya at Soratur (Gadag taluk), Brahma jinalaya (now called Chandranatha basadi) at Yelavatti (Hangal taluk), etc., are but some of the examples of later renovations of earlier experiments in the Kalyana Chalukya style.

Sculptural Art

Like architecture, the jaina sculpture is also characterised by certain salient features. The object of worship in Jaina bastis is normally one of the Tirthankaras. The iconography of Tirthankara is as simple as the very concept of deity. Each of these Tirthankaras is attended by Yaksha and Yakshi who have distinct names, attributes, vehicles, and roles and they are highly decorative and varied.

It is in the field of bronzes and paintings that we notice the richness and variety. The spiritual glory is reflected in the Jaina art and architecture in general and painting in particular.

Though simplicity and serenity constitute the hallmarks of the Jaina art, it is also an expression informed by ideal beauty. Jaina contribution to sculptural art is rich and more varied than architecture. Jaina sculpture in round, relief and those that combined the characteristics of both these and stand midway between them are found in different parts of Dharwad region. We have also discovered some interesting sculptures in such places as Bada (Kalyana), B.Shigikatti and Budarsingi. Some of these images represent the

extraordinary achievement of the local artists in the field of Jaina sculptural art along with the unique regional elements.

Jainism took a lead in image making and image worship. The classical Kannada literature as well as art afford basic source material for Jaina iconography. Massive stone sculptures of Tirthankaras known as sasavata pratimas were consecrated in the garbhagriha of the Jaina basti. In addition to them the kautuka, utsava and abhishekha bimbhas or bheras in metal were also set up in the basadis. Most of them are invested with great qualities of Jina.

According to Jaina canons of art, the Tirthankaras are to be carved either in the sitting or in the standing posture. They are not to be attributed with any ornaments. In the sitting posture the Jina crosses his legs and places his two hands with palms upturned on his heels. He is not even allowed to turn his face either to the left or to the right. This rigid yogic sitting posture is called paryankasana. In the standing posture Jina's feet are placed evenly and his hands are hung on either side of his thighs without touching them. No flexion in his body is permitted. This standing meditative posture is called kayotsarga. Thus all the twenty-four Tirthankaras have identical features. Only the first Tirthankara, Adinatha is shown with long hair which sometimes spread on his shoulders. Only Suparsvanatha, the seventh Tirthankara and parsvanatha, the twenty-third, are endowed with serpent canopies. Each of these Tirthankaras is attended by a Yakshi and Yakshi who have distinctive names, attributes and roles. The names of Tirthankaras, their lanchana, attendant Yakshas and Yakshis, place of birth and Nirvana are given below :-

1. Rsabhanatha or Adinatha; bull; Gomukha; Cakresvari; Vinitanagara; (Digambara) Kailasa or (Svetambara) Astapada.
2. Ajitanatha; elephant; Mahayaksa; (Dig.) Rihini or (Sve.) Ajitabala; Ayodhya; Sammedasikhara.
3. Sambhavanatha; horse; Trimukha; (Dig.) Prajnapti or (Sve.) Duritari; Sravasti; Sammedssikhara.
4. Abhinandanatha; ape; (Dig.) Yaksvara or (Sve.) Yaksha Nayaka; (Dig.) Vajrasrnkhaka or (Sve.) Kalika. Ayodhya; Sammedssikhara.
5. Sumatinatha; heron; Tumburu; (Dig.) Purusadatta or (Sve.) Mahakali;

Ayodhya; Sammedssikhara.

6. Padmaprabha; lotus-flower; Kusuma; (Dig.) Manovega or Manogupta or (Sve.) Syama Acyuta; Kausambi; Sammedssikhara.
7. Suparsvanatha; (Dig.) nandyavarta or (Sve.) svastika; (Dig.) Varanandin or (Sve.) Matanga; (Dig.) Kali or (Sve.) Santa; Varanasi; Sammedssikhara.
8. Candraprabha; (Dig.) half moon; (Dig.) Vijaya or Syama or (Sve.) Vijaya; (Dig.) Jvalamalini or (Sve.) Bhrkuti; Candrapuri; Sammedssikhara.
9. Suvidhinatha or Puspadanta; alligator; Ajita; (Dig.) Mahakali or (Sve.) Sutaraka; Kakandinagara; Sammedssikhara.
10. Sitalanatha; (Dig.) svastika or (Sve.) srivatsa; Brahma or Brahmesvara; (Dig.) Manavi or (Sve.) Asoka; Bhadrapura; Sammedssikhara.
11. Sreyamsanatha; rhinoceros; (Dig.) Isvara or (Sve.) Yakset; (Dig.) Gauri or (Sve.) Manave; Simhapura; Sammedssikhara.
12. Vasupujya; buffalio; Kumara; (Dig.) Gandhari or (Sve.) Canda; Campapuri; Campapuri.
13. Vimalanatha; voar; Sanmukha; (Dig.) Vairoti or (Sve.) Vidita; Kampilyapura Sammedssikhara.
14. Anantanatha; Falcon; patala; (Dig.) Anantamati or (Sve.) Arikusa; Sammedssikhara.
15. Dharmanatha; vajra; Kinnara; (Dig.) Manasi or (Sve.) Kandarpa; Ratnapuri; Sammedssikhara.
16. Santinatha; vajra; Kinnara; (Dig.) Kimpurusa or (Sve.) Garuda (Dig.) Mahamanasi or (Sve.) Nirvani; (Dig.) Hastinapura or (Sve.) Gajapura; Sammedssikhara.
17. Kunthunatha; goat; Gandharva; (Dig.) Vijaya or (Sve.) Bala; (Dig.) Hastinapura or (Sve.) Gajapura; Sammedssikhara.
18. Aranatha; (Dig.) tagara-flower or fish or (Sve.) nandyavarta; (Dig.) Kendra or (Sve.) Yaksendra; (Dig.) Ajita or (Sve.) Dhana; (Dig.) Hastinapura or (Sve.) Gajapura; Sammedssikhara.
19. (Dig.) Mallinatha or (Sve.) Malli a woman; pitcher; Kumbara; (Dig.) Aparajita or (Sve.) Dharanapriya, Mithaila; Sammedasikhara.

20. Munisuvrata; tortoise; Varuna; (Dig.) Bahurupini or (Suv.) Naradatta; Rajagrha; Sammedssikhara.
21. Naminatha; blue lotus; Bhrkuti; (Dig.) Camundi or (Suv.) Gandhari; Mithila; Sammedssikhara.
22. Neminatha; conch-shell; (Dig.) Sarvahna or (Sve.) Gomedha; (Dig.) Kusmandini or (Sve.) Ambika, Sauriyapura; Girinagara.
23. Parsvanatha; snake; Dharanendra; Padmavati; Varanasi; Sammedssikhara.
24. Vardhamana Mahavira (Nataputta or Natiputta); lion; Matanga; Siddhayika; Kundagrama; Pavapuri.

The object of worship in jinalayas found in Dharwad region, is normally one of the chaturvimsati Tirthankaras. Some jains temples dedicated to attendant deities like Padmavati and Jvalamalini are referred to in inscriptions. A record from Javur in Dharwad district, reveals the existence of a basadi of goddess Jvalamalini at Navalgund. This testifies to the prevalence of worship of goddess Jvalamalini among the followers of the faith in the Kannada country and shows that even individual temples were erected in her name. The gradual growth of the status of Yakshis in Jainism of the region is equally interesting. That the Yapaniya sect popularised the worship of Jvalamalini with supposed tantric elements of the early medieval period, is evidenced by local epigraphs. Jvalamalini and Padmavati cults seem to have been established in Karnataka by influential teachers like Indranandi, Yogindra and Mallishena Suri who systematised the occult lore through Jvalamalini kalpa and Bhairava Padmavati Kalpa. Padmavati, the Yakshi of Parsvanatha is the most popular and another widely invoked Goddess in Karnataka. Thus the Jaina preceptors preached and practiced tantric worship and rites including alchemy.

The Jaina Yakshas and Yakshis are represented in the sculptural art of the region in different styles. They are well decorated with rich ornaments and their hands are attributed with weapons and they are known for their elegance, beauty and majesty. In other words what is not found in the sculptural representations of Tirthankaras is very much compensated by the artist in these images of Yakshas and Yakshis. It is from the evidence provided

by Yakshas and Yakshis along with respective cognizance and vahanas that we are able to distinguish one Tirthankara from another.

Of the numerous Jaina Tirthankara images of Dharwad region, some sculptures are known for their exquisite conception and execution. They may appear primitive at first sight because of the seeming inexpressive attitude. But upon contemplation, their spiritual grandeur will become evident and some of the ideals of auspiciousness, prosperity, spiritual wealth and royal splendour found a direct outlet in the Jaina sculptor's art. Adinatha of Lakshmesvar, Rishabanatha at Amminabhavi, Parsvanatha at Sighikatti and Tirthankara images at Gudigeri, Budzrasingi, and Halehubli are but a few examples of Jinabimbas absolutely self-contained in kayotsarga pose with a strange timeless calm on the countenances.

The metal images of Tirthankaras and Yakshis represent another interesting contribution by the Jains of this region. Metal icons and votive tablets for ritual requirements on the one hand and for enriching the beauty and sanctity of jinalayas on the other, were commissioned by the patrons. Sometimes the excessive difference to technical rules and prescribed formula in the casting of metal images resulted in their rigid pose tending to be uniform in style and rather dull aesthetically. However some of the metal images from Lakshmesvar, Amminabhavi, Lakkundi are known for their elegant proportion, flowing-lines and serenely contemplative facial features.

Some inscribed Jina images are found in Dharwad region in recent years. Two Tirthankara images from Muttagi of 12th century A.D., one Parsvanatha in kayotsarga posture, another smaller image of Neminatha in the same posture, Chaturmukha Jinabimba from Bada of the early medieval period and Parsvanatha image of B.Shigikatti, Budarsingi may be mentioned as some of the noteworthy discoveries.

Two Tirthankara images collected from Lakkundi, one Parsvanatha image from Amminabhavi, and a Brahmadeva image secured from old Hubli are some of the collections in the Kannada Research Institute (KRI) museum, Dharwad. They are also known for their elegance representing the sculptural art of the early medieval period. Among the Jaina sasana devatas of Dharwad region, Kubera, Yaksha of Mallinatha from Lakkundi museum,

Dharanendra Yaksha from Annigeri are but a few examples which represent a class of semi-gods with semi-divine attributes.

Even though the jinalayas on their exterior walls generally do not consist of many relief sculptures as in the Brahmanical temples of the early medieval period, we do notice some bas-reliefs at Lakshmesvar. The Sankha jinalaya on its Kakshasana contain some of the erotic sculptures of socio-religious significance. Similarly the Nishadhikas, inscribed or uninscribed of Dharwad region represent the contemporary Jaina Yatis and devotees in sallekhana. We have an example of Ganga Marasimha who died at Bankapur, but his death was commemorated at Sravanabelagola, a renowned Jaina centre.

In spite of the fact that most of the nishidhi memorial stones invite limited artistic interest, they reveal the socio-religious significance or activities of persons and also of places where monks, householders, housewives etc. breathed their last or where their last remains were consigned to flames. Some nishidhi memorial inscriptions remind us of the austere living of Jaina monks and also their sallekhana rites. Such monuments idealize the spirit of non-attachment or high standard of detachment, forbearance, self-restraint and mental equipoise at the critical hour of samadhi marana. Some of the inscribed nishidhi monuments at Balur, Yelavatti, Hirekonati, Hireanaji, Lakshmesvar, Sangur, Kalkeri, Savanur, Kadkol, Aladageri, Tilavalli, Morab, Balehalli, Mantagi, Neglur, Motebennur, and Hediya glorify the saints, Sravakas and sravikas who faced the sallekhana or voluntary death piously and solemnly.

Though we do not find so far any ancient Jaina image made of stucco, an epigraphical reference as mentioned in Kadalur (Dharwad) plates refers to the worship of stucco figures and painted images to which a gift of twelve villages was given by king Marasimha III in 962 A.D. The text of the inscription read as follows :

“Svakiyambika Kakkabbarasi Karitasya Jainalayasya
Sudha Chitra Chitradi pujardham munijanebhyas
chatur vidha danardham cha”

Another distinction of Jaina art is to be noticed in the field of painting. They are of artistic, historical, mythological and socio-cultural significance

as evidenced by the famous Dhavala manuscripts.

Thus the art forms created and patronised by the Jains of Dharwad region, be it architecture, sculpture or painting tended to be austere, but aesthetically appealing. With its own ascetic outlook and abstract approach, the Digambara Jainism of the region has its own share of contribution, rich in variety and distinctly regional in style. The patrons of artists of the Kalyana Chalukya period were at their best with Lakkundi and Lakshmesvar as some of the great centres of Jaina religious art. Having geographically bridged the upper and lower Deccan, the Kalyana Chalukyas not only practised both *Auttareya* and *Dakshinatya* styles but got them mixed up and developed a *Vesara* style. It has been in a way, the architectural predilection under territorial and cultural compulsions.

REFERENCES

1. SII, XX, No. 3, 5, 6, 7 and 53.
2. Ghosh, A., *Jaina Art and Architecture*, Vol. II, New Delhi, 1975, pp. 215–17
3. This has survived to the present day.
4. SII, XX, No. 3.
5. *Ibid.*, No. 4, 5 and 6.
6. SII, VIII, No. 12.
7. XII, XI–i, No. 38.
8. Srinivasan, K.R., *Temples of South India*, New Delhi, 1985, p. 154.
9. Ghosh, A., *op. cit.*, p. 310.
10. *Ibid.*, p. 315.
11. *in situ* studies.
12. *Ibid.*
13. SII, XX 3, 4, 5, 6, 7, 46, 244, 245 and 246 also see IA, Vol. XVIII, pp. 37–38: *ARIE* 1945–46, a. No. 49.
14. *IDT*, 56.
15. *in situ* studies.
16. Nagaraajayya, Hampa, *Yaksa-Yaksiyaru*, Bangalore, 1976, pp. 117–43.
17. *in situ* studies.
18. Ghosh, A., *op. cit.*, pp. 14–15.
19. According to the *Svetambara* tradition *Malli* was a female *Tirthankara*. The *Digambaras* are of the opinion that no female was entitled to attain salvation unless she was reborn as man.

20. SII, SV, No. 587.
21. Desai, P.B., *Jainism in South India and Some Jaina Epigraphs*, Sholapur, 1957, pp. 170–73
22. Nagaraajayya, Jampa, *op. cit.*, pp 83–94.
23. *in situ* studies.
24. Recently discovered images.
25. SII, XV, Int. pp. ii–iii; EC, Vol II, int. p. IV.
26. ARISE, 1945–46, A.E. No. 214, 217, 218 and 219.
27. *Ibid.*, 1944–45, A.E. No. 60 and 61.
28. *Ibid.*, 1957–58, A.E. No. 279, 280, 281 and 282.
29. *Ibid.*, 1950–51, A.E. No. 60.
30. *Ibid.*, 1935–36, A.E. No. 6 and also SII, XII, No. 52.
31. SII, XVII, No. 274.
32. ARISE, 1935–36, A.E. No. 72 and also XII, XII, No. 233.
33. *Ibid.*, 1952–53, A.E. No. 51.
34. *Ibid.*, 1933–34, A.E. No. 51.
35. *Ibid.*, 1957–58, A.E. No. 222, 223, 225, and 226.
36. KI, V, No. 39.
37. ARSIE, 1928–29, A.E. No. 239.
38. *Ibid.*, 1947–48, A.E. No. 190 and 191.

Dr. Shashi Goel
Post doctrol scholar of ICSSR
UOR, JAipur
shash07_goel@yahoo.co.in

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

LOKSHABHA ELECTIONS 2014 AND CHANGING TRENDS OF INDIAN POLITICS

The emergence of AamAdmi Party, its landslide victory in the Delhi elections is history now. ArvindKejriwal's victory is nothing short of a Bollywood cinema, where the dreams of a common man waiting for a political change are staged. We have seen quite a good number of arm chair political critics who always criticize the political system and the politicians, yet are reluctant to take up politics in their hands. They have also, so far, like every other, been waiting for a change than braving to be the change. In fact many in the AAP camp wouldn't have imagined that they would be able to gain the public support to such a level.

The stupendous victory of AAP has clearly stated two things. One, people – especially the young India – want a change in the political arena and are ready to stand by the healthy changes in the system. Second, the current political climate seems to favour the long awaited third front. The need for a third front in the Indian polity has always been pondered over and every election season there have been talks about it. As there are no national parties other than the Congress and BJP (though we have the CPI it hasn't emerged out successfully other than West Bengal and Kerala) always the third front is realized as the collaboration of the powerful state level parties.

The AAP's victory has sent shock waves to the Congress and BJP camps and has been a pleasant surprise to many that seems to have kindled a ray of hope among the Indian intellectuals and technocrats. In public opinion politics in India is often compared to sewage system. Finally this victory has motivated

them to fold their sleeves to clean the system. Perhaps the technocrats and intellectuals in India have thought for long that the people are often driven by the glitz of big political parties that they wouldn't render their support to the independent candidates and those from new political parties. Hence they felt their duty gets fulfilled with critiquing politics.

विनिता कु. छीपा
शोधार्थी, चित्रकला विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 4, Pt. B
Sr. 8, 2015
ISSN : 2277-419X

भारतीय कला को अमृता की देन

भारतीय संस्कृति में नवनिर्माण एवं विकास का परिचायक रूप 'नारी' है। पौराणिक युग में नारी रूप-सौन्दर्य, नृत्यकला, काव्यकला और मनोरंजन में ही नहीं अपितु साहस, बुद्धि-विलक्षणता, सहभागिता, सहकारिता और जीवन विकास तथा ह्रास की प्रक्रिया में भी नर (पुरुष) के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना जानती थी।¹ भारतीय प्राचीन संस्कृति में नारी जाति पूजनीय मानी गई है। ऋग्वेद में भी वर्णित है कि यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः। अर्थात् जहाँ नारी जाति का सम्मान होता है, वहीं देवताओं का निवास स्थान होता है। ऋग्वेद के समय में स्त्रियों की दशा ना केवल अपने पति की जीवन-संगिनी थी, अपितु गृह स्वामिनी और अपने पति के धार्मिक कार्यों में हिस्सेदार भी थी। उस समय स्त्रियों पुरुषों की भाँति धार्मिक ग्रंथों एवं वेदों का अध्ययन किया करती थी। अर्थात् भारतीय संस्कृति में सबसे महत्त्वपूर्ण एवं सम्मानीय पद नारी जाति को प्राप्त है। पौराणिक धार्मिक ग्रन्थों में नारी को 'शक्तिपुंज' कहा गया है। भारतीय वैदिक यज्ञ-धर्म-काण्डों में भी नारी की उपस्थिति अनिवार्य बताई गई है। रामायण में वर्णित है कि सीताजी के ना होने पर भगवान श्रीराम द्वारा आयोजित अश्वमेध यज्ञ सीताजी की स्वर्ण प्रतिमा द्वारा ही सम्पन्न हो पाया था। इस बात द्वारा यह संकेत प्राप्त होता है कि धार्मिक क्षेत्र में स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के समान थे। एक स्त्री अपने जीवन में एक पुष्पमाला की भाँति पत्नि, माता, पुत्री, बहन आदि सम्बन्धों को एक माला में पिरोये हुए दया, प्रेम, त्याग, श्रद्धा आदि द्वारा समाज व संस्कृति को सुगन्धित पुष्प धागे में संजोए हुए हैं।

आर्थिक एवं सामाजिक रूप से नारी की भूमिका आज अपनी अलग पहचान बनाये हुए है। वर्तमान परिपेक्ष्य में देखें तो स्त्रियों पुरुषों से भी अग्रणीय है। इक्कीसवीं सदी की महिला-वर्ग प्रत्येक क्षेत्र कला, सामाजिक, आर्थिक,

राजनैतिक, प्रशासनिक, अन्तरिक्ष, खेलकुद आदि में महिला सशक्तिकरण द्वारा अपना वर्चस्व बनाये हुए है। लेखन, शिक्षण, प्रशिक्षण, चित्राकनन, फिल्म, चिकित्सा, शिक्षा, विज्ञापन, संपादन आदि कार्य क्षेत्रों के साथ में आज की महिलाएँ समाज, घर-परिवार की परम्परा को निभाते हुए, पीढ़ी-दर-पीढ़ी वंश की नींव को बढ़ाते हुए अपने अधिकारों के प्रति सशक्त है। परन्तु भारतीय समाज में महिलाओं के आज दो रूप दिखाई देते हैं— प्रथम शक्तिपूर्ण 'सबला' रूप जैसे सुनीता विलियम्स, कल्पना चावला, मदर टैरेसा, सानिया मिर्जा, मेरी कोम, किरण बैदी, वसुन्धरा राजे, लता मंगेशकर, अमृता शेरगिल, अंजली इला मेनन, किरण मुर्दिया, पीलू पोचकानेवाली, मीरा मुखर्जी, ऊषारानी हुजा आदि जिन्होंने भारत देश का नाम गर्व से उच्चा करके अन्य महिलाओं के सशक्तिकरण का स्रोत बनी किन्तु इसका दूसरा पहलू नारी का एक 'अबला' रूप है, जिसमें महिलाओं को सती प्रथा, जौहर प्रथा, पर्दा प्रथा, घरेलु हिंसा, कन्या भ्रुण हत्या, दहेज प्रथा, बाल विवाह, यौन-उत्पीड़न आदि हिंसक कृत्यों से युक्त महिलाएं हैं जो लाख कोशिश करने के बाद भी अपने अस्तित्व से ऊपर नहीं आ सकती। ऐसी महिलाओं के लिए हमारे देश में 'महिला कानून' की व्यवस्था की गई है, जिसके कारण महिलाएं अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती जा रही हैं। वर्तमान के बदलते संदर्भों में आज की महिलाएं घर की चारदीवारी तक सिमित नहीं हैं, अपितु पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में योगदान दे रही हैं। वराहमिहिर ग्रंथ में कहा गया है कि —

नारी त्रैलोक्यजननी नारी त्रैलोक्यरूपिणी।

नारी त्रिभुवनाधारा नारी देहस्वरूपिणी।²

अर्थात् नारी सर्व सम्मानीय, त्रिलोक की जननी है। कला प्रदर्शनियों, प्रकाशनों, संग्रहालयों आदि के माध्यम से समाज तक पहुंचती है, अतः कला एवं समाज एक-दूसरे के पूरक है। कला समाज का दर्पण है एवं कलाकार समाज की अच्छी स्थिति अथवा बुराईयों को फलक पर प्रदर्शित कर मार्गदर्शक का कार्य करता है।³ भारतीय कला के क्षेत्र में देखें तो सशक्त महिला कलाकारों ने अपने चित्रों के माध्यम से नारी जाति के आर्थिक एवं सामाजिक स्वरूप का संदेश दिया है। भारतीय कला के इतिहास में चित्तेरों ने किसी क्रांति या आन्दोलन द्वारा नहीं बल्कि अपने कला सृजन के माध्यम से महिलाओं के विकास एवं

उत्थान हेतु अनेकों प्रयास किये। इस कला क्षेत्र में भी महिलाओं ने पुरुषों के साथ अपना कला सृजन कार्य सुचारु रूप से किया। भारतीय कला के इतिहास में महिला कलाकारों ने चित्रकला, मूर्तिकला, ग्राफिक कला आदि कला क्षेत्र में अपना सृजन कार्य करके महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया है।

भारतीय कला के संदर्भ में प्राचीन काल से अलंकरण एवं चित्रांकन में स्त्री वर्ग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन स्त्री-कलाकारों की महत्वपूर्ण जानकारी हमें पौराणिक ग्रन्थों में प्राप्त होती है। भारतीय उत्तर वैदिक काल में शिवपुराण कथा में वर्णित उषा-अनिरुद्ध के प्रेम प्रसंग में कलाकार सखी चित्रलेखा ने अपनी कल्पना द्वारा कुमार अनिरुद्ध का व्यक्ति चित्र बनाकर अपनी सखी की सहायता की थी। उक्त कथन द्वारा यह सिद्ध होता है कि पौराणिक समय में विश्व की प्रथम महिला कलाकार चित्रलेखा रही होगी। रामायण, महाभारत में भी महिला कलाकारों का बार-बार जिक्र हुआ है, जो उस समय के स्वतन्त्र वातावरण को दर्शाता है। जैसे की रामायण में वर्णित है कि लक्ष्मण प्रिया उर्मिला विभिन्न स्वरूपों की रचना अपनी कल्पना द्वारा किया करती थी। प्राचीन जैन कला शैली में भी महिला कलाकारों ने चित्र सृजन में अपना अमूल्य योगदान दिया है, परन्तु नामोल्लेख की प्रथा ना होने के कारण इतिहास में उनका प्रमाण बहुत कम प्राप्त होता है।

भारतीय कला पक्ष के समसामयिक परिपेक्ष्य में महिलाओं ने आगे कदम रखकर अपना क्रम चित्रकला, संगीतकला, नृत्यकला एवं अभिनय आदि में दर्ज करवाना प्रारम्भ कर दिया। लेडी हैरिंगम तथा मिस आर्चर द्वारा 20वीं सदी के प्रारम्भ में किये गये चित्रण कार्यों के प्रयास एवं 1925 से 1929 ई. के मध्य प्रशिक्षित महिला चित्रकारों में श्रीमती सुनयना देवी, श्रीमती रेणु राय, इन्दु तथा रानी चन्द्रा ने भारतीय पुनर्जागरण युगीन चित्रकला के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। भारत की बिहार की मधुबनी, महाराष्ट्र की वर्ली ऐसी बहुत सी लोक कलाएँ भी हैं जो महिला-कलाकारों के द्वारा विकसित हो रही हैं।

भारतीय कला के क्षेत्र में देखे तो पंजाब की शेरनी अमृता शेरगिल महिला सशक्तिकरण का श्रेष्ठ उदाहरण है। एक महिला होते हुए भी इन्होंने मात्र 28 वर्ष की आयु में अपना कला सृजन कार्यों द्वारा सशक्त महिला रूप में एक आदर्श महिला बनी। भारतीय कला जगत में इन्होंने अपने चित्रों के माध्यम से नारी जाति के आन्तरिक सौन्दर्य को विभिन्न अवस्थाओं में चित्रपट पर प्रस्तुत

करने का प्रयास किया एवं इसी कारण आधुनिक भारतीय चित्रकला के इतिहास में अमृता शेरगिल को 'मील का पत्थर' कहा जाता है।⁴ इनके चित्रों में रंग विधान की नवीनता, चमक और रंगों के अत्यधिक बल या विविध रंगते, भारतीय चित्रकला के लिए एक नवीन अध्याय है।⁵ विदेश में शिक्षा लेने के बाद भी भारतीय जन-जीवन एवं भारतीय नारी के प्रति इनका विशेष आकर्षण था। यही कारण था कि बुडापेस्ट (हंगरी) में जन्मी (30 जनवरी, 1913) अमृता ने भारत में आकर यहां के अभावों से युक्त जन-जीवन को देखा तो उनका संवेदनशील कलाकार मन महानुभूति से सरोबार हो गया।⁶ इनके पिता भारतीय सिक्ख थे एवं माता हंगेरियन (हंगरी) ओपेरा की सुप्रसिद्ध कलाकार थी। पाँच वर्ष की आयु में ही अमृता ने अपनी कला कौशल द्वारा हंगरी की परीकथाओं पर चित्रण व रेखांकन प्रारम्भ कर दिया था। महिलाओं का आदर्श रूप अमृता के बाल-कल्पनाओं की परीकथाओं में आरम्भ में ही उच्च-कोटी का था। परन्तु अमृता को भविष्य में होने वाले प्रथम विश्व युद्ध से पीड़ित लोगों के दुःख का तनिक भी आभास ना था। क्योंकि आने वाले समय में अमृता के जीवन का परम लक्ष्य त्रासदी से पीड़ित लोगों के मार्मिक भावों को रंगों से चित्रित करना था। इनकी कला शिक्षा लोरेंस (इटली, 1924) एवं पेरिस (एकोल-द-बोजार, 1929) में उच्च कोटी के शिक्षकों द्वारा हुई। बीसवीं-सदी के उत्तरार्द्ध में जहाँ एक ओर सती-प्रथा, घूँघट प्रथा, बालविवाह, छुआछूत आदि सामाजिक बुराई का प्रचलन बढ़ रहा था, वहीं अमृता शेरगिल का भारत आगमन 1921 ई. में हुआ।⁷ भारत आकर इन्होंने भारतीय जन-जीवन एवं महिला वर्ग की निम्न स्थितियों को कैनवास पर उतारना प्रारम्भ किया। अमृता द्वारा चित्रित 'बालिका वधु' नामक चित्र (चित्र सं. 1) में उस समय हो रहे सामाजिक अपराध को बड़ी सौन्दर्यता से दर्शाया गया है। इस चित्र में कच्ची उम्र की बालिका के चेहरे पर अबोध मुस्कान द्वारा उसकी मासुमियत बताई गई है। इस चित्र में गहरे लाल, पीले, रंगों द्वारा अमृता ने ज्ञान और प्रेम का अपूर्व संगम दर्शाया है। वधु के हाथों में लगी मेहन्दी और पास बैठी सखी केश सज्जा में व्यस्त है मानों आने वाले नव जीवन प्रवेश की कामना कर रही है। आज के कई ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे अपराधों को रोकने का प्रयास अमृता ने बहुत पहले ही अपने चित्रों के माध्यम से बड़ी सौन्दर्यता से शुरू कर दिया था।

दूसरे चित्र 'अछूत कन्या' में अमृता ने उस समय के निम्न-वर्ग के लोगों

के साथ हो रहे सामाजिक अत्याचार का बड़ी ही करुण एवं समय की कटु बुराई की निन्दा करते हुये अपने सशक्त भावों द्वारा चित्रपट पर प्रदर्शित किया था। भारत में अमृता ने शिमला के नैसर्गिक सौन्दर्य के साथ ही पर्वतों पर कृशकाय और धंसी आँखों वाले तनावग्रस्त रिक्शा चालक एवं महिलाओं के सामान्य दैनिक कार्यों को चित्रित कर लोगों को आकर्षित किया।

अमृता भारत आकर भारतीय जन-जीवन की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को अपने चित्रों के माध्यम से उजागर करने लगी। मात्र 21 वर्ष की आयु में अमृता के हृदय में साहस, मस्तिष्क में कल्पना और अंगुलियों में कौशल था। उस समय उनकी आयु को देखते हुए यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि वे हिन्दुस्तान के चित्रकारों के सामने एक चुनौती उपस्थित करेगी, परन्तु थोड़े ही समय में यह स्पष्ट हो गया कि चित्रकला के अपने व्यापार के विषय में अमृता शेरगिल दृढ़ और सुनिश्चित विचार रखती है। और उनके रेखांकन और रंग विधान की ऐसी प्रतिभा है कि उन्हें किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं है।⁸ 1921 के दशक में महिला होते हुए भी अमृता का यह सशक्त रूप भारतीय चित्रकला के क्षेत्र में नारी जाति के लिए एक आदर्श रूप बना। भारतीय धर्मशास्त्र में कहा गया है कि नारी सर्व-शक्ति-सम्पन्ना है, एवं विद्या, शील, ममता, यश और सम्पत्ति की प्रतीक मानी जाती है। यह कथन अमृता के असाध्य जीवन को प्रतिपादित करता है।

जीवन के आर्थिक स्वरूपों में महिलाओं के दैनिक जीवन में आनन्दित एवं व्यस्त जीवन को अमृता ने अपनी तुलिका के द्वारा बहुत ही सौन्दर्य पूर्ण दर्शाया है। इनके चित्र 'हल्दी पीसती औरतें' (चित्र सं. 2) इस चित्र में अमृता ने भारतीय महिलाओं के आर्थिक परिश्रम को दर्शाया है। इस चित्र में दो महिलाएँ हल्दी पीस रही हैं एवं पास में एक बालिका उनके इस आर्थिक परिश्रम को निहार रही है। ग्रामीण परिवेश की महिलाएं अपनी आजीविका के लिए जो आर्थिक परिश्रम करती हैं उसे अमृता ने जीवन के दुःख-सुख, अन्धकार-प्रकाश को परिपूर्ण गौण रूप से चित्रित किया है। ऐसे ही अमृता ने 'ग्रामीण महिलाओं' के अनेको चित्रों द्वारा उनके जीवन में आर्थिक रूप से सशक्त जीवन को दर्शाया है। उनके एक चित्र 'विश्राम करती स्त्री' में उन्होंने एक ग्रामीण महिला को चारपाई पर आराम से सोते हुए दर्शाया है, मानो आर्थिक परिश्रम करके अभी-अभी लेटी ही हो। उस समय महिलाओं की स्थिति को देखते हुए अमृता

की इस कल्पना को महिला सशक्तिकरण की आधार-शिला कहना उचित ही होगा। अमृता शेरगिल के ऐसे ही अन्य चित्र हैं जो उनके अदम्य साहस एवं शक्ति को दर्शाता है। जैसे 'तीन बहिनें' (चित्र सं. 3), ब्रह्मचारी, केले बेचते हुए, दी स्टोरी ऑफ टेलर, पहाड़ी स्त्रियाँ, भारतीय माँ, ऊँट वाले, बाजार जाते ग्रामीण पुरुष, विश्राम, कथा गायक, बाजार, वीणा बजाती, स्नानमग्ना आदि ऐसे चित्र हैं जो भारतीय कला एवं जन-जीवन एवं महिलाओं के उत्थान एवं विकास के परिचायक हैं। दक्षिण भारत की यात्रा के दौरान उन्होंने वहाँ के साधारण लोगों के जीवन को भी चित्रित किया, जो अनेक भारतीय लोगों से लगाव को दर्शाते हैं।

अमृता ने अपने आन्तरिक शक्तिकरण को चित्र पट तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि समय-समय पर लेखन कार्य भी किया। 'आर्ट एण्ड एप्रिसियेशन', 'इंडियन आर्ट टुडे', एवं 'ट्रेन्ड्स ऑफ आर्ट इन इण्डिया'⁹ नामक पत्रिकाओं में अमृता ने अपने विचारों द्वारा लोगों को जागरूक किया। अपनी आयु के इतने कम पड़ाव में बहुत कम लोग सशक्त हो पाते हैं परन्तु अमृता एक चिंगारी की भांति कला जगत में चित्रकारी एवं लेखन दोनों में प्रभावकारी सिद्ध हुई।

अमृता के 'भारतीय लड़कियाँ' नामक चित्र पर नई दिल्ली की 'ऑल इण्डिया फाईन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसायटी' की प्रदर्शनी में स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ।¹⁰ पेरिस में कला अध्ययन के दौरान विभिन्न कला प्रतियोगिताओं में तीन बार पुरस्कार मिले एवं 1932 ई. में चित्र 'टोरसो' पर 'ग्रांद सेलो' (छतंदकम 'सव) का पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुआ।¹¹ अपने निरन्तर कला सृजन द्वारा अमृता ने देश-विदेश में अपनी नवीन पहचान बनाई। आपके द्वारा चित्रित चित्र 'विश्राम' (चित्र सं. 4) नामक चित्रण में अमृता ने कुछ महिलाओं को परिश्रम करने के बाद विश्राम की अवस्था में दर्शाया है। इस चित्र में उन्होंने बैठी हुई महिलाओं की आर्थिक मनोदशा को बताया है। जब हमारा भारत देश एक तरफ राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत था एवं दूसरी ओर कला के क्षेत्र में पश्चिम में हुई नवीन खोजों के प्रभाव तले कलाकार किंकर्तव्यमूढ़ अवस्था से गुजर रहे थे, तब अमृता ने एक भारती, पूर्व आधुनिक, देशज कलाकार के रूप में अपने भावों को चित्र पट पर प्रकट किये। अपने कला सृजन कार्य में भी उदासीन नारी आकृतियाँ एवं तनावग्रस्त मुखाकृतियों द्वारा वह नारी को उसके अधिकारों के प्रति जिज्ञासाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया करती थी।

अमृता ने अपने चित्रों की एकल कला-प्रदर्शनी इलाहाबाद, दिल्ली, मुम्बई, हैदराबाद, लाहौर, शिमला¹² में प्रदर्शित की। वर्तमान में इनके चित्र देश-विदेश के संग्रहालयों, कला दीर्घाओं एवं प्रकाशनों में सुरक्षित हैं। इनके अधिकांश चित्र नेशनल गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट, नई दिल्ली तथा विवान् सुन्दरम् के व्यक्तिगत संग्रह में देखे जा सकते हैं।¹³ प्रगाढ़ प्रेम का प्रतीक लाल रंग आपको अति प्रिय था, जिसका प्रभाव अमृता के चित्रों में दिखाई देता है। विदेशी शिक्षा लेने के बाद भी अमृता का विचार था कि “कलाकार के रूप में भारत ही उनकी कर्मभूमि है और ऐसा लगता है कि मैं भारत में ही काम कर सकूंगी।”¹⁴ इनके यह शब्द भारत-प्रेम और भारतीय लोगों से लगाव को दर्शाते हैं। इनकी कला शैली में पॉल गोगिन की शैली की आदिम सरलता, पॉल सेजान की शैली की गठनशीलता व सरलीकृत आकार तथा वॉनगो की अभिव्यजना शक्ति के साथ भारतीय कला के प्रत्येक पक्ष का प्रभाव भी है।¹⁵ इनके चित्रों में पूर्व-पश्चिम दोनों का सम्मिश्रण दिखाई पड़ता है। 1934 ई. तक अमृत दुनिया की सामने एक नई पहचान बना चुकी थी। जिस समय भारत देश स्वतंत्र भी नहीं था इसी स्थिति में इस 21-22 वर्ष की बालिका ने अपने ‘स्व’ की पहचान हेतु भारतीय लोगों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को मन व मस्तिष्क में अपने चित्रण के सृजन से नवीन चेतना का प्रस्फुटन बीज डाल दिया था। उस दौर में जहाँ स्त्रियों का बाहर निकलने पर भी टोका या रोका जाता था ऐसे परिवेश में मात्र अमृता ही थी जो महिला कलाकार, लेखिका के रूप में भारतीय समाज के सामने अभिमुख हुई। उस समय की निर्दयी स्थिति को देख इनका मन वास्तविक करुणा से भर गया और वह नवीन मार्गों के द्वार खोलने हेतु अपने कदम आगे बढ़ा चुकी थी।

निष्कर्षता अमृता शेरगिल भारतीय कला जगत में अपने असाध्य कला सृजन कार्यों द्वारा प्रेरणास्पद रही। बालपन से ही परी-कथाओं को चित्रित करने वाली नन्हीं बालिका अपने यौवन काल में भारतीय महिलाओं के मनोभावों को इतनी सौन्दर्य पूर्ण रूप से चित्रपट पर उतारेगी यह उनका कार्य कौशल, चार्तुरता, रचनात्मक दृष्टिकोण एवं निरन्तर परिश्रम द्वारा ही संभव था। महिलाओं के उदासीन चेहरे, तनावग्रस्त भावों, को गहरे रंगों द्वारा उनके सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में होने वाली प्रतिदिन दिनचर्या को अमृता ने बड़ी सौन्दर्यता से चित्रित किया। भारत आने के पश्चात् अमृता ने यहाँ के जन-जीवन एवं

त्रासदी से पीड़ित लोग, चारों तरफ सिर्फ उदासीनता भरा महौल देखा तो पश्चिमी शैली को अपनाते हुए तेल रंगों द्वारा भारतीय पुरुषों तथा स्त्रियों के दुःख दर्द, तकलीफों तथा निराशा की आन्तरिक वेदना को प्रकट करने में सक्षम रही। एक महिला होते हुए भी उनके साहस को सराहना चाहिए कि वह उन लोगों के बीच जाकर उनके आन्तरिक भावों को कैनवास पर प्रस्तुत किया। ऐसे तो अमृता शेरगिल का जीवन मात्र 28 वर्ष का रहा परन्तु उनके कला कर्म और परिश्रम के लिए यह समय बहुत ही कम था। 1935 ई. से 1941 ई. तक के समय काल में इन्होंने जिन कलाकृतियों का सृजन किया, वह आज संसार भर में भारतीय कला जगत की अनमोल धरोहर बन गई है। अमृता जीवन के अन्तिम क्षणों में भी निरन्तर कला चित्रण एवं लेखन में व्यस्त रही। अपने कला सृजन कार्य में भी उन्होंने स्त्री-भावों की आन्तरिक उत्कण्ठाओं को जागृत करने का माध्यम चुना। अमृता ने अत्यन्त स्थूल और दृश्यात्मक कला के प्रति अपनी प्रतिक्रिया दिखाकर कला द्वारा नवीन मार्ग चुना जो आज भी भारतीय कला अभ्यासी नवयुवक कलाकारों के लिए प्रेरणाप्रद है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोयल, मुरारीलाल 'शापित' : पौराणिक नारियाँ, 1996, दिल्ली, पृ.सं. 6
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, नई दिल्ली, 1994, पृ. सं. 94
3. उपाध्याय विद्यासागर : भारतीय कला की कहानी, जयपुर, 2004, पृ. सं. 2
4. चतुर्वेदी, ममता: समसामयिक भारतीय कला, जयपुर, 2010, पृ.सं. 66
5. वर्मा, अविनाश बहादुर : भारतीय चित्रकला का इतिहास, बरेली, 2006, पृ.सं. 281
6. गोस्वामी, प्रेमचन्द्र : आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तम्भ, जयपुर, 2011, पृ.सं. 45
7. प्रताप, रीता: भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, जयपुर, 2010, पृ.सं. 345
8. बड़ेरिया, तारक नाथ : भारतीय चित्रकला का इतिहास, नई दिल्ली, 2004, पृ. सं 104
9. प्रताप, रीता : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, जयपुर, 2010, पृ.सं. 345

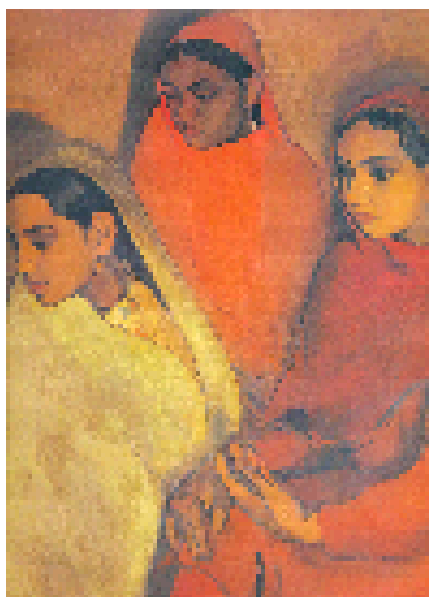
पि = 1 पिह



पि = 1 पि; कल 1 अमृतक अमृत



पि = 1 पि; कल 2 अमृतक अमृत



पि = 1 पि; कल 3 अमृतक अमृत



पि = 1 पि; कल 4 अमृतक अमृत

आहार और व्यायाम से स्वस्थ जीवन

प्रकृति ने मानव शरीर की रचना कुछ इस प्रकार की है कि वह निरन्तर सक्रिय रह सके। इसको सही व स्वस्थ आकार व दशा में रखने के लिए हम इसे कम से कम सप्ताह में तीन बार 30-45 मिनट का व्यायाम तो दे ही सकते हैं। शरीर एक बुनियादी नियम के अनुसार काम करता है। उस स्वस्थ रखने के लिए कसरत व उचित आहार की आवश्यकता है साथ ही निश्चित विश्राम की भी। हम शायद जल्दी ही अपनी मांसपेशिया और अस्थियों की सघनता भी खो देंगे क्योंकि हम इनकी सही देखभाल नहीं कर रहे हैं। आज थोड़ा सा हाथ, पांव या गर्दन हिलती है और नस सरक जाती है या दर्द होता रहता है। इन सबका कारण नसों के संकुचन तथा केल्लियम आदि की कमी होना है।

जब तक आप नियमित व्यायाम कर रहे हैं तब तक चाहे जो खाओ, सब ठीक है। वह पच जाता है लेकिन यदि बैठे-बैठे खाते हैं तो भोजन पूर्ण रूप से नहीं पचता है।

आप जब सेहतमन्द ढंग से खाना और नियमित व्यायाम करना शुरू करते हैं तो पहले पहल शरीर की चर्बी में तो कमी दि गई देती है लेकिन वजन में उतना नहीं। स्वस्थ जीवन जीने के लिए हमें आहार और व्यायाम पर विशेष तौर से चिंतन करना आवश्यक है और इन्हें आत्मसात करने के प्रयास जरूर करने चाहिए। आत्मसात् कर स्वयं करना व दूसरों को अपनाने की प्रेरणा देते रहना चाहिए।

उचित मात्रा में भोजन लेना चाहिए। आमाशय का आधा भाग अन्न के लिए चतुर्थांश पेय पदार्थों के लिए र लते हुए शेष भाग वायु के लिए छोड़ना उचित है। ऋतु के अनुसार पदार्थ का मेल करके सेवन करने से रोग पास में नहीं आते। भोजन का समय निश्चित होना चाहिए। असमय पर किया हुआ भोजन अपचन करके रोग उत्पन्न करता है।

प्रातःकाल: आठ से नौ के बीच हल्का पेय, फलादि लेना अच्छा है। प्रातःकाल में अन्न का प्रयोग जितना कम हो, शरीर के लिए उतना उचित है। मध्याह्न: ग्याराह से बारह बजे तक भोजन लेना उचित है। बारह से एक बजे का समय मध्यम, उसके बाद उपरोक्त निकृष्ट माना जाता है। सायंकाल: सात से आठ का समय उचित है आठ से नौ का समय मध्यम और नौ बजे के बाद उपरोक्त निकृष्ट समय होता है।

भोजन करते समय वार्तालाप करने से भोजन अच्छी तरह से चबाया नहीं जाता तथा अधिक भी खा लिया जाता है। इसलिए भोजन के समय मौन रहकर भगवान नाम का स्मरण करते हुए चबा चबाकर भोजन करना चाहिए। एक ग्रास को बीस बार या कम से कम बीस बार तो चबाना ही चाहिए। चबाकर भोजन करने से हिंसा भाव की भी निवृत्ति होती है : क्योंकि हम सब जानते हैं कि जब क्रोध आता है तब व्यक्ति दांत पिसने लगता है, अर्थात् क्रोध का उदगम स्थान दांत है। यदि हम हिंसाभाव को समाप्त करना चाहते हैं तो हमें चबाने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। भोजन के प्रारंभ में ओम् का स्मरण या गायत्री आदि मन्त्रजप के साथ करना अच्छा माना गया है। भोजन के बीच में पानी नहीं पीना चाहिए। भोजन के बाद दो तीन धूँट से ज्यादा पानी नहीं पीये। यदि छाछ हो तो जरूर पीना चाहिए।

संस्कृत में एक श्लोक आता है, जिसका तात्पर्य है- जो प्रातःकाल उठकर जलपान करता है, रात्रि को भोजनोपरान्त दुग्ध पान तथा मध्याह्न में भोजन के बाद छाछ पीता है उसे वैद्य की आवश्यकता नहीं होती। अर्थात् वह व्यक्ति नीरोग रहता है।

आहार से संबंधित कुछ बातें हमें जीवन में उतारनी चाहिए है अगर हम हमारे जीवन में इसका पालन करना शुरू करें तो निसंदेह हमारा स्वास्थ्य अच्छा बना रहेगा।

फल खाने का समय उपवास की दशा अथवा लीवर का भंडार खाली होने पर है। अतः सुबह के समय खाली पेट या व्यायाम के फौरन बाद। इसका अविरक्त शेष समय में शरीर फ्रकटोज को ट्राईग्लाइसराइड में बदल देता है। इसलिए फलों के रस के बजाए साबूत फल पाना ज्यादा फायदा एवं पोषकयुक्त है अपनी जानकारी के लिए फलों का रस एक फल की तुलना में आपको न केवल चार पांच गुना

अधिक फ्रूटोज देते हैं बल्कि ये रेशे रहित होने के कारण फल के गुण से रिक्त भी होते हैं। इसलिए आपका फल सुबह सुबह सबसे पहली चीज की तरह खाइये लेकिन सुबह के नाश्ते के पहले, उसके साथ नहीं।

हमारे मुँह में दांत और मसूढ़े हैं, जिनका काम भोजन को चबाना है। फलों और सॉजियों का जूस निकालने से (फल चार्ट जितना भी ताजा, जूस निकालने की मशीन चाहे कितनी महगी हो कोई फर्क नहीं पड़ता) उसके सारे विटामिन और मिनरल प्रायः नष्ट हो जाते हैं। और अगर आप रेशे बचा लेते हैं या अपने जूस में उसे वापस मिला देते हैं तो भी, आपने उसकी संरचना नष्ट कर दी है। अब आप रंगीन पानी पी रहे हैं जिसके सारे पोषक तत्व खो चुके हैं क्योंकि फल का सतह क्षेत्र बढ़ गया है। फलों में ऐन्टीऑक्सीडेंट होता है। आदर्शतः उन्हें देह के भीतर ही घुलना चाहिए, बाहर नहीं।

फल का साबूत खाना निसन्देह एक बेहतर दांव है। उसके सारे विटामिन और मिनरल बचे रहते हैं, चबाने से मसूढ़ों की मालिश होती है, और रेशों से आपके शरीर के खोल साफ होते हैं। जहां तक फल की बात है पीजिए नहीं खाइए। यही स्वास्थ्य वर्धक है।

चीनी युक्त चाकलेट, चीनीयुक्त मिठाई, चीनीयुक्त पेय और वह हर चीज जिसके साथ डाईट विशेषण लगा हुआ है डाईट पेय, डाईट आइस्क्रीम, डाईट योगर्ट आदि आदि फिटनेस प्रशिक्षकों के अनुसार एकाधबार का मधुरक प्रयोग आपको नुकसान नहीं करेगा लेकिन इसका नियमित इस्तेमाल आपके शरीर को नुकसान पहुँचाने का एक विलंबित और पीड़नप्रिय तरीका है। (मोटा होने के लिए खुद को दण्डित करने का एक और ढंग)? हर तरह के मधुरक प्रयोग का सन्ध किसी प्रकार के कैंसर, थायराइड जैसे अपकार्य स्मृति ग्रंथ, पेट की जलन, मोटापा आदि के साथ जुड़ा है। और सचमुच एक या दो चमच चीनी के इस्तेमाल (नियमित भी) से आपको उतना नुकसान नहीं होगा जितना इन मधुरकों के इस्तेमाल से हो सकता है। मधुरक को अपनी चाय या अन्य किसी के साथ प्रयोग करना वाकई में ठीक है या नहीं अपने-अपने शरीर पर निर्भर होता है।

भोजन के बाद मीठा ठीक नहीं है। मान गये। लेकिन काफी? कैफिन चूक चर्बी का दाहक है, वह डिनर की कैलोरी का भी दाह करेगा। पहली बात तो यह कॉफी आपकी नींद में बाधा डालेगी, आसतौर से लोह और केलशियम जैसे खनिजों

को सोखने में। और लोह और केलशियम का स्तर कम होने पर चर्बी का दाह घट जाता है। कॉफी आपके पेट को एसिडिक बनाती है जिससे आप कब्ज और आपरे के साथ सुबह उठते हैं।

शहद यदि सही जगह से पाया गया है तो उसमें औषधीय गुण होते हैं। लेकिन अगर आप बिना किसी निगरानी के शहद ले रहे हैं तो ये आपके लिये अच्छे से ज्यादा बुरा हो सकता है। शहद में फ्रक्टोज का स्तर बहुत ऊंचा होने का कारण यह उन लोगों के लिए ठीक नहीं है जो इन्सुलिन के लिए संवेदनशील है या जिनका ट्राईग्लोसिराइड या एलडीएल का स्तर ऊंचा है अतः उनको नियमित रूप से लेना शुरू करने के पहले जांच करवाईये। यह सब के लिए सही नहीं है।

नींबू वस्तुतः आपको नुकसान कर सकता है कुछ विशेष प्रकार के शारीरिक संयोजनों में यह सिर दर्द और अलता बढ़ा सकता है। और पाचन की समस्यायें पैदा कर सकता है। और यह विटामिन सी का कोई समृद्ध स्तौत भी नहीं है। एक अमरूद में नींबू की अपेक्षा कही ज्यादा विटामिन सी होता है।

भोजन से सन्धित कुछ बातें जो हमें नियमित रूप से याद रखनी चाहिए वे निम्नानुसार हैं-

- खाते समय ध्यान को खाने पर एकाग्र करना है। सही तरह से खाने का मूल मंत्र : टी.वी. और मोबाईल फोन का स्विच बंद कर कर भोजन करें।
- सुबह सात बजे से दस बजे के बीच आप अधिक भोजन पचा सकते हैं। अधिक मात्रा में भोजन लिया जा सकता है।
- पिछली रात की बची हुई दाल, सब्जियों में अगले दिन बहुत कम पोष्टिकता रह जाती है। अतः बासी भोजन नहीं किया जाना चाहिए।
- जहाँ तक हो सके वही भोजन खाइये जिसे खाते हुए आप और आपका परिवार बड़े हुए है।
- आपके लिए पिज्जा खाने से बेहतर है पनीर पराठा। किसी आहार में कितनी कैलोरी है इससे ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि उसमें कितने पोषक तत्व हैं।
- आपका भोजन खोखला और प्रोसेस्ड न हो प्राकृतिक और पोष्टिक हो, जैसे, पनीर, चीज, मूंगफली, मेवे, दूध, दही और साबुत अन्न।
- सब्जियों और फल टुकड़ों में काटने की बजाए साबूत खाइए, क्योंकि काटने

पर उसकी सतह के विटामिन नष्ट हो जाते हैं। खुली सतह जितनी ही अधिक होगी उतना ही बड़ा पोषक तत्वों का घाटा भी होगा।

- जहाँ तक संभव हों सके, स्थानीय उत्पाद और मौसमी भोजन खाएँ। जलवायु, नमी, हवा, ऊँचाई, मिट्टी वगैरह हमारे पाचन संस्थान का और भोजन के स्थानीय उत्पाद को प्रभावित करती है।
- गर्मियों में आम बहुत बढ़िया है दिन में एक बार अपने आप में पूरे अल्पाहार की तरह खाईये और आपको पूरे मौसम के लिए एन्टीओक्साइड की अपूर्ति मिल जायेगी। वहीं आम फ्रीज में बरसात के लिए जमा करने पर उतना मजा आयेगा ही नहीं : स्वाद में आधे भी नहीं होंगे और उसका अधिक तर पोषण समाप्त हो चुका होगा।
- यदि आप धूम्रपान करते हैं, बहुत व्यस्त सामाजिक जीवन जीते हैं और अत्यधिक तनाव का सामना करते हैं तो विटामिन सी आपके लिए अत्यन्त आवश्यक है।
- यात्रा के दौरान, सतह डाइटिंग, अत्यधिक व्यायाम, या तनाव की लंबी अवधि की स्थिति में विटामिन ए जरूर लेना चाहिए।
- अपने आहार में ओमेगा-3 फेटी एसिड्स जैसे अलसी के बीज, घी समेत डेयरी के उत्पाद, साँजियाँ, गिरी और मछली शामिल करके हम अपनी बुद्धि को बढ़ा सकते हैं।
- अपने आहार में से वसा को नहीं हटा। इसके बदले अपने शरीर की वसा को हटाना और घटाना शुरू कीजिए।

शाम का व्यायाम

बहुत से लोग देर शाम का व्यायाम करते हैं, लेकिन चूँकि डिनर हल्का फुल्का रखना चाहते हैं इसलिए व्यायाम के उपरान्त कुछ नहीं खाते हैं। शर्त यह है दिन में चाहे किसी भी समय आप व्यायाम करे इसके पहले और इसके बाद का आहार अनिवार्य है, इसलिए चाहे आठ बजे चाहे दस बजे आपका व्यायाम का समय है निश्चयपूर्वक व्यायाम के दस मिनट के भीतर तीव्र गति कारबोड्राईट्स और प्रोटीन शेक लीजिए। हाँ चाहे रात के ग्यारह बजे हो तो भी आहार लेना जरूरी है।

सारांश बुनियादी बातें

पाठको से मेरा निवेदन है कि अगर आप अपने स्वस्थ जीवन शैली की शुरूवात करना चाहते हैं तो आपको कुछ बुनियादी बातें याद रखनी होंगी और नित्य उसी

का पालना सुनिश्चित करनी होगी।

सूर्योदय के पहले उठिये

आदर्श रूप से सूर्योदय थोड़ा पहले उठिये ताकि आप हर प्रभात के साथ आने वाली शांति के साक्षी हो सकें। प्रभात आशा और स्फूर्ति का संचार करता है न केवल शेष दिन के लिए बल्कि जीवन के लिए सूर्योदय हमें विटामिन डी प्रदान करता है जो हम अपनी अस्थियों को स्वस्थ रखने के लिए चाहिए।

शरीर को तन्दुरुस्त बनाये रखने में सुबह का व्यायाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसके बाद कभी भी न करें। अगर सूर्योदय के पहले उठ नहीं सकते हैं तो सामान्य समय से एक घण्टा पहले उठिये और व्यायाम पर पूरा ध्यान लगावे। व्यायाम जीवन भर का वायदा है।

जागने के बाद फल जरूर खाये

जागने के बाद आप चाय काफी या सिगरेट का सेवन न करें और सिर्फ एक या दो ताजा फल जरूर लीजिये। इसमें नमक, चीनी, चाट मसाला वगैरह मत मिलाये बढिया ब्रेकफास्ट कीजिये

सुबह का नाश्ता ताजा और पोषण से भरपूर होता है। इडली, डोसा, उप्पम, उपमा पराठा, दलिया, अण्डे की विभिन्न उत्पाद अच्छे विकल्प हैं।

दोपहर को हलका भोजन लेवे तथा हर दो घण्टे पर आहार लेवे। जैसे नारियल पानी, बिना नमक व शक्कर वाली लस्सी, चना और मूंगफली, चीज दही या योगर्ट दूध और सोया दुध गाजर और खीरा, प्रोटीन बार, अंकुरित अन्न, टोस्ट, सफेद मक्खन पोहा उपमा हरी सब्जियाँ उबले अण्डे आमलेट।

सूर्यास्त के दो घण्टे के भीतर डीनर लेवे

पेट की पाचन क्षमता बहुत थोड़ी यर नहीं के बराबर रह गई हो तब डिनर के समय ज्यादा भोजन करना आपके लिए अहितकारी हो जाता है पनीर और सब्जियों के साथ ब्राउन चावल खिचड़ी कटोरी दाल, उचित मात्रा में सेवन करना स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होता है।

समय पर सोएं

निश्चित समय पर रोज सोएं। हमेशा मध्यरत्रि के पहले। अंतिम आहार आठ से सात आइ के बीच खत्म करने के बाद रात को साढ़े दस बजे तक सोने का

प्रक्रिया का पालन करे। जो निश्चित समय पर सोते हैं वे रोज सुबह निश्चित समय पर जागते भी हैं।

पानी का सेवन खुब करे

हमारे शरीर को जीवित रहने के लिए जल सर्वाधिक महत्वपूर्ण पोषक तत्व है शरीर के जल स्तर में थोड़ी सी गिरवट हमारे रक्त के आयतन को घटा देती है इससे हमारे रक्त में सोडियम की मात्रा बढ़ सकती है और प्रतिक्रिया में व्यास को उपोषित करती है। पानी के बिना आप कार्ब प्रोटीन और बसा से मिलने वाले पोष को का इस्तेमला नहीं कर सकते। मानव शरीर का लगभग 70 प्रतिशत जल है। पानी की तरफ हाथ बढ़ाईये और केवल व्यास बुझाने से अधिक पानी पीजिए। दरअसल हर वक्त पानी पीजिये एक एक घूंट करके मुंह में घुमाईये और कंठ से पेट तक उतरने दीजिये। जल ही जीवन है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. लूनिया कुसुम, (2005), शाकाहार : श्रेष्ठ आहार, लाडनू, जैन विश्वभारती।

Hkj rh; l l.Fki u dyk %, d fogxloykdu

विश्व कलाकारों के बीच संस्थापन कला अत्यन्त लोकप्रिय हो चुकी है। वैसे संस्थापन कला का प्रारम्भ बहुत से कलाकार और इतिहासकार यूरोप में दादाकला आंदोलन के समय से मानते हैं। फ्रांसीसी कलाकार मार्शल द्युशां ने 1917 में आयोजित एक प्रदर्शनी में एक मूत्रपात्र पर "आरमट" हस्ताक्षर करके 'फौव्वारा' शीर्षक से उसको एक कलाकृति की तरह प्रदर्शित किया था। द्युशां का यह प्रयास सौन्दर्यमूलक तो नहीं था लेकिन तत्कालीन कला की दुनिया को द्युशां के उस कृति प्रदर्शन से एक नया आयाम—एक नयी दिशा अवश्य मिली। द्युशां की ऐसी प्रस्तुति से कैनवास तक सिमटे कलाकारों को फ्रेम से बाहर निकल कृति रचने और प्रदर्शित करने का साहस और अवसर मिलने लगा। वैसे संस्थापन कला का भारतीय जनमानस के साथ बहुत पुराना और गहरा सम्बन्ध है। संस्थापन अर्थात् सम्यक रूपेण स्थापना भारतीय लोक और संस्कृति के मूल में ही है। शिवलिंग सम्भवतः विश्व की सबसे प्राचीन और अत्यन्त संयोजित संस्थापन कृति है। भारतीय समाज में प्रचलित रीति—रिवाजों और दैवी पूजा—पाठ में अलग—अलग प्रकार के संस्थापन कला के अत्यन्त सुंदर और प्राणवान प्रमाण बहुत पहले से मिलते आ रहे हैं। छठ पूजा में कोसी भरना, सत्यनारायण पूजा, डीह बाबा का थान (स्थान), कृष्ण की झांकी के अतिरिक्त स्थानीय और क्षेत्रीय देवी—देवताओं की लोक कलाकारों द्वारा रची—गढ़ी गयी मूर्तियां भारतीय संस्थापन कला के प्राचीन प्रमाण है।

कलारूपों और आकारों की विशिष्ट प्रस्तुति का संस्थापन कला में बहुत महत्व है। ऐसी प्रस्तुति को सम्पूर्ण रचनात्मक कलाकर्म के रूप में देखा जाता है। संस्थापन कला में 'स्पेस' का बहुत महत्व होता है। यद्यपि 1945 के बाद से यूरोपीय कला में संस्थापन का विशेष स्थान बनता गया लेकिन इसके नाम का प्रयोग और प्रचलन बाद में हुआ और यह कला धीरे—धीरे अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी। संस्थापन कला में कला रचना की सामग्रियों के प्रयोग से भी पर्याप्त विविधता और प्रयोगधर्मिता आ जाती है। आज दुनिया के प्रायः सभी देशों के कलाकार संस्थापन कला

के क्षेत्र में अत्यन्त सक्रिय हैं और विविध रूपाकार में प्रस्तुति कर रहे हैं। संस्थापन कला की लोकप्रियता का एक ठोस कारण यह भी है कि कलाकारों को इस विधा में स्वयं को अभिव्यक्त करने का बिल्कुल खुला और मनचाहा स्पेस मिल रहा है और इसीलिये इस विधा में काम करना और प्रदर्शित करना उनको आसान भी लग रहा है। इसमें माध्यम और सामग्री के प्रयोग की बहुत अधिक स्वतंत्रता और सम्भावना है। विशेष बात यह है कि किसी भी एक संस्थापन कला में व्यापक अर्थवत्ता की संभावना बनी रहती है। ललित कला अकादमी, नई दिल्ली प्रत्येक तीन वर्ष बाद अन्तर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी आयोजित करती है। ऐसी त्रिनाले प्रदर्शनियों में विश्व के प्रमुख कलाकार भाग लेते हैं। ऐसी प्रदर्शनियों का एक बड़ा लाभ यह होता है कि इनके माध्यम से भारतीय कलाकारों को अन्तर्राष्ट्रीय कलाकारों से बहुत कुछ सीखने-सिखाने का अवसर मिलता है। विश्वस्तरीय आधुनिक इंस्टालेशन (संस्थापन) के प्रचार-प्रसार में त्रिनाले जैसी प्रदर्शनियों का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत में आयोजित नौवीं त्रिवार्षिकी में संस्थापन कला की कई अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रस्तुतियां की गयी थीं।

संस्थापन कला के सौन्दर्यात्मकता, रोचकता और लोकप्रियता का महत्व इससे जाना जा सकता है कि दसवीं त्रिवार्षिकी में सारे पुरस्कार संस्थापन कला को मिले थे। इससे कला की अर्थमयता को बहुत प्रसिद्धि भी मिली। अवलोकियों और चयनकर्ताओं को उस प्रदर्शनी की 300 से भी अधिक कलाकृतियों में सबसे अधिक सम्भावना संस्थापन कलाकृतियों में ही दिखायी दी। फ्रांस, अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा भारत का प्रतिनिधित्व करने वाले चयनकर्ता त्रिवार्षिकी में प्रदर्शित संस्थापन कलाकृतियों से अत्यन्त प्रभावित हुये थे। इसीलिए उन्होंने संस्थापन कलाकृतियों की अनुशंसा पुरस्कार हेतु किया। उन्होंने अपने निर्णय में यह स्पष्ट कहा कि ये कलाकृतियाँ उत्कृष्ट हैं और ये समकालीन कला में एक प्रकार के अन्वेषण का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो अनुकरणीय है।'

प्रख्यात कलाकार वेद नायर ने पाचवीं त्रिवार्षिकी में "मनुष्यता-2110" नामक अपने इंस्टालेशन को प्रदर्शित किया। उनके संस्थापन कृति को अद्भुत कलात्मकता के कारण पुरस्कृत भी किया गया था। नई दिल्ली की राष्ट्रीय आधुनिक कला दीर्घा में मकबूल फिदा हुसैन ने 'श्वेताम्बरी' नामक संस्थापन किया था। अपने उस कृति में हुसैन ने पूरे फर्श पर सफेद कपड़े को फैलाकर नई और विशिष्ट रचना को जन्म दिया था। भारतीय संस्थापन कला के क्षेत्र में गोगी सरोजपाल और वेद नायर ने मिलकर बहुत काम किया है। इनके अतिरिक्त आईफैक्स दीर्घा में विवान सुन्दरम् ने 1993 में 'मेमोरियल' नाम से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्थापन प्रस्तुत किया था। बाबरी

मस्जिद के ढह जाने के बाद विवान सुन्दरम् ने अपने इस संस्थापन से साम्प्रदायिकता के विरुद्ध एक कलाकार की सार्थक प्रतिक्रिया स्वरूप अपने संस्थापन को रचा-गढ़ा था।² अपने आस-पास की तमाम उपयोगी-अनुपयोगी, अच्छी या बेकार वस्तुओं को मिलाकर विवान सुन्दरम् अत्यन्त सारगर्भित संस्थापन करते हैं। उनके संस्थापन में वस्तुओं के आपसी सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। 'कोलोबरेशन', 'द शेरगिल आर्चिव' उनके महत्वपूर्ण संस्थापन कृति के उदाहरण हैं।

विवान सुन्दरम् के अतिरिक्त नलिनी मलानी भारत की एक महत्वपूर्ण संस्थापन कलाकार हैं। नलिनी इंस्टालेशन आर्ट में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जानी जाती हैं। चौथी एशिया-पैसिफिक कला त्रिवार्षिकी में नलिनी मलानी की कृति की बड़ी प्रशंसा हुयी थी। उनका इंस्टालेशन मानवीय अस्मिता से सम्बन्धित था। नलिनी मलानी की दूसरी महत्वपूर्ण संस्थापन कृति 'रिमेम्बर टोबा टेक सिंह' है। इस संस्थापन में अमानवीयता, परमाणु युद्ध के उन्माद और विभाजन की पीड़ा तथा आदमी के भविष्य से जुड़े अनेक प्रश्न जुड़े से लगते हैं। नलिनी का यह संस्थापन टोबा टेक सिंह कहानी को बारीकी से व्यक्त कर रहा था और उसकी वैश्विक सम्वेदना को अनेक प्रतीकों के माध्यम से प्रतिविम्बित कर रहा था।³

रत्नावली कांत अपने संस्थापन में कई कलाओं का सम्मिलन कराते हैं। उनके संस्थापन कला में मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्य आदि समाहित हैं और जिसके माध्यम से वे अनेक दृश्य रूपों को व्यक्त करती हैं। अपनी रचनाधर्मिता के बारे में रत्नावली स्वयं कहती हैं—'मैंने हमेशा ही दृश्य कला और प्रदर्शनकारी कलाओं में निकटता का सम्बन्ध देखा है।' उनकी संस्थापन प्रदर्शन संयुक्त का एक उदाहरण है जिससे एक तरह की नयी अर्थाभा अवलोकी तक सम्प्रेषित होने लगती है। विभिन्न नृत्यों के माध्यम से वह समकालीन सामाजिक जीवन को आख्यान बनाकर प्रस्तुत करती हैं। 1996 में दिल्ली में हुये "द डेथ ऑफ डिजायर" नामक उनके संस्थापन की बड़ी प्रशंसा हुयी। 'फेसिंग नाइट मेयर एलोन' तथा 'आई फील लाईफ टू बी ग्रीन' जैसे संस्थापन में आज के जीवन के संक्रमण को दिखाने की उन्होने कोशिश की थी। 1999 में प्रस्तुत संस्थापन "द एण्ड ऑफ स्कॉल" की विलक्षण अर्थ संरचना से मकबूल फिदा हुसैन तक प्रभावित हुये थे।⁴ रत्नावली कांत ने कलाओं के अन्तःसम्बन्धों के माध्यम से जो विशिष्ट कला अभिव्यक्ति संभव की है उसमें नये अर्थ के साथ नया आस्वाद भी जुड़ा है।

ललित कला की कई विधाओं को जोड़कर कलाकार अच्छे संस्थापन कर रहे हैं। नृत्य की अनेक शैलियों के साथ कलाकारों द्वारा किये गये प्रयास चकित तो करते हैं लेकिन साथ ही साथ अपने अर्थ सम्प्रेषण से दर्शकों की चेतना को भी परिष्कृत

करते हैं। संस्थापन “फेसिंग नाइट मेयर एलोन” पर ध्यान दें तो देखेंगे कि इसमें द्रौपदी के अपमान को सम्पूर्णता में अभिव्यक्त करने की कोशिश की गयी है।

चारों तरफ काले रंग की आदमकद मूर्ति शिल्पों के बीच द्रौपदी की उपस्थिति जितनी डराती है उतनी हमें लज्जित भी करती है।

रत्नावली कांत ‘वीडियो इंस्टालेशन’ के कारण भी बहुत चर्चित हुयी हैं। अपने इंस्टालेशन में वे कविताओं, विभिन्न ध्वनियों के माध्यम से आज के समय को संप्रेषित करती हैं। उनके वीडियो इंस्टालेशन पर प्रख्यात कवि और आलोचक अशोक बाजपेयी टिप्पणी करते हैं कि “जो कला पारंपरिक रूप से उपलब्ध है, रत्नावली उससे संतुष्ट नहीं है। वो उससे प्रश्न करती है और असफल होने का भी जोखिम उठाती हुयी उसे नये प्रयोगों से जोड़ती है, यही उनकी सफलता है।”

भारतीय जनजीवन में संस्थापन कला के विविध रूप और प्रकार सहजरूप से दिखायी देते हैं। जर्मनी की बहुचर्चित अन्तर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी ‘डॉक्यूमेंटा’ में स्व० भूपेन खक्कर ने भारतीय पान की दुकान को ही संस्थापन कला के रूप में प्रदर्शित कर दिया था। इस बात के पक्षधर कई बड़े कलाकार हैं जो यह मानते हैं कि भारतीय समाज में बहुत पहले से ही इंस्टालेशन आर्ट के उदाहरण मौजूद हैं। संस्थापन वास्तव में भारतीय जीवन का हिस्सा है। इसलिए संस्थापन कला को संग्रहालयों में क्यों सीमित किया जाये? संस्थापन कला आस-पास के वातावरण की प्रस्तुति का एक बहुत अच्छा माध्यम बनकर उभरा है। इस कला का प्रयोग विविधता पूर्ण और अत्यधिक हो रहा है।

कई कलाकार वीडियो इंस्टालेशन विधा में अत्यन्त सुंदर काम कर रहे हैं। विवान सुंदरम्, सुबोध गुप्ता, नलिनी मलानी, रत्नावली कांत, सुब्बा घोष, रामेश्वर ब्रूटा, प्रतुल दास आदि अनेक कलाकार इस शैली में उत्कृष्ट काम कर रहे हैं। मकबूल फिदा हुसैन ने भी जैसलमेर के लैण्डस्केप में कुछ इंस्टालेशन बनाये थे। अपनी फिल्म ‘गजगामिनी’ में हुसैन माधुरी दीक्षित को एक स्टूडियो इंस्टालेशन में शूट करते रहे।

आज के समय में अत्यन्त लोकप्रिय संस्थापन कला की अपनी सीमायें और सम्भावनायें हैं। कला के बड़े बाजार में इस आर्ट को बेचना और इसको बचाये रखना अत्यन्त कठिन काम है। मोदी नगर (उ०प्र०) में ‘खोज’ नाम के एक चर्चित कला आन्दोलन ने संस्थापन कला का वार्षिक मेला लगाना प्रारम्भ किया है। इस वार्षिक मेला में दुनिया भर के कलाकार एक साथ मिलकर कला शिविर में काम करते हैं। मोदी नगर के एक बड़े बागीचे में संस्थापन बनाये जाते हैं और किसी

एक दिन बाहर के कलाकारों के साथ और कला प्रेमियों के बीच संस्थापन कला पर बात-चीत होती है। 'खोज के इस शिविर से संस्थापन कला में नई सम्भावनायें पैदा हो गयी है।

पूरी दुनियां में एक विशेष कला के रूप में 'संस्थापन कला' को कलाकारों और दर्शकों द्वारा जो स्वीकृति मिल रही है उससे यह स्पष्ट है कि आज की समस्याओं को व्यक्त करने में संस्थापन कला का महत्वपूर्ण योगदान है। इसमें असीम संभावनायें हैं और यह भविष्य की कला का निर्माण भी है। इसलिये ऐसा लगता